# कृषिकोश

[ भाषाविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार बिहारी बोलियों के विविध क्षेत्रों से संगृहीत जन-समाज में प्रचलित कृषि-सम्बन्धी शब्दों का उनके स्थानीय तथा वैयुत्पत्तिक पर्याय-सहित प्रामाणिक सचित्र अभिधान ]

प्रथम खण्ड

[ 'अ' से 'घ' तक ]

सम्पादक

डॉक्टर विश्वनाथप्रसाद

अनुसंधान-सहायक

श्रीश्रुतिदेवशास्त्री श्रीराधावल्लभशर्मा

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना-३



शकाब्द १८८१, विक्रमाब्द २०१६, खृष्टाब्द १९५९

मूल्य सात रुपये

# वक्तव्य

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के लोकभाषा अनुसंधान विभाग द्वारा जो 'कृषिकोश' तैयार कराया जा रहा है, उसका यह पहला खण्ड हिन्दी संसार के सामने उपस्थित है। मैथिली, मगही और भोजपुरी के क्षेत्रों से संगृहीत—'अ' से 'घ' तक के—शब्द इसमें हैं। उनके अर्थ, व्युत्पत्ति, पर्याय आदि के अतिरिक्त वस्तु विशेष का बोध करानेवाले शब्दों से सम्बद्ध आवश्यक चित्र भी दिये गये हैं।

इस कृषिकोश के आगामी खण्ड भविष्य में क्रमशः निकलते जायेंगे। उनके निर्माण और सम्पादन में जो कठिनाइयाँ हैं, उन सबका अनुमान सम्पादकीय 'निवेदन' और 'प्रस्तावना' पढ़कर किया जा सकता है। तब भी दूसरा खण्ड, जिसमें 'च' से 'न' तक के शब्द होंगे, समाप्ति हो रहा है और आशा है कि अगले साल तक वह तैयार हो सकेगा। इस तरह का कोश बनाना बड़ा बीहड़ काम है, इसलिए सभी खण्डों के निकलने में काफी समय लगने की संभावना है।

इसमें तो केवल तीन ही क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द हैं। वे भी सीमित जनपद से ही संकलित हैं। फिर भी कई शब्द ऐसे सुघड़ सलोने दीख पड़े हैं, जो शिष्ट साहित्यिक भाषा में खपाये जाने योग्य हैं। यदि कृषिप्रधान भारतवर्ष की अन्यान्य क्षेत्रीय भाषाओं के भी कृषि विषयक शब्दों के ऐसे कोश प्रकाशित हो जायें, तो साहित्य की शब्द सम्पत्ति बहुत अधिक बढ़ जायगी। जब खेती के धंधे की तरह दूसरे धंधों के शब्द-कोश भी निकल जायेंगे, तब ऐसा प्रतीत होता है कि जनसाधारण के लिए उपयोगिन आंचलिक भाषाओं में लिखे और छापे जानेवाले साहित्य—कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि—की भसगिम खासा निखर उठेगी।

लोकभाषाओं का जो साहित्य लोककण्ठों में बसा हुआ है, उसका उद्धार और प्रचार भी धीरे धीरे हो रहा है। पारखियों का ध्यान उनके शब्दों, मुहावरों, कहावतों, गीतों आदि की ओर खिंचता जा रहा है। साहित्यानुरागी पाठक भी लोक साहित्य के प्रेमी होते जा रहे हैं। यह शुभ लक्षण है।

विश्वविद्यालयों के साथ-साथ आकाशवाणी केन्द्रों में भी लोकभाषाओं का आदर मिल रहा है। साहित्य-संसार के विद्वान् अनुसंधायक उनपर शोध, विचार विमर्श, आलोचन विवेचन तथा उनका सम्पादन-संकलन बड़ी लगन से करने लगे हैं। सभा-सम्मेलनों और पत्र-पत्रिकाओं में भी उनकी महत्ता प्रकट हो रही है।

साहित्य के प्रधान सम्पादक भी हैं। आपके द्वारा सम्पादित 'भोजपुरी कवि और काव्य' नामक पुस्तक गत वर्ष परिषद् से ही प्रकाशित हो चुकी है। जब आप परिषद् के लोकभाषा अनुसन्धान विभाग के अध्यक्ष थे, तब आपके ही तत्त्वावधान में मगही-संस्कार-गीतों का एक सटीक संग्रह-ग्रन्थ तैयार हुआ था। आपके द्वारा सम्पादित उस ग्रन्थ का प्रकाशन निकट भविष्य में ही होनेवाला है। आपको इस कोश के सम्पादन-कार्य में अपने जिन अनुसन्धान-सहायकों का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनकी योग्यता आदि के विषय में आप स्वयं लिख चुके हैं। उनमें श्रीश्रुतिदेव शास्त्री भागलपुर जिले और श्रीराधावल्लभ शर्मा चम्पारन जिले के निवासी हैं।

आशा है कि यह कोश लोकभाषाओं के गुणज्ञों को प्रचुर प्रेरणा और प्रोत्साहन प्रदान करेगा। साथ ही, हमें यह भी आशा है कि साहित्य के अभ्युदय की आकांक्षा रखनेवाले सुधी सज्जन इस प्रथम प्रयास की त्रुटियों से हमें अवगत कराके अपनी स्वाभाविक सहृदयता का परिचय देने की कृपा करेंगे।

श्रीरामनवमी, शकाब्द १८८१<br>
सन् १९५९ ई०

शिवपूजनसहाय<br>
(संचालक)

# निवेदन

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के जन्म के तीन चार साल पहले ही मेरे मन में यह विचार उठा था कि इस प्रकार का एक प्रामाणिक पारिभाषिक कोश तैयार हो, जिसमें जन समाज में प्रचलित विभिन्न व्यवसायों के सजीव शब्दों का वैज्ञानिक ढंग से संग्रह हो, क्योंकि मेरी यह निश्चित धारणा रही है कि हमारी पारिभाषिक शब्दावली के अभाव को केवल अँगरेजी के उधार या अनुवाद से नहीं भरा जा सकता, वरन् यह दारिद्र्य तो दूर हो सकता है—हमारी अपनी ही चिरसंचित शब्द-सम्पत्ति से, जो हमारी जनपदीय बोलियों में खोई खोई सी पड़ी हुई है। उसका उद्धार करके उसमें नई प्राण शक्ति भरी जा सकती है जिससे वह एक विस्तृत धरातल पर हमारी आवश्यकता की पूर्ति कर सके। उस समय उस विचार को क्रियान्वित करने के लिए मैंने जो एक छोटी-सी योजना बनाई थी उसमें मुझे विशेष प्रेरणा दो हितचिंतकों से मिली थी—एक तो पूज्यचरण आचार्य श्रीबदरीनाथ वर्मा से और दूसरे स्वर्गीय श्रीरामधारी प्रसाद से। इनके अतिरिक्त इस कार्य में मुझे पुनः प्रवृत्त करने में बिहार के चिरस्मरणीय शिक्षा सचिव श्रीजगदीशचन्द्र माथुर, आई० सी० एस० का, जो इस समय आकाशवाणी के डाइरेक्टर जनरल हैं, विशेष हाथ था। आप सबके प्रति परम श्रद्धापूर्वक कृतज्ञता व्यक्त करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

जब से मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया, तब से मेरी प्रेरणा के स्रोतों में प्रमुख स्थान रहा है, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के सुयोग्य संचालक श्रीशिवपूजनसहायजी का। उनका विशेष सहयोग और साहाय्य न मिला होता तो इसमें पग पग करके आगे बढ़ना और काम इस स्थिति में पहुँचना कि इसका प्रकाशन हो सके, मेरे लिए कदापि संभव न होता। इसके संपादन में मुझे अपने आदरणीय भाई श्रीलक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' और श्रीरामधारी सिंह 'दिनकर' से भी पर्याप्त बल और सहायताएँ मिलती रही हैं। उनके सुझावों से हमने बहुत लाभ उठाया है। इनके अतिरिक्त परिषद् के परामर्श मण्डल सदस्य कुमार गंगानंद सिंह, श्रीराजा राधिकारमणप्रसाद सिंह, बन्धुवर श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी, विद्वद्वर श्रीराहुल सांकृत्यायन, डॉ० कामिल बुल्के, पं० छविनाथ पाण्डेय प्रभृति महानुभावों से हमें जो बहुमूल्य प्रोत्साहन और समर्थन प्राप्त होता रहा है, उसके लिए उन सबके प्रति सादर आभार प्रकट करना मेरा कर्त्तव्य है।

परिषद् के प्रकाशन विभाग का भी जो सक्रिय सहयोग हमें मिलता रहा है, उसके लिए श्रीअनूपलाल मण्डल और श्रीबलदार त्रिपाठी 'सहृदय' को मेरे हार्दिक धन्यवाद हैं।

परन्तु उन्हें किन शब्दों में धन्यवाद दूँ, जो मेरे दायें-बायें हाथ की तरह प्रारम्भ से अबतक अनवरत मेरे साथ इस काम में लगे रहे हैं। क्या उनके बिना यह काम इस रूप में सम्पन्न हो सकता था। मैं यहाँ अपने कार्य के अभिन्न अंग श्रीश्रुतिदेवशास्त्री (साहित्याचार्य, न्यायाचार्य, व्याकरण शास्त्री, प्रभाकर, पूना स्कूल ऑफ लिंग्विस्टिक्स द्वारा प्रशिक्षित तथा श्री राधावल्लभशर्मा साहित्यालंकार, पूना स्कूल आफ लिंग्विस्टिक्स द्वारा प्रशिक्षित का उल्लेख कर रहा हूँ। कितनी लगन से आप दोनों ने मेरे साथ इस कार्य को आरम्भ किया था। मेरे स्नातकोत्तर कक्षा के अग्रज छात्रों तथा अनुसंधित्सु विद्यार्थियों की ही तरह सदा मेरे साथ कोश विज्ञान के इस नये विषय के अध्ययन तथा ज्ञानार्जन में तत्पर, सदा इस लोक विद्या के अध्यवसाय में निरत, सदा मेरे निर्देशों के यथावत् पालन में सजग भाव से लीन आप दोनों की प्रशंसनीय प्रवृत्ति का पता मुझसे अधिक और किसको होगा। इस कार्य में श्रुतिदेवजी का विशेष क्षेत्र था—व्युत्पत्ति निर्वचन और राधावल्लभजी का क्षेत्रीय शब्द का परीक्षण। हमें अपनी कृषि कोश के दूसरे और तीसरे खंडों को भी, जो प्रायः समाप्तप्राय हैं, अविलम्ब प्रकाशित कराना है। आप दोनों की दक्षता और कार्य-तत्परता का हमें पूरा भरोसा है और आशा है कि आप सफलता के साथ इस कार्य के संपादन में दत्तचित्त रहेंगे।

इस कोश कार्य में अपने सभी सहायकों का उल्लेख करना मैं यहाँ आवश्यक समझता हूँ —

### सहायक

अनुसन्धान और सम्पादन

१ श्रीश्रुतिदेव शास्त्री

२ श्रीराधावल्लभ शर्मा

३ श्रीविक्रमादित्य मिश्र

### संग्रह

१ श्रीगणेश पाँड़े—आप चंपारन जिले के निवासी हैं। आप लोक साहित्य के अच्छे विद्वान् हैं और [illegible] (कलकत्ता) के [illegible] में इस क्षेत्र के प्रतिनिधि भी हैं। आप बहुत दिनों से बिहारी लोक-साहित्य पर काम कर रहे हैं। इस काम में हमें आपसे सभी तरह की बहुमूल्य सहायता मिली है। लोक साहित्य के संग्रह कार्य में आप [illegible] सहायता देने को प्रस्तुत रहते हैं।

२ श्रीश्रीकांत शास्त्री—एकंगरसराय (पूर्वी पटना) के रहनेवाले विद्वान् हैं और सदा जागरूक रहकर मगही साहित्य के उत्थान में तत्पर रहते हैं। आपने लोक भाषा और लोक साहित्य के विविध अंगों का संग्रह करके परिषद् को दिया है और हमारी सहायता की है। आप सदा हमारा हाथ बँटाते रहे हैं।

३ श्रीसुरेश्वर पाठक—आप दक्षिणी मुँगेर के निवासी हैं और आजकल यहीं पटना में वयस्क शिक्षा विभाग में अधिकारी हैं। आप हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने दक्षिणी मुँगेर के शब्दों, कहावतों आदि का संग्रह करके परिषद् को दिया है। आप से हमें बराबर उचित सहायता मिलती रही है।

आप तीनों हमारे विशिष्ट सहायक हैं। इनके अतिरिक्त उपर्युक्त सभी व्यक्तियों ने हमें यथासमय पूर्ण सहयोग दिया है। हम आप सबके आभारी हैं। इनमें से श्रीविधान द सिंह, श्रीहरिप्रकाश, श्रीकृष्णदेव, श्रीविक्रमादित्य मिश्र एम० ए०, श्रीपंचानन चौधरी, श्रीशिवकुमार वर्मा, श्रीराजेश्वर प्रसाद ने अपने अपने क्षेत्रों से शब्दों, कहावतों आदि का संग्रह कर प्रदान किया है और इस प्रकार हमें बहुत सहायता दी है।

श्रीरामाधार शर्मा, श्रीरामस्वरूप चौधरी, श्रीवाल्मीकि प्रसाद सिंह एम० ए०, श्रीमुसाइ झा आदि ने शब्दों की जाँच-पड़ताल में यथासमय यथा-स्थान उपस्थित होकर हमें यथोचित सहयोग दिया है और अपने अपने क्षेत्र के तत्सत् पर्यायों को समझने-बूझने में तथा निरीक्षण परीक्षण में हमारी सहायता की है।

संग्रह-कार्य के प्रथम वर्ष में परिषद् द्वारा नियुक्त जो चार क्षेत्रीय कार्यकर्त्ता वैतनिक रूप में संग्रह कार्य करते थे, उनका विवरण निम्नांकित है—

श्रीनयानन्द झा—ये दक्षिणी पूर्णियाँ के निवासी हैं। इन्होंने दरभंगा जिले के मधुबनी, सदर सबडिविजन और द० पूर्णिया से शब्द संग्रहीत करके दिये थे। कोश में इनके काम क्षेत्र का संकेत चिह्न दर०-१, पूर्णि०-१ है।

श्रीअवधेन्द्रदेव नारायण—ये छपरा नगर के निवासी हैं। इन्होंने सारन जिले भर में घूम घूमकर शब्दों का संग्रह करके दिया था। कोश में इनका संकेत सा०-१ है।

श्रीहृदयनारायण मंडल—ये संथालपरगने के रहनेवाले हैं। इन्होंने संथालपरगने की संथाली भाषा के शब्द संग्रह करके दिये थे। किन्तु इनके शब्दों का उपयोग संथाली कोश के लिए होगा, इसलिए इस कोश में इनका उल्लेख नहीं है।

श्रीनागपालिदेव—ये पटना सिटी के निवासी हैं। इन्होंने बहुत थोड़े दिनों तक कार्य किया। इन्होंने पारिभाषिक शब्दों के बजाय सामान्य शब्दों का ही ज्यादा संग्रह कर रखे थे। इसलिए इनके शब्दों का भी उपयोग इस कोश में नहीं हुआ है।

इन सभी सहयोगियों का हम आभार स्वीकार करते हैं।

के शब्द संग्रहीत किए गए हैं, उनकी चर्चा देने में तो कई पृष्ठ लग जायेंगे, परन्तु इस प्रसंग में उनको भी कृतज्ञता-पूर्वक स्मरण किये बिना हम नहीं रह सकते।

कोश-कार्य व्यावहारिक भाषाविज्ञान का एक जटिल विषय है, बहुत ही श्रमसाध्य, समयसाध्य और व्ययसाध्य। अँगरेजी, हिन्दी अथवा अन्य भाषाओं के कोश-ग्रन्थों के सम्पादन और संग्रह का इतिहास बतलाता है कि कोश जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ-रत्नों के सम्यक् सम्पादन के लिए पर्याप्त समय और साधन की आवश्यकता होती है। अँगरेजी की 'वेब्स्टर न्यू इंटरनेशनल डिक्शनरी' के प्रथम संस्करण के प्रकाशन में पूरे १०२ वर्षों का समय लगा था। १८०७ ई० में नोआ वेब्स्टर ने इसका कार्यारम्भ किया था और २१ वर्षों के परिश्रम के बाद उन्होंने जॉनसन की डिक्शनरी से केवल १२,००० शब्द और बढ़ाकर उसके मूल रूप को १८२८ ई० में पूरा और प्रकाशित किया। इसके बाद क्रमशः परिवर्द्धन प्राप्त करता हुआ यह अपने बृहत् रूप में आया। इसी प्रकार प्रसिद्ध ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी की योजना का श्रीगणेश 'फिलालॉजिकल सोसाइटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन' की ओर से १८५७ ई० में हुआ और उसका कार्य ७६ वर्षों के बाद सन् १९३३ ई० में समाप्त हुआ। इस बीच में उसके एक सम्पादक के जीवन काल के बाद दूसरे ने और दूसरे के जीवन काल के बाद तीसरे ने इस कार्य के दायित्व को सँभाला। इन्हीं तीसरे और उनके साथ एक चौथे सम्पादक के कार्य काल में उसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। कई वर्षों तक उसके सम्पादन के लिए चार सम्पादक नियुक्त थे। इसके अतिरिक्त उसके कई सहायक सम्पादक थे जो पचास वर्षों से भी अधिक काल तक इस कार्य में लगे रहे। प्रारंभ में संग्रह के लिए १०० संग्रहकर्ता नियुक्त थे जो अंगरेजी साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों से शब्दों, मुहावरों आदि का संग्रह करते थे और इनके अतिरिक्त ८०० ऐसे पाठक थे, जो स्वयंसेवा भाव से साहित्य के विभिन्न अंगों के ग्रंथों को पढ़कर उनमें से उपयुक्त सामग्री का संकलन करके सोसाइटी के पास भेजा करते थे। तब कहीं अँगरेजी का ऐसा प्रामाणिक कोश तैयार हो सका।

अपने देश में भी नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी से हिन्दी शब्द-सागर का लगातार एक दशक तक कार्य होते रहने के पश्चात् ही खंडशः प्रकाशित होने लगा था और इसके बाद भी लगभग बीस वर्षों में (१९१० से १९२९ तक) उसका सम्पादन और प्रकाशन पूरा हुआ।

पूना में संस्कृत कोश के शब्द संग्रह का कार्य सन् १९४८ ई० में प्रारंभ हुआ। इस समय इस कार्य में लगभग पचास सुयोग्य कार्यकर्ता लगे हुए हैं। कार्य-सामग्री पर्याप्त साधन वहाँ सुलभ है, लगभग एक लाख रुपया प्रतिवर्ष उसपर खर्च किया जा रहा है। पर यह सब होते हुए भी अभी तक उसका कोई खंड प्रकाशित नहीं हो सका है।

कोश के कार्य में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि जब तक [illegible] उपयुक्त शब्दों का संग्रह न हो जाय और फिर उनके अर्थ [illegible] । इसमें पर्याप्त

अध्ययन और विश्लेषण का कार्य पूरा न हो जाय, तबतक प्रकाशन प्रारंभ करने का खयाल नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं है कि एक ओर संग्रह और अध्ययन अनुशीलन का कार्य भी चलता रहे और दूसरी ओर वर्णानुक्रम या किसी और ही क्रम में एक-एक अंश का प्रकाशन भी होता रहे। अतएव, किसी वृहत कोश के प्रकाशन में विलंब होना अनिवार्य है।

ऊपर जिन दो एक उदाहरणीय कोशों का उल्लेख किया गया है, उन सबका आधार लिखित और उपलब्ध साहित्य है, जब कि हमारा यह कृषि कोश अलिखित और दुर्लभ्य सामग्री पर आधारित है। कोशायन की नई पद्धति के अनुसार ठेठ ग्रामीण समाज के शब्दों को इकट्ठा करके उन्हें ध्वनि अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से विविध प्रकार से जाँचकर हमें संकलन करना पड़ा है। शहर से दूर, गाँवों में भिन्न भिन्न धंधों में लगे हुए कामकाजी स्त्री पुरुषों के कामधाम के स्थलों पर स्वयं जाकर या अपने प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं को भेजकर उनसे नियमानुसार पूछ-ताछ, जाँच पड़ताल करके उनके कार्यकलाप सम्बन्धी शब्दों का संग्रह, अर्थ निर्धारण तथा प्रयोगादि की जानकारी हासिल करनी पड़ी है।

इसका प्रत्येक शब्द विभिन्न बोलियों के बोलनेवाले विभिन्न वृत्तियों के लोगों के मुँह से प्राप्त किया गया है। यह कार्य कितना कठिन है, यह वे ही जान सकते हैं, जो इस दिशा में कुछ काम करके भुक्तभोगी बन चुके हैं। पहले तो उपयुक्त व्यक्ति ही विरले मिलते हैं जो प्रश्नों के ठीक ठीक उत्तर दे सकें। धंधे के धाम धाम में लगे हुए श्रमजीवी व्यक्ति को इतनी फुरसत भी कहाँ कि वह सब कुछ छोड़कर घंटों बैठे, हमारे साथ प्रश्नोत्तर करता रहे कोई उसको किसी प्रकार यदि पकड़ में आता भी, तो फिर उससे अंट संट उत्तर मिलते हैं। उपयुक्त सामग्री देनेवाले उपयुक्त व्यक्ति बहुत कठिनाई से मिल पाते हैं। फिर सर्वदा यह भी संभव नहीं कि उनसे बातें करते समय ही उत्तर लिखते चलें। प्रायः ऐसा होता है कि उत्तरों को कठिनतापूर्वक स्मृति में ही संचित करके कुछ समय के उपरांत लिखना पड़ता है। इस कारण इसमें परीक्षण की अपेक्षा होती है। अपनी संग्रहीत सामग्री को प्रकाशित करने के पहले हमने यह आवश्यक नियम कर रखा था कि उन बोलियों के बोलनेवाले तथा तत्तत् भाषा वर्गों के प्रतिनिधि स्वरूप तथा भरोसे के व्यक्तियों से विशेष रूप से पूछ-ताछ करके उसका पुनः परीक्षण कर लिया जाय। इस प्रकार इस कोश के प्रत्येक शब्द की प्रामाणिकता की यथासंभव जाँच कर ली गई है। इस कोश का प्रत्येक शब्द हमारी आत्मिक ममता और देश भाषा का पात्र बनकर ही इस आकार में प्रवेश पा सका है।

बड़े हौसले के साथ हम इस काम में प्रवृत्त हुए। परन्तु हमें अल्प व सीमित साधनों, दो चार संपादक सहयोगियों, लोक भाषा और लोकसाहित्य के कुछ इने गिने अनुरागी व्यक्तियों और दस दो अनुसंधान सहायकों की सहायता मिली, अन्यान्य कामों के साथ साथ, इसी लहर प्रवृत्ति में, इस कोश का पहला खंड निकालना पड़ रहा है। इसे

भी हम अपना सौभाग्य ही समझते हैं कि यह कठिन कार्य किसी तरह इस विषय में रुचि रखनेवाले महानुभावों के समक्ष प्रकाश में तो आ सका।

संभव है कि कार्य की शीघ्रता अथवा अल्पज्ञता के कारण इस संग्रह में कुछ ऐसे शब्द न आ सके हों, जिनकी जानकारी अन्य सज्जनों को हो। कोई भी कोशकार आखिर अतिमानव तो है नहीं कि सर्वज्ञता का दावा कर सके। कोश कार्य में त्रुटियों की पर्याप्त संभावना रहती है, जिनका पता तो प्रकाशन के बाद ही चलता है और जिनके निर्देश कोशकार को कुछ तो उदारतापूर्वक मिलते हैं और कुछ तीखे आक्षेपों के साथ। दोनों से ही कृतज्ञ भाव से आगे के लिए शिक्षा ग्रहण करने को मैं सविनय आतुर रहूँगा।

वस्तुत एक ओर कोश कार्य की कष्टसाध्यता, विशालता तथा अपने बढ़े चढ़े हौसलों को और दूसरी ओर अपनी सीमित शक्तियों तथा साधनों को देखकर हमें कहना पड़ता है—

'तितीर्षुर्दुस्तरम्मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।'

विश्वनाथ प्रसाद
संपादक

मंगलवार, मार्गशीर्ष, शुक्ल-६ (स्कन्दषष्ठी) सं० २०१५ वि०,
क० मुं० हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ
आगरा विश्वविद्यालय
आगरा

# प्रस्तावना

बिहार प्रदेश की विविध लोकभाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन-अनुशीलन बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् का एक प्रमुख उद्देश्य है। इसके लिए आरम्भ से ही उसके अन्तर्गत 'लोकभाषा अनुसंधान विभाग' मेरे निर्देशन निरीक्षण में कार्य करता आ रहा है। हमने बिहार की लोकभाषाओं और लोक साहित्य के अध्ययन के लिए एक योजना बनाई, जिसके अनुसार लोकभाषा और साहित्य संबंधी सामग्रियों का संग्रह किया जा सके। तदनुसार गाँवों में बिखरी अलिखित सामग्रियों, लोक गीतों, कथाओं, गाथाओं, कहावतों, पहेलियों, मुहावरों और शब्दों का संकलन प्रशिक्षित वैतनिक कार्यकर्त्ताओं द्वारा कराया जाने लगा। प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता विभिन्न भाषा क्षेत्रों के गाँवों में जाकर तत्तत् विषयों के विशेषज्ञों और तत्तद् व्यवसायों के व्यावसायिकों से मिलकर गीतों, कथाओं, पहेलियों आदि और किसान, बढ़ई, कुम्हार आदि व्यावसायिकों से उन-उन विषयों के शब्दों का संग्रह करते और कार्यालय को भेजते थे और यहाँ दो प्रशिक्षित अनुसंधायक उनका निरीक्षण-परीक्षण करके उनकी उपयोगिता और औचित्य को जाँचकर उन्हें संगृहीत करते थे। किन्तु यह प्रणाली एक वर्ष तक ही चली, क्योंकि उन संग्राहक कार्यकर्त्ताओं द्वारा किया गया कार्य संतोषजनक नहीं प्रमाणित हुआ। अतः वैतनिक कार्य का सिलसिला उठा दिया गया और उसके स्थान में विभिन्न क्षेत्रों के लोक-साहित्य के उत्साही कार्यकर्त्ताओं के द्वारा पारिश्रमिक के आधार पर सामग्रियों का संकलन कराया जाने लगा। इसके लिए हमारे विशेष रूप से तैयार किए हुए निर्देशपत्र के अनुसार बिहार की मैथिली, मगही, भोजपुरी और संताली की सामग्रियाँ एकत्र की जाने लगीं। अबतक इन भाषा क्षेत्रों की प्रचुर सामग्री संगृहीत हो चुकी है। सरकारी तौर पर इस प्रकार का यह पहला कार्य था, जिसे बिहार-राज्य सरकार ने प्रारम्भ किया और बाद में यह दूसरे राज्यों के लिए अनुकरणीय हो गया। दो तीन वर्षों में कुछ सामग्रियों के संग्रह हो जाने के बाद सबसे पहले दो कार्य शुरू किये गये—पहला 'मगही संस्कार गीतों' का संपादन और दूसरा 'कृषिकोश' का। 'मगही संस्कारगीत संग्रह' में, विविध संस्कारों के समय गाये जानेवाले मगही क्षेत्र के लोक गीतों का संग्रह किया गया है। इस संग्रह में मगही लोक-गीतों का मूलरूप, उनका अर्थ, यथास्थान टिप्पणी, परिशिष्ट आदि देकर एक विस्तृत भूमिका के साथ संपादन किया गया है, जो निकट भविष्य में मुद्रित होनेवाला है।–

दूसरा कार्य, जो इस विभाग ने किया है, वह इसी 'कृषिकोश' का सम्पादन है। यद्यपि बिहार राज्य के मैथिली, मगही और भोजपुरी क्षेत्रों के गाँवों में निवास करनेवाले किसान, बढ़ई, लुहार, कुम्हार, सुनार, चमार आदि सभी प्रकार के व्यावसायिकों के व्यवसायों से सम्बद्ध ग्रामीण पारिभाषिक शब्दों का संग्रह इस विभाग में कराया जाता रहा है और यद्यपि पहले विचार था कि सभी ग्रामीण व्यवसायों के पारिभाषिक शब्दों का एक बृहत् सहत कोश एक ही साथ सम्पादित करके प्रकाशित किया जाय तथापि उसके लिए और अधिक सामग्री, साधन एवं समय की अपेक्षा का विचार करके उस स्तर पर उसका कार्य तत्काल स्थगित कर दिया गया और ग्राम समाज की रीढ़ किसानों के द्वारा व्यवहृत खेती के शब्दों का ही कोश पहले निकालने का निश्चय हुआ। तदनुसार खेती के शब्दों का अलग संग्रह करके उनका सम्पादन किया गया। फलस्वरूप, 'कृषिकोश' का यह पहला खंड प्रकाशित हो रहा है। इसमें 'अ' से लेकर 'ध' तक के शब्द हैं।

इस कोश में कृषि संबंधी पारिभाषिक शब्दों का संग्रह किया गया है। 'कृषि' शब्द हल जोतने के अतिरिक्त खेती करनेवाले किसान तथा खेतों, पशु, औजार, प्रणाली, विविध क्रिया-कलाप आदि सबका बोधक है। वैदिक साहित्य में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'कृषि' के स्थान में अष्टाध्यायी में 'कृषीवल' शब्द आया है। वैदिक काल से ही कृषि हमारे देश का प्रधान व्यवसाय रहा है और इसका जैसा विकास हमारे यहाँ हुआ था वैसा अन्यत्र नहीं। ग्रीक कालीन भी यहाँ की उपजाऊ धरती और कृषि कौशल से बहुत प्रभावित हुए थे। अतः शताब्दियों के परम्परागत विकास के प्रभाव से हमारी कृषि संबंधी शब्दावली बहुत समृद्ध है।

इस कोश के संगृहीत शब्द बिहार राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के कृषक जनसमुदाय में सैकड़ों वर्षों से व्यवहृत होते आ रहे हैं और आज भी जीवित तथा जीवन्त हैं। इनके अतिरिक्त मजदूरों और अन्य श्रमजीवियों की बोलचाल की भाषा में भी समाजशास्त्र, शिल्पशास्त्र अथवा उद्योग-धंधे संबंधी बहुतेरे बढ़िया-बढ़िया शब्द मिलते हैं, जो राष्ट्रभाषा की समृद्धि के समर्थ पूरक हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न व्यावसायिक संप्रदायों तथा जनजातियों के समाज में प्रचलित बहुत-से ऐसे नये पुराने शब्द भी मिलेंगे, जिनके पर्यायवाची शब्द साहित्यिक हिन्दी या अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं में भी दुर्लभ होंगे। राष्ट्रभाषा का भंडार भरने के लिए तथा विविध कला-कौशलों और व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में पारिभाषिक शब्दों की समस्या को हल करने के लिए हमें अपनी इन चिर उपेक्षित अमूल्य निधियों का संचय करना परम आवश्यक है।

बिहार के विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न पेशेवालों की बोली में प्रचलित ऐसे कुछ पारिभाषिक शब्दों का प्रथम संग्रह प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ० ग्रियर्सन ने किया था, जो 'बिहार पीजेंट लाइफ' के नाम से १८८५ ई० में प्रकाशित हुआ था। परन्तु यह

संग्रह संक्षिप्त था और कुछ और ही अभिप्राय से किया गया था। इससे हमारा उक्त उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त सभ्यता के आधुनिक प्रभावों के कारण समाज के भिन्न स्तरों के लोक व्यवहार, आचार विचार, रहन सहन, रस्म रिवाजों के परिवर्त्तनों के साथ ही साथ उनके शब्द भंडार में भी निरन्तर परिवर्त्तन होते जा रहे हैं। पुराने शब्दों के स्थान में उन्हीं के आधार पर या उनसे भिन्न रोजमर्रे के नये शब्द बनते जा रहे हैं। इसलिए बिहार और बिहार के बाहर हिन्दी भाषी तथा हिन्दीतर भाषी क्षेत्रों में भी नये सिरे से और वैज्ञानिक ढंग से ऐसे शब्दों का सर्वेक्षण और संग्रह कराना आवश्यक है। अन्यथा केवल अँगरेजी शब्दों की तालिका तैयार करके उनका पर्याय प्रस्तुत करते जाने की परिपाटी पर ही निर्भर करने से हमें अपनी लोक भाषा के करोड़ों अर्थपूर्ण उपयोगी और जीवित पारिभाषिक शब्दों से वंचित होना पड़ेगा और इससे राष्ट्रभाषा की बहुत बड़ी क्षति होगी। इस प्रकार तो 'गिलावा', 'सुरखी और 'बँड़ेरी' जैसे रोजमर्रे के शब्द भी हमारे पारिभाषिक कोश में स्थान नहीं पा सकेंगे, क्योंकि अंगरेजी में कोई एक पारिभाषिक शब्द ऐसा नहीं है, जो ठीक-ठीक इनका पर्यायवाची हो और जिसके अनुवाद के लिए इनकी अपेक्षा हो। 'गिलावा' के लिए अँगरेजी में एक नहीं, अनेक शब्दों की आवश्यकता होगी। ग्रियर्सन ने 'गिलावा' के लिए Moistend clay used as mortar, 'सुरखी' के लिए Thepounded bricks used as a substitute for sand और "बड़ेरी" के लिए Ridge pole का व्यवहार किया है। सर्वेक्षण के द्वारा लोक-भाषा के ऐसे शब्दों का संग्रह कर लेने के बाद उन्हें हम स्वतंत्र रूप से अपने पारिभाषिक शब्द कोश का अंग बना सकते हैं।

इस दृष्टि से बिहार राज्य के विभिन्न क्षेत्रों के जनसमुदाय में व्यवहृत होनेवाले विभिन्न प्रकार के पारिभाषिक शब्दों का संग्रह बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के लोकभाषा अनुसंधान विभाग द्वारा कराया गया। अब तक बिहार की मैथिली, भागलपुरी, मगही, भोजपुरी और संताली भाषाओं के ५४२७७ पारिभाषिक शब्द संगृहीत हो चुके हैं। ये सभी शब्द गाँवों में बसनेवाले विविध व्यवसायियों, शिल्प-जीवियों और किसानों के मुख से संगृहीत हुए हैं। किंतु जैसा कि ऊपर निवेदित किया जा चुका है, प्रस्तुत कृषिकोश में केवल कृषि से संबद्ध शब्द ही लिये गये हैं।

जनपदीय शब्दावली का कार्य—हमारे देश में जनपदीय शब्दावली के संग्रह के क्षेत्र में अभी बहुत कम कार्य हो सका है। अँगरेजों ने इस क्षेत्र में जो थोड़ा कार्य किया था, उसका मुख्य उद्देश्य था—मामले मुकदमे तथा कचहरी की कार्रवाइयों को समझने में सुगमता के साधन जुटाना। ग्रियर्सन से भी पहले हिन्दी प्रदेश में इस प्रकार का कार्य पैट्रिक कार्नेगी ने किया था। 'कचहरी टेक्निकैलिटिज'के नाम से उनका शब्द-संग्रह सन् १८७०-७५ ई० के लगभग प्रकाशित हुआ था। उसका दूसरा संस्करण इलाहाबाद मिशन प्रेस से सन् १८७७ ई० में निकला था। उसके प्रारंभिक अंशों का डॉ० अम्बाप्रसाद'सुमन' द्वारा किया हुआ हिन्दी-रूपान्तर हमने 'भारतीय साहित्य'

(आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ, २ २, जुलाई, १९५७, पृष्ठ ४३६-४४३) में प्रकाशित किया था। पैट्रिक कार्नेगी के संग्रह के दो वर्षों बाद सन् १८७९ ई० में विलियम क्रुक ने अपना संग्रह 'मैटिरियल्स फार ए रूरल एण्ड एग्रिकल्चरल ग्लासरी अव द नार्थ-वेस्टर्न प्राविंसेज एण्ड अवध' (गवनमेंट प्रेस इलाहाबाद,—इस नाम से प्रकाशित किया था। इसके बाद १८८५ में ग्रियर्सन का 'बिहार पीजेंट लाइफ' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। प्रामाणिकता की दृष्टि से यह ग्रंथ अपने से पहले के दोनों ग्रंथों से निस्सन्देह अधिक सफल था, क्योंकि इसके सम्पादक ने लिखित सामग्री का आश्रय छोड़कर विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों से शब्दों का संग्रह किया और कराया। इसका दूसरा संस्करण सन् १९२६ ई० में गवर्मेण्ट प्रिंटिङ्ग प्रेस, बिहार एण्ड उड़ीसा, पटना से प्रकाशित हुआ।

ग्रियर्सन के वर्षों बाद बीसवीं सदी में इस दिशा में सबसे पहला प्रयास डॉ० मौलाना अब्दुल हक की प्रेरणा से उर्दू में 'इस्तलाहाते पेशावरां' के नाम से आठ छोटी-छोटी जिल्दों में अंजुमने तरक्किए उर्दू, दिल्ली (१९३९-४४ ई०) से मौलवी जाफर उर रहमान साहब देहलवी के सम्पादन में प्रकाशित हुआ। इस कोश में लगभग दो सौ पेशों के बीस हजार शब्द संगृहीत हैं। परन्तु ये शब्द गाँवों के पेशेवरों से नहीं, केवल कुछ मशहूर शहरों और कुछ नई पुरानी किताबों (जैसे 'गुलजारे काश्मीर', 'आईन अकबरी' आदि) से संगृहीत किये गये थे। शहरों में भी दिल्ली, आगरा और जयपुर आदि कुछ चुनी हुई जगहों से ही अधिकांश शब्द लिये गये थे और वे ही शब्द जो कि सम्पादक के नजर में 'मेयारी' यानी स्टैंडर्ड भाषा के अंग प्रतीत हुए। इस कोश में यह भी नहीं बताया गया है कि कौन सा शब्द किस क्षेत्र या स्थान से प्राप्त हुआ। फिर भी इसमें बादशाही जमाने के पुराने खानदानी व कारीगरों से या शहरों के कई पेशेवरों से जो शब्द लिये गये हैं, वे मूल्यवान् हैं।

हर्ष है कि इधर हिन्दी में भी इस क्षेत्र में ग्रियर्सन के ही ढंग पर दो उल्लेखनीय कार्य विश्वविद्यालयों के अनुसंधित्सुओं द्वारा सम्पन्न हुए हैं। एक तो डॉ० हरिहर प्रसादजी गुप्त द्वारा आजमगढ़ जिले की फूलपुर तहसील के परगना माहुल के आधार पर 'ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली' (प्रयाग विश्वविद्यालय से डाक्टरेट का शोध प्रबन्ध, १९५१ ई०) और दूसरा डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' का अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के आधार पर 'कृषक-जीवन सम्बन्धी शब्दावली' (शोध प्रबन्ध, आगरा विश्वविद्यालय, १९५३ ई०)। ये दोनों कार्य अपने अपने क्षेत्रों के सम्बन्ध में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कहे जाएँगे। डा० हरिहरप्रसाद का शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो चुका है। (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली आदि, १९५६)। तुलना के लिए हमने अपने इस कोश में उसका उपयोग भी किया है। तुलनात्मक अध्ययन करके हम इन कार्यों से इस बात का पता पा सकते हैं कि हमारी जनपदीय शब्दावली में कहाँ तक समानता है और कहाँ तक अपनी अपनी विशेषताएँ हैं। 'कृषि-शब्दावली' नाम से भी प्यारेलाल

गर्ग द्वारा संपादित एक छोटी सी ३३ पृष्ठों की पुस्तिका 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' से भी सं० २००० वि० में प्रकाशित हुई थी। परन्तु उसमें केवल कुछ अँगरेजी शब्दों के हिन्दी पर्याय मात्र हैं।

उधर हाल में 'वृत्तिपदकोष' के नाम से तेलुगु क्षेत्र की पारिभाषिक शब्दावली के संग्रह के लिए दक्षिण में इस ढंग का एक आयोजन आंध्र विश्वविद्यालय के डा० भ० कृष्णमूर्त्ति ने किया है। जैसा कि मैंने ऊपर निवेदन किया है, इस प्रकार का कार्य विभिन्न प्रदेशों में शीघ्र होना चाहिए, जिससे हम तुलनात्मक दृष्टि से विचार कर सकें कि इनमें से कितने शब्द ऐसे हैं जिन्हें अखिल भारतीय स्तर पर आवश्यक रूपान्तरों के साथ हम ग्रहण कर सकते हैं।

मराठी क्षेत्र में पूना के निकट के गाँवों के कुछ 'मुहार' जाति के घरों में व्यावसायिक शब्दों की जाँच करते हुए मुझे कई ऐसे शब्द मिले जो बिहार में भी प्राय उसी रूप में प्रचलित हैं। इससे ऐसा जान पड़ता है कि हमारे देश में केवल संस्कृत की तत्सम तथा साहित्यिक शब्दावली का ही अखिल भारतीय प्रसार नहीं है, वरन् दिनानुदिन के विभिन्न व्यावसायों में लगी हुई ग्रामीण जन मंडली की लोकवाणी में भी भाषा की यह मूलभूत समरूपता एक अन्तर्धारा के समान किसी न किसी रूप में व्याप्त है, परन्तु इसकी व्यापकता की जाँच तथा व्यावहारिक उपयोग तबतक असंभव है जब तक देश के विभिन्न भागों में जनपदीय शब्दावली के संग्रह और अध्ययन का कार्य नियमित रूप से सम्पन्न न हो।

अपने देश में तो अभी नहीं, पर इंगलैंड के स्काटलैंड प्रदेश में जनपदीय शब्दावली के क्षेत्र में एक उदाहरणीय और अनुकरणीय कार्य हो रहा है। वहाँ १६२६ ई० में इस कार्य के लिए स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी सोसाइटी के नाम से एक संस्था स्थापित हुई और उसने आक्सफोर्ड इंगलिश लोकभाषा कोश के आदर्श पर कार्य प्रारंभ किया। इस 'स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी' को १० जिल्दों में और ३ स्तंभों के कुल ३२०० पृष्ठों में प्रकाशित करने की योजना बनी। लगभग २८ वर्षों तक कार्य करके १९५७ ई० तक यह सोसाइटी इस डिक्शनरी' के केवल तीन खंडों का प्रकाशन अभीतक कर सकी है। इस कोश में स्कॉटलैंड के ग्रामीण अंचलों में बोली जानेवाली विभिन्न बोलियों के प्रतिनिधि व्यक्तियों और पुरा काल के प्रकाशित साहित्य से शब्दों को संगृहीत करके उन्हें सम्पादित किया जा रहा है। इसमें विभिन्न क्षेत्रों के पर्याय, स्थान निर्देश, उच्चारण और प्रयोग यथास्थान दे दिये गये हैं। किसी प्रदेश की लोकभाषा-संबंधी कोशों में इससे अच्छा कोश मैंने अबतक नहीं देखा। स्कॉटलैंड के एबर्डीन नगर में जाकर और इस कोश के विद्वान् सम्पादक मि० डेविड डो० म्युरिसन के साथ रहकर मैंने अपनी आँखों उनके कार्यक्रम और प्रणाली को देखा। इस डिक्शनरी के संग्रह और संपादन में कई विद्वान् और संग्रहकर्त्ता काम कर रहे हैं। वर्त्तमान संपादक उसके दूसरे संपादक हैं। २८ वर्षों में यह कोश अपने पहले संपादक के जीवन काल का

अतिक्रमण करके अब अपने दूसरे सम्पादक के कार्य-काल में प्रकाशित हो रहा है। इस सोसाइटी के पास कोश निर्माण-सम्बन्धी सभी आवश्यक साधन हैं, जिनकी सहायता से शब्दों का संग्रह, उनके शुद्ध उच्चारण आदि की बातें प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत की जाती हैं। यहाँ के कार्य को देखकर मैं बहुत प्रभावित हुआ था। स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी के समान ही हमने भी अपने इस कोश में विभिन्न अर्थ, पर्याय और क्षेत्र आदि का निर्देश किया है। इनके अतिरिक्त इसमें भाषा विज्ञान की वर्णनात्मक और ऐतिहासिक पद्धति के अनुसार लोकभाषा के शब्दों के वैयुत्पत्तिक और पुनर्निर्मित शब्द भी यथासंभव दे दिये गये हैं। तुलना के लिए बिहार के बाहर की अन्य प्रादेशिक बोलियों के पर्याय भी, जो प्राप्त हो सके हैं, दे दिये गये हैं। इस प्रकार हमारा प्रयास रहा है कि यह कोश, हमारी भाषा में अपने ढंग का पहला कोश कहा जा सकता है, यथासंभव प्रामाणिक और उपादेय हो सके।

हमारे लोकभाषा अनुसंधान-विभाग का कार्य मार्च १९५१ ई० से प्रारंभ हुआ था। इन सात वर्षों की अवधि में कोश का कार्य तो आरंभ से ही होता आया है, किन्तु उसके साथ ही लोकसाहित्य सम्बन्धी दूसरे कार्य भी होते रहे हैं, जिनमें लोकगीतों, कथाओं, गाथाओं, कहावतों, मुहावरों, पहेलियों आदि का संग्रह कार्य और विशेषकर मगही के संस्कार गीतों के सम्पादन का कार्य भी सम्मिलित है। सन् १९५६ तक कार्यालय में अनुसंधान कार्य करनेवाले केवल दो ही व्यक्ति थे। अब इधर तीन हुए हैं। हाँ, बीच बीच में एक आध चार महीने-दो महीने के लिए दो तीन अतिरिक्त व्यक्तियों से भी कुछ काम लिया गया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वल्प साधनों के रहते हुए भी इस छोटी सी अवधि में हम किसी प्रकार कृषि कोश का पहला खंड पूरा करके निकाल रहे हैं। अपनी परिस्थिति की परिसीमाओं के कारण हम इसे जैसा रूप देना चाहते थे, वैसा नहीं कर सके हैं और इसमें अनेक त्रुटियाँ भी रह गयी हैं, जिन्हें हम आगे के खंडों और परिशिष्ट में यथाशक्ति दूर करने का प्रयास करेंगे।

## कार्य-प्रणाली

इस कोश के सम्यक् उपयोग के लिए हमें अपनी योजना की रूपरेखा, कार्यप्रणाली, संकलन व्यवस्था, शब्दार्थ निरूपण, व्युत्पत्ति निर्धारण तथा क्रमादि सम्बन्धी कुछ आवश्यक परिचय दे देना उचित है।

पारिभाषिक शब्दों के हमारे इस संग्रह कार्य के लिए पहले परिषद् की ओर से चार वैतनिक कार्यकर्ता नियुक्त किये गये थे। मैंने उन्हें आवश्यक प्रशिक्षण दे कर विभिन्न निर्धारित क्षेत्रों में संग्रह के लिए भेजा। वे पृथक् पृथक् ग्रामों के विविध अंचलों के प्रतिनिधि-स्वरूप व्यक्तियों से पूछकर शब्दों अर्थों और यथास्थान उनके प्रयोगों को यथाश्रुत रूप में लिख लेते थे और उन्हें परिषद्-कार्यालय में भेज देते थे। यहाँ मेरे निर्देशानुसार उनकी परीक्षा या विशेष रूप से प्रशिक्षित अनुसन्धायक किया करते थे। परन्तु जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, इस ढंग से संग्रह कार्य में सन्तोषजनक

प्रगति न होने के कारण पहले की वैतनिक पद्धति हटा दी गई और उसके स्थान में तत्तत्स्थलों के लोक साहित्य और लोकभाषा के संग्रह में अनुराग और योग्यता रखनेवाले लोगों को यथानियम पारिश्रमिक देकर संग्रह कार्य कराया जाने लगा। इस पद्धति से संग्रह कार्य में संतोषजनक प्रगति हुई।

कोश में शब्दों के साथ साथ मुहावरों का भी निर्देश यथास्थान कर दिया गया है। कृषि-सम्बन्धी लोक कहावतों में प्रयुक्त शब्दों को भी समाविष्ट कर लिया गया है। ग्रियर्सन के 'बिहार पीजैंट लाइफ़' के लगभग दस हजार शब्दों की भी हमने अपनी प्रणाली से जाँच की कि उनमें से अब कितने प्रचलित हैं और कितने अप्रचलित तथा प्रचलित रूपों में भी इस बीच में अर्थगत या ध्वनिगत कितने परिवर्तन हो गये हैं।

अपनी संगृहीत सामग्री के पुनः परीक्षण के लिए विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधि स्वरूप उपयुक्त व्यक्तियों को बुलाकर कोश में आये हुए प्रत्येक शब्द के स्वरूप, अर्थ प्रयोग और पर्याय के बारे में नियमित रूप से पूछ-ताछ करके आवश्यक संशोधन किया गया। ये व्यक्ति उनसे भिन्न थे जिनसे प्रथमतः शब्द संगृहीत किये गये थे। इस प्रकार पुनः जाँच करने से हमें कई नये शब्द और अर्थ भी प्राप्त हुए जिन्हें यथास्थान समाविष्ट कर लिया गया है।

अपने संग्रहकर्त्ताओं के लिए हमने निम्नलिखित निर्देश निर्धारित किये थे जिनके अनुसार उन्हें कार्य करना आवश्यक था—

## संग्रह कर्त्ताओं के लिए आवश्यक निर्देश

१ जनसाधारण या समाज के किसी वर्ग विशेष में प्रचलित शब्दों का ही संग्रह करना होगा।

२ जिस विषय या समाज के जिस वर्ग को लें, उसके सभी भेदों, व्यापारों, गुणों, लक्षणों, रीति रिवाजों, खान पान, रहन सहन सम्बन्धी शब्दों का संग्रह करना होगा।

३ जो शब्द जिस रूप में व्यवहृत हो, उसे ठीक उसी रूप में लिखना होगा। उसे साहित्य का रूप देने के लिए उसमें फेर-बदल या संशोधन नहीं करना होगा।

४ जिस शब्द को लें, उसको लेकर जो मुहावरे या कहावतें व्यवहृत हों, उन्हें भी वहीं सम्मिलित कर लेना होगा। पर कहावतों और फुटकर मुहावरों को एक पृथक् और स्वतन्त्र विषय समझा जायगा।

५ कार्य कर्त्ताओं को जिन व्यक्तियों या वर्गों के बीच जाकर काम करना होगा, उनके प्रति अपनी सेवा, सहानुभूति और सद्भाव के द्वारा उनमें बिल्कुल घुलमिल जाने की चेष्टा करनी होगी, जिससे उनकी पूरी सहानुभूति और सहयोग प्राप्त हो सके और उनको स्वयं संग्रह-कार्य के महत्त्व में विश्वास और दिलचस्पी पैदा हो सके।

६ शब्दों के स्थानीय उच्चारण पर विशेष ध्यान रहना चाहिये और उनको ठीक उसी रूप में लिखा जाना चाहिए।

७ एक शब्द का एक ही अर्थ में अनेक बार उल्लेख नहीं करना चाहिए।
८ अर्थ एवं विवरण पर विशेष ध्यान रहना चाहिए। उन्हें स्पष्ट रूप से लिखना आवश्यक है।
६ प्रत्येक विषय का पारिभाषिक शब्द यथासम्भव एक साथ और पूर्ण रूप से लिखना चाहिए। निर्दिष्ट वर्गों में विषयों का विभाग और उप विभाग भी कर लेना उचित है।
१० जो पारिभाषिक शब्द न हो, उन्हें अलग ही लिखना चाहिए।
११ निर्देश पत्र में दिए हुए प्रत्येक नियम को ध्यान पूर्वक समझ या देखकर उपयोग में लाना आवश्यक है।
१२ शब्दों, कहावतों, मुहावरों और पहेलियों को पृथक् पृथक पन्नों पर लिखना चाहिए। जहाँ शब्द लिखे जायँ, वहाँ दूसरे विषय न लिखे जायँ।

इन निर्देशों के अनुसार शब्द संग्रह करने के लिए कार्यकर्ताओं को एक मुद्रित तालिका दी गई थी, जो इस प्रकार थी —

संग्रह की इस तालिका का निम्नलिखित विवरण भी निर्देश-पत्र के साथ संलग्न था—

## संग्रह की तालिका का विवरण

१ (क) साथ में दी हुई सूची के अनुसार जिस विषय के शब्दों का संग्रह किया जाय, उसका यहाँ उल्लेख करना होगा।
(ख) सूची के अनुसार समाज के जिस वर्ग में काम किया जाय, उसका यहाँ उल्लेख करना होगा।
२ जिस स्थान में काम किया जाय, उसका उसके सबडिवीजन, जिला आदि का नाम देना होगा।
३ भोजपुरी, मगही, मैथिली, नागपुरिया आदि जिस भाषा के क्षेत्र में काम किया जाय, उसका उल्लेख करना होगा।
४ आबादी की संख्या ठीक-ठीक न मालूम हो सके या पूछताछ से पता लगाकर अन्दाज से देना होगा।
५ जहाँ जिस स्थान (गाँव आदि) में काम किया जा रहा है, वहाँ की जनता में हिन्दू, मुसलमान, हरिजन, किरस्तान, जैन, आदिवासी, चेरो, खरवार, संथाली, उराँव, किसान, जमींदार, मजदूर, लुहार आदि पेशेवालों में कौन अधिक है, कौन कम है, आदि बातों का उल्लेख करना होगा।
६ सिलसिलेवार संख्या।
७ शब्दों के साथ उनसे सम्बन्ध रखनेवाले मुहावरों को भी दर्ज करना होगा। कहावतों को स्वतंत्र विषय समझा जायगा। शब्दों के लिङ्ग का भी (स्त्रीलिङ्ग, पुंलिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग, उभयलिङ्ग या अलिङ्ग) इस प्रकार उल्लेख करना होगा।

ये शब्द वहाँ जन-समाज में वस्तुत जिस लिङ्ग में व्यवहृत होते हों, उसीका उल्लेख करना होगा, साहित्यिक व्याकरण के अनुसार नहीं।

८ अर्थ स्पष्ट और सरल भाषा में देना होगा। जटिलता दूर करने और अर्थ को तथा प्रयोग को और अधिक स्पष्ट करने के लिए जहाँ आवश्यक हो, वहाँ उदाहरण देने की जरूरत होगी, अन्यथा नहीं। उदाहरण के वाक्य उसी भाषा के हों, जिसके क्षेत्र में काम किया जा रहा हो या अपने बनाये हुए हिन्दी के सरल वाक्य हों।

९ (क) यहाँ इसका उल्लेख करना होगा कि वह शब्द केवल उसी वर्ग विशेष में प्रचलित है या उसके सामान्य जन समूह में भी। जैसे, खटिया आदि शब्द जो सामान्यत प्रचलित हैं, इन्हें सामान्य (सामा०) कहना होगा और 'पोर', 'परुआ', 'परइ आदि जो केवल 'कानू' जातियों में प्रचलित हैं, विशेष (विशे०) कहे जायँगे।

संग्रह-कार्य निम्नलिखित विषय-सूची के अनुसार होता रहा है —

## वृत्तियों की विषय-सूची

१ पेशे के औजार और सामग्रियाँ, उनके भेद और हिस्से। उदा०—हल, बैल, खेत, बीज आदि।
२ पेशे के ढग और उनके काम आनेवाले जानवर।
३ पेशे की सवारियाँ, उनके भेद, हिस्से।
४ पेशे के ढग तथा उसकी विविध क्रियाओं और अवस्थाओं से सम्बन्ध रखनेवाले शब्द (जैसे—जुताई, बुवाई खुदाई, सिचाई, खाद देना, सोहनी, रखवाली करना)
५ पेशे की पैदावार के भेद।
६ पेशे या पेशे की सामग्रियों की बाधाएँ और ऐब।
७ पेशे या पेशे की सामग्रियों को बढ़ाने या मदद पहुँचानेवाली चीजें।
८ खाने पीने की सामग्रियाँ, उनके हिस्से, भेद और उनसे बननेवाली चीजें।
९ मसाले।
१० खाना बनाने की सामग्रियाँ।
११ घर के सामान, आसन, शय्या आदि।
१२ कपड़े-लत्ते और कपड़ों के नाम (छींट आदि)।
१३ गहने और शृगार के सामान।
१४ पूजा-पाठ, इबादत की सामग्रियाँ और स्थान।
१५ जमीन और मिट्टी के भेद।
१६ मौसम, हवा, पानी, बादलों के भेद।
१७ तौल और माप।

१८ दूरी, दिशा और समय-सूचक शब्द (घड़ी, मौसम आदि)।
१९ घरेलू और पालतू जानवर, उनके रंग ढंग, रहन-सहन, भेद, रहने के स्थान बीमारी, चरागाह, भोजनादि की सामग्री।
२० पशु पक्षी तथा अन्य जीव (मछली आदि)।
२१ घर बाहर तथा जल थल के कीड़े मकोड़े (चींटे चींटी, बिच्छू, साँप, गोजर आदि)।
२२ लेन देन, माहवारी हिसाब।
२३ जमीन के लगान और उसके भेद।
२४ घर, झोपड़े और मन्दिर-मसजिद आदि के प्रकार, उनके हिस्से और बनाने की सामग्रियाँ, जैसे छत, छप्पर, छवाई आदि।
२५ शादी ब्याह के शब्द।
२६ शादी-ब्याह के रस्म रिवाज, (क) हिन्दुओं के, (ख) मुसलमानों के, (ग) क्रिस्तानों के, (घ) आदिवासियों के।
२७ (क) जात कर्म (१) हिन्दुओं के (२) मुसलमानों के (३) क्रिस्तानों के (४) आदिवासियों के।
(ख) जनेऊ।
२८ मृत्यु-संस्कार (क) हिन्दुओं के (ख) मुसलमानों के (ग) क्रिस्तानों के (घ) आदिवासियों के।
२९ सोहनी रोपनी की संस्कार विधियाँ।
३० पंचायत, समझौता, शपथ आदि तथा मामले-मुकदमे संबंधी कचहरी के शब्द।
३१ अन्धविश्वास
३२ तिजारत और बाजार
३३ महाजन और कर्जदार के हिसाब किताब।
३४ जमींदार और किसान के हिसाब किताब।
३५. कर्ज, सूद, रेहन आदि।
३६ व्रत, त्योहार ( तीज, छठ, होली, ईद, बकरीद, क्रिसमस ) और उनकी सामग्रियाँ।
३७ रिक्शा, टमटम, फिटिन, एक्का, मोटर और हवाई जहाज के हिस्से।
३८ मार-पीट और युद्ध के हथियार।
३९ खेल-कूद, आमोद, मनोविनोद आदि, उनके भेद तथा तत्संबंधी सामग्रियाँ।
( आँखमुँदौवल, कबड्डी, गोटी चौपड़, शतरंज, कुश्ती, कसरत, अखाड़े, मनोविनोद, गुल्ली-डंडा, पतंग, कबूतरबाजी आदि )
४० गाली गलौज।
४१ आशीर्वाद, सद्भावना तथा शिष्टाचार।
४२ नाच, गान, रासलीला के शब्द और गीत।

४३ मजहब, जात पाँत के भेद ।
४४ फूल, फल पेड़ पौधे, घास फूस और उनके भेद ।
४५ बीमारियों के भेद ।
४६ घरेलू, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक, संबंधसूचक (माँ, बाप, भाई, बहन, चाची, पड़ोसी, जवार ) ।
४७ गुण, भाव, सुख दुख, राग द्वेष आदि मन के विकार तथा अवस्थाओं के भेद और अन्य सांस्कृतिक या भावात्मक शब्द ।
४८ उत्पातक—(क) प्राकृतिक—भूचाल, आँधी ।
(ख) मानवीय-चोरी, डकैती, उसके भेद, व्यापार आदि (सेंध आदि) ।
४९ प्राकृतिक संबंधी—नदी, नद, झरने, मैदान, पहाड़ तथा मनुष्यकृत ताल-तड़ाग, पुल, बाग, बागीचे, कुएँ आदि ।
५० शरीर के विभिन्न अंग—आदमी के ( पुरुष के, स्त्री के ), जानवरों के, पशु पक्षियों के, कीड़े मकोड़ों के ।
५१ स्त्रियों में प्रचलित खास शब्द और मुहावरे तथा उनकी गृह-कलाओं से संबद्ध शब्द ।
५२ संख्यावाचक शब्द और गिनती ।
५३ सर्वनाम के शब्द ।
५४ रंगों के भेद और उनके नाम ।
५५ खान आदि के शब्द ।
५६ भिन्न भिन्न कामों के भेद तथा कामों की विविध अवस्थाओं के भेद ।
५७ स्वतंत्र मुहावरे ।
५८ कहावतें ।
५९ विविध ।

संग्रहकर्ताओं को विषय-सूची के इन सभी पक्षों की सार्थकता को भली भाँति समझाकर संग्रह कार्य में इनका सदा ध्यान रखने को बता दिया गया था ।

## जन-समाज के वर्ग

जन समाज के जिन विभिन्न वर्गों के बीच भेजकर संग्रह कर्ताओं से संग्रह कराया जाता था, उसके लिए भी एक सूची तैयार की गई थी, जो यहाँ दी जा रही है —

| | |
|---|---|
| १ किसान | ७ मजदूर |
| २ जमींदार | ८ बढ़ई |
| ३ साहूकार, महाजन और बनियाँ | ९ लुहार |
| ४ पुरोहित | १० चमार चमाइन |
| ५ नाई | ११ दुसाध |
| ६ राज तथा मकान की छाजनी आदि करनेवाले | १२ धोबी |

१३ धुनियाँ
१४ जुलाहा
१५ कुँजड़ा
१६ रँगसाज
१७ कुँहार
१८ कहार
१९ दरजी
२० तेली
२१ बजाज
२२ हलवाई
२३ भड़भूँजा
२४ चुड़िहारा-चुड़िहारिन
२५ अहीर अहीरिन
२६ पटवारी
२७ कारपरदाज
२८ सुनार
२९ मुसहर
३० पासी, चिड़ीमार
३१ मेहतर
३२ बाउरी ( धनबाद की ओर )
३३ चेरो
३४ चेरो-खारो
३५ कुली
३६ खान रेलवे, मिलों और फैक्टरियों में काम करनेवालों के शब्द
३७ बीड़ावाला
३८ तमोली और पानवाला
३९ माझी
४० गंधी
४१ चमार, चमरिया
४२ कचहरी और कानूनी मुकदमे के शब्द
४३ कलाओं के शब्द ( लोकगीत, लोक नाच, लोककथा )
४४ तम्बू कनात खेमे के काम करनेवाले
४५ आदिवासी
४६ तैराकी
४७ वैद्य और हकीम के सामान्य शब्द
४८ साधु संत तथा ओझा गुणी, जादू टोना आदि।
४९ नट नटवे, बहुरुपिया और बाजीगरी
५० दाई, नौकर, चपरासी, प्यादे आदि
५१ सिपाही, चौकीदार आदि।
५२ कानू
५३ मछुआ मल्लाह
५४ पटवा
५५ ठठेरा
५६ कोयरी
५७ डोम
५८ कसाई
५९ दफ्तरी और जिल्दसाज
६० विविध—छप्पर, खिलवट, पलानी, कसरे, मधु का काम, नामधेदी, ईंट-पाथर, खाना पकाने, दहोवाग—धारना, धन गिनना, कपास खोटना, भट्ठी सुलगाना, दरी बिछाना।

## बिहारी भाषा या भाषाएँ

वास्तव में 'बिहारी' नाम की कोई भाषा न तो बिहार के किसी भाग में बोली जाती है, न बिहार के बाहर। बिहार में किसी से भी पूछा जाय तो कोई भी 'बिहारी' भाषा का नाम नहीं लेगा। न तो प्राचीन शिष्ट साहित्य में ही और न लोक-साहित्य में ही,

किसी भाषा के अर्थ में, इस शब्द का प्रयोग पाया जाता है। भाषा के अर्थ में तो यह एक नया अपनाया हुआ नाम है, जो 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' के सिलसिले में ग्रियर्सन द्वारा बिहार की प्रमुख भाषाओं—मगही, मैथिली, भोजपुरी—और उनके भेदों के लिए प्रयुक्त किया गया था। जैसे उन्होंने राजस्थान की बोलियों के लिए एक नया नाम गढ़ा था—'राजस्थानी', वैसे ही बिहार की इन बोलियों का 'बिहारी' नाम रख दिया था। अतएव महाराष्ट्र की भाषा को जिस अर्थ में 'मराठी', गुजरात की भाषा को जिस अर्थ में 'गुजराती', बंगाल की भाषा को जिस अर्थ में 'बँगला' और उड़ीसा की भाषा को जिस अर्थ में 'ओड़िया' कहते हैं, उस अर्थ में भाषार्थक 'बिहारी' शब्द को नहीं ग्रहण किया जा सकता। 'बिहारी' कोई एक भाषा या बोली नहीं, किन्तु उपर्युक्त तीनों भाषाओं का बोधक शब्द है। इसके अतिरिक्त हम यह भी देखते हैं कि इन तीनों भाषाओं की सीमा बिहार में ही सीमित नहीं है। इनमें से भोजपुरी भाषी क्षेत्र का एक बहुत बड़ा भाग उत्तर प्रदेश में है। इसी प्रकार मगही भाषी क्षेत्र का एक भाग (मानभूम का कुरमाली भाषी अंश) अभी हाल में बंगाल में मिला लिया गया है। मैथिली क्षेत्र के भी कुछ अंश बंगाल में सम्मिलित हैं। वस्तुत ग्रियर्सन ने बिहार में इन बोलियों के विस्तार प्राधान्य तथा इनमें जो एक विशिष्ट और घनिष्ठ समरूपता है, इन्हीं आधारों पर उनका यह एक समान नामकरण कर दिया था। इन बोलियों या भाषाओं की यह व्यापक समानता उन्हें एक ओर बँगला से पृथक् करती है और दूसरी ओर अवधी तथा अन्य पश्चिमी बोलियों से भी भिन्न और विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। इन समानताओं को अभिव्यक्त करने के लिए, इनकी ओर ध्यान केंद्रित करने के लिए 'बिहारी' निस्सन्देह एक साधक संज्ञा है। यहाँ जो संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें हम इसी अर्थ में इस शब्द का आवश्यकतानुसार प्रयोग करेंगे।

इस दृष्टि से 'बिहारी' उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में छोटानागपुर पठार तक और पूर्व में बंगाल की सीमा से लेकर पश्चिम में मध्य प्रदेश के सरगुजा तथा उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद, फैजाबाद और बस्ती जिले के पूर्व तक बोली जाती है। इस प्रकार 'बिहारी' भाषा के पूर्व में बँगला, दक्षिण में ओड़िया, पश्चिम में छत्तीसगढ़ी, बघेली और अवधी जो हिन्दी की मध्यदेशीय उपभाषाएँ हैं, और उत्तर में नेपाली बोली जाती है।

इस सीमा के अंदर इस भाषा के साथ साथ आदिवासियों में संताली, मुंडारी, हो, खड़िया, कोरकू और भूमिज आग्नेय या निषाद कुल की और ओराँव या कुड़ुँख तथा माल्तो द्रविड़ कुल की हैं।

'लिंगुइस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' के अनुसार मैथिली, मगही और भोजपुरी इन तीनों 'बिहारी' बोलियों के बोलनेवालों की संख्या क्रमश एक करोड़, पैंसठ लाख तथा दो करोड़ से ऊपर है। ये 'बिहारी' बोलियाँ आर्यभाषा परिवार की हैं, परन्तु उनमें यहाँ की

कोल और द्रविड़ भाषाओं के भी प्रचुर प्रभाव हैं। ये हिंदी प्रदेश के पूर्वी अंचल की अंतिम उपभाषाएँ हैं। भारतीय संविधान में भी 'बिहारी' भाषा क्षेत्र हिंदी प्रदेश के ही अंतर्गत रखा गया है। पूर्व में इनके आगे बँगला का अंचल प्रारंभ हो जाता है।

बिहार में बोली जानेवाली भाषाओं की भौगोलिक स्थिति को स्पष्ट करने के लिए हमने एक विशेष मानचित्र तैयार किया है, जो इस कोश के आरंभ में दिया जा रहा है। उससे बिहारी भाषाओं के विस्तार, परिसीमा आदि का परिचय अनायास हो सकेगा।

## 'बिहारी' का हिन्दी और बँगला से संबंध

बँगला और 'बिहारी' के संबंध का विचार करते हुए ग्रियर्सन ने बँगला के 'अ' से 'बिहारी' (मैथिली) के 'अ' का साम्य दिखलाया है, किन्तु उन्हीं के लेखानुसार 'बिहारी' का 'अ' अल्प आयत (Broad sound) है, जब कि बँगला का 'अ' अधिक आयत। और यह साम्य भी भोजपुरी-मगही में तो कदापि नहीं है। इस संबंध में 'आयत' से उनका आशय स्पष्टतः 'वर्तुल' से था।

दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि बँगला में दंत्य 'स' के स्थान में तालव्य 'श' का उच्चारण होता है, जिसे प्राकृत व्याकरण में मागधी का लक्षण बताया गया है। पर आज किसी भी बिहारी बोली में ऐसा नहीं होता। बिहारी में सर्वत्र तालव्य 'श' और मूर्धन्य 'ष' के स्थान में दंत्य 'स' का ही उच्चारण होता है। उर्दू में तालव्य 'श' और संघर्षी 'ज' के लिए जो लिपि चिह्न प्रयुक्त होते हैं, उनपर नुक्ते दिये जाते हैं। इस संबंध में मजाक करते हुए ग्रियर्सन ने लिखा है कि दुनिया भर के नुक्ते एक साथ मिलकर भी किसी बिहारी से 'श' को 'स' के सिवा तथा 'ज़' को 'ज' के सिवा और कुछ कदापि उच्चरित नहीं करा सकते (बिहार पीजेंट लाइफ, भूमिका, पृ० ३)। हिंदी प्रदेश की दूसरी बोलियों में भी यही विधान है। शब्द भंडार तथा परसर्गादि के रूप तथा भी अनेक व्याकरणिक कोटियों की दृष्टि से भी 'बिहारी' का हिंदी से घनिष्ठ संबंध है।

## 'बिहारी' के भेद उपभेद

उपर्युक्त तीन उपभेदों के अतिरिक्त इधर व्याकरण संबंधी प्रयोगों के कुछ स्पष्ट दृश्यमान अंतरों के आधार पर दो और नाम कल्पित करके 'बिहारी' के तीन के स्थान में अब कुछ लोगों के द्वारा पाँच उपभेद बताए जाने लगे हैं —

मैथिली, अंगिका या भागलपुरी, वज्जिका, मगही और भोजपुरी। इनमें से अंगिका या भागलपुरी को ग्रियर्सन ने 'छिकाछिकी' नाम से मैथिली की ही एक उपभाषा बतलाया है, और वज्जिका का परिगणन मैथिली। इसतः भोजपुरी के अंतर्गत पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी (नागपुरिया)—ये भेद भी किये हो जा सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन सभी भेदों और उपभेदों में आंतरिक साम्य होते हुए भी कुछ-न

कुछ अपनी अपनी पृथक विशेषताएँ भी हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि इन सबको केवल दो भेदों में विभक्त करके मगही को सरलता से मैथिली के ही अंदर ले लिया जाय। मगही और मैथिली का गठन कई अंशों म परस्पर भिन्न है। दोनों के व्याकरण और उच्चारण में भी पार्थक्य है। शब्दरूप और क्रियारूप भी भिन्न भिन्न हैं।

वस्तुतः बिहार की ये सभी उपभाषाएँ पूर्वकाल में सम्भवतः किसी एक ही मूल से निकलकर नये स्रोतों की तरह अपने पृथक् पृथक् मार्गों से भिन्न रूपों में प्रवाहित होती आ रही हैं। यह मूल भाषा 'मागधी' बताई जाती है, जो बँगला, असमी और ओड़िया का भी उद्गम मानी जाती है। इस दृष्टि से ये सभी बहनें हैं। एक रूप नहीं, समरूप हैं। मगही और मैथिली से भोजपुरी में अपेक्षाकृत कुछ अधिक अंतर है। सम्भव है, उस पर अर्धमागधी का भी कुछ प्रभाव है। सच पूछें तो भारतवर्ष की किसी भी आधुनिक भाषा को किसी विशेष प्राकृत या अपभ्रंश के साथ हम निश्चयात्मक रूप से सबद्ध नहीं कर सकते हैं, क्योंकि जैसा टर्नर ( R L Turner, Gujarati, Phonology, J R A S, १६२५ ई पृ० ३२६) और ब्लाक (J Bloch, La Formation de La Langue Marathi) महोदयों ने इंगित किया है।

प्राचीन प्राकृत या अपभ्रंश काल में किसी विशेष जनवर्ग द्वारा वास्तविक रूप में बोली जानेवाली भाषा का कोई प्रामाणिक लिखित उदाहरण आज हमें उपलब्ध नहीं है। और दूसरी ओर वर्तमान देशी भाषाओं में तीर्थ यात्रा, सांस्कृतिक एकता, शादी ब्याह के सबध, देश प्रदेश के यातायात तथा भाषागत समान परिवर्तनों के कारण बहुत कुछ मिश्रण हो चुका है। ऐसी दशा में प्राकृतिक वैयाकरणों की शब्दावली का आश्रय ग्रहण करके हम अधिक से अधिक यही कह सकते हैं कि 'बिहारी' प्राच्यभाषा-वर्ग के अंतर्गत आती है, जिसका पश्चिमी रूप अर्धमागधी और पूर्वी रूप मागधी, इन दोनों के बीच न प्रदेश से सबद्ध होने के कारण उसमें कुछ कुछ दोनों के लक्षण पाये जाते हैं।

## कुछ सामान्य नियम

बिहारी की विशेषता म उसकी ध्वनियों के रागात्मक तत्व भी उल्लेखनीय हैं। कई ध्वनिराग तो ऐसे हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। उनका विस्तृत विश्लेषण, जहाँ तक भोजपुरी के सबध में लागू है, मने लदन विश्वविद्यालय के अपने शोध प्रबंध में किया है। उच्चारण तथा बिहारी शब्दों के यथावत् अध्ययन के लिये इनका थोड़ा परिचय अपेक्षित है। उदाहरण के लिये एक लिखित रूप लीजिए—"देखल।"

बिहारी में यह विभिन्न रागों में उच्चारित होकर तीन विभिन्न अर्थों का द्योतक है—

देख लऽ—देख लो।

देख लऽ—तुमने देखा।

देखल्—देखा हुआ।

पदांत के 'अ' का उच्चारण बिहारी में कुछ स्थितियों में होता है। समझाने के लिए ग्रियर्सन (लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, जिल्द—१, भाग—१, १९२७ ई०, जिल्द—५,

भाग—२, १६०३ ई० ) ने बहुत प्रयत्न किया। पर ध्वनि विज्ञान की प्रणाली के बिना उसका ठीक-ठीक वर्णन कठिन था। इस ध्वनि संकेत के लिए नागरीलिपि में 'ऽ' इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

बिहारी वाक्यों तथा शब्दों के संगठन में बलाघात, स्वराघात तथा मात्रा की बड़ी रोचक तथा विशिष्ट व्यवस्था है। मात्रा-व्यवस्था के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि कुछ खुले हुए दीर्घाक्षरों की धातुओं—जैसे, खा, जा,आदि के रूपों को छोड़कर किसी शब्द या पद के अंतिम स्थान से दो स्थान पूर्व का कोई अक्षर दीर्घ रूप में नहीं टिक सकता। उसका ह्रस्वीकरण अवश्यंभावी है। जैसे—

बाहर—बाहरी

बोली—बोलिया

देखल—देखली

इनमें दाहिनी ओर के रूपों में प्रथमाक्षर के स्वरों का उच्चारण ह्रस्व होता है। ग्रियर्सन ने इस रागात्मक प्रवृत्ति का उल्लेख 'उपधापूर्व का नियम' इस नाम से किया है।

## मात्रा की रागात्मक प्रक्रिया

अ—अकार की मात्रा का एक यह रूप है, जो सामान्यतया हिन्दी की सभी उपभाषाओं में है। यथा—अग्नि, मरल।

दूसरा रूप यह है, जो अतिह्रस्व या अर्ध ह्रस्व है और जो शब्दों के बीच में आया करता है। यह शब्दों की रागात्मक प्रवृत्ति के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ता है अथवा अर्धस्फुट जैसा होता है। इसे ग्रियर्सन ने 'अश्रुत स्वर' कहा है। यथा—'पैठरवारा', 'पतरवाहा', इन शब्दों के तीसरे 'र' में स्थित 'अ' मात्रा का श्रवण नहीं होता है। यह एक ऐसा 'अ' है जो द्रुतगति के भाषण में पूर्णतः शून्य भी ग्रहण कर ले सकता है। ऐसे शब्दों को लिखा तो जाता है, पैठरवारा, पतरवाहा के रूप में, किंतु उच्चारण के अनुसार ये 'पैठवारा' 'पतवाहा' जैसे हो जाते हैं।

सामान्यतः शब्दों के अंतिम 'अ' का उच्चारण नहीं होता है। कुछ विशेष रूपों को छोड़कर अन्यत्र शब्दांत का 'अ' अनुच्चरित रहता है और अंतिम वर्ण हिंदी के समान ही हलवत् उच्चरित होता है यथा—'कल'। किंतु लिखने में यह हलंत न लिखा जाकर पूरा लिखा जाता है।

जिन रूपों में अंतिम 'अ' उच्चरित होता है, उनमें उसका कुछ अपूर्ण उच्चारण होता है।

यत्र-तत्र भागलपुरी रूपों में यह अंतिम 'अ' 'अकार' रूप में इस कोष में अंकित किया गया है, क्योंकि शब्द-संग्रह करनेवालों ने उसे उसी प्रकार उल्लिखित किया है।

आ—दीर्घ 'आ' की मात्रा का उच्चारण एक तो वैसा ही होता है जैसा कि सामान्यत हिंदी की दूसरी उपभाषाओं में। किंतु इसका बिहारी भाषाओं में ह्रस्व उच्चारण भी होता है। जैसे—आसमान, मालपूआ आदि में आदि का 'आ'।

इ उ—शब्द के अंत में ह्रस्व इ, उ की ध्वनि अघश्रुत होती है, जैसे—मैथिली में 'कयलन्हि', 'करियहु', 'पानि' प्रयोगात्मक प्रणाली से जाँच करने पर भोजपुरी में व्यवहृत इस अंतिम ह्रस्व 'इ' और 'उ' की ध्वनि फुसफुसाहट की ध्वनि सिद्ध होती है, जैसे आगि, मधु।

## ए—ओ

ये दोनों दीर्घस्वर बिहारी में दीर्घ के अतिरिक्त ह्रस्व भी होते हैं। इनके ह्रस्वीकरण के नियम वे ही हैं जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। उदा०—अगेहिया, अगोरिया। इन दोनों शब्दों में अंतिम दो अक्षरों के पूर्व के ए और ओ ह्रस्व हो गये हैं। यही नियम सर्वत्र लागू है। इसलिए कोश में इनके लिए कोई पृथक चिह्न देना आवश्यक नहीं समझा गया।

## सन्ध्यक्षर स्वर

पश्चिमी हिंदी में नियमित रूप से सन्ध्यक्षर स्वर व्यवहृत होते हैं, परंतु बिहारी बोलियों में ये प्राय संयुक्त-स्वर के रूप में उच्चरित होते हैं। इसलिए हम इन्हें स्वरानुक्रम या य़्व् श्रुति रूप में ग्रहण कर सकते हैं। यथा 'ऐ' के स्थान में 'अइ', 'अय्' और 'औ' के स्थान में अउ अव्। उदाहरण—ऐंठा के स्थान में अईंठा, चैत के स्थान में चइत, घौर के स्थान में घउर।

साथ ही ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जिनमें 'ऐ' का उच्चारण 'अय्' और 'औ' का उच्चारण 'अव्' होता है।

यथा—धौद के स्थान में धवद। बैर के स्थान में बयर। बैल के स्थान में बयल।

संभव है, ये 'अय्'। अव् राग वाले शब्द पश्चिम के आगत शब्द हों।

साधारण बोलचाल में द्रुतगति के उच्चारण में सन्ध्यक्षर स्वर के रूप में भी इनका उच्चारण सुना जाता है, जिसमें 'ऐ' के एक उच्चारण में सन्ध्यक्षर की गति 'अ' से 'इ' की ओर और दूसरे में 'अ' से 'ए' की ओर एवं 'औ' के एक उच्चारण 'अ' से 'उ' की ओर और दूसरे में 'अ' से 'ओ' की ओर रहती है।

कोश में इन भेदों के प्रदर्शन के लिए अलग लिपि चिह्न का प्रयोग नहीं किया गया है, बल्कि बिहारी बोलियों में जो रूप सामान्यत प्रचलित हैं, वही दिये गये हैं। अइ और अउ के उच्चारण में तो स्वरानुक्रम वाला रूप दिया गया है और अय् तथा अव् वाले रागात्मक रूपों को सन्ध्यक्षर द्योतक लिपि चिह्न ऐ तथा औ द्वारा ही संकेतित कर दिया गया है। बिहारी उच्चारण के अनुसार तो अय् और अव् वाले रूप ही देना चाहिए

## ड़ और र

बिहारी भाषाओं में 'ड़' और 'र' का भेद तो है, किन्तु इन दोनों के उच्चारण में नियमितता नहीं है—विशेषत मैथिली में। अत एक ही शब्द में ये दोनों उच्चारण समव हैं, कभी 'ड़' कभी 'र'। यथा—अँगेड़िहा, अँगेरिहा, अँगेड़ी, अँगेरी। इस कोश में यथासंभव ये दोनों ही रूप दिये गये हैं। किंतु जहाँ ऐसे दोनों रूप नहीं भी हों, वहाँ भी दो रूप समावित समझने चाहिए। 'ड़' और 'र' के इस विकल्प से मूल शब्द के अर्थ में कोई भेद नहीं होता है। ऐसे स्थलों में उन्हें सस्वन ही मानना सगत होगा।

मगही में कभी कभी महाप्राण ध्वनि में विपर्यय भी हो जाता है, यथा—'चढ़ के' के स्थान में 'चहड़ के'।

हमने कोश में निम्नलिखित क्रम का अनुसरण किया है—

कोश में व्यवहृत क्रम

१। कोश के आरम्भ में अक्षर शीर्षक 'अ', 'आ' आदि १६ प्वाइंट काले में दिया गया है।

२। इसके बाद वर्णानुक्रम से कृषिवाची मूल शब्द दिये गये हैं। ये १२ प्वाइंट सं० १ में हैं।

३। शब्दों के पश्चात् निर्देश चिह्न (—) देकर गोल कोष्ठ में व्याकरण सकेत (सं०, क्रि०) आदि दिये गये हैं।

४। तत्पश्चात् मूल शब्द का प्रधान पारिभाषिक अर्थ दिया गया है। यदि एक शब्द के कई पारिभाषिक अर्थ हैं, तो किसी भी अर्थ के पहले कोष्ठक में सख्या क्रम देकर विभिन्न अर्थों का उल्लेख किया गया है। इसमें प्रयास यही रहा है कि अर्थ की प्रधानता के अनुसार ही उनका क्रम भी हो। यदि उस शब्द का कोई सामान्य अर्थ भी है, तो वह उसी क्रम में अंत में, दिया गया है।

५। अर्थ के पश्चात् जिस क्षेत्र में यह अर्थ प्रचलित है, उस क्षेत्र का सक्षिप्त रूप कोष्ठक में दिया गया है। यदि एक से अधिक क्षेत्रों में यह अर्थ प्रचलित है, तो उन सभी क्षेत्रों का सक्षिप्त रूप दिया गया है। इस सक्षिप्त रूप का अर्थ है कि या तो यह शब्द उस अर्थ में निर्दिष्ट क्षेत्र में प्रचलित है, अथवा उक्त अर्थ में उस क्षेत्र से सगृहीत हुआ है। उसका यह अर्थ कदापि न समझा जाय कि केवल उक्त क्षेत्र में ही यह शब्द अथवा अर्थ प्रचलित है। सभव है, यह दूसरे क्षेत्रों में भी हो। यहाँ मुख्यतः इसलिए उस क्षेत्र का उल्लेख किया गया कि उक्त शब्द अथवा अर्थ निर्दिष्ट क्षेत्र से ही संगृहीत हुआ है।

अर्थ सफेद पाइका स० ३ मोनो टाइप में दिया गया है।

६। कोष्ठक में क्षेत्र निर्देश के पश्चात् यदि उक्त शब्द का कोई दूसरा भी पर्यायवाची शब्द है, तो उसका भी 'दे० ( देखिए )' के बाद उल्लेख कर दिया

गया है। यह दे० "            " कभी कभी मूल शब्द के बाद में ही प्रयुक्त हुआ है और वहाँ अर्थ न देकर केवल पर्याय का निर्देश कर दिया गया है, जिससे कि उस पर्याय के आगे वह देख लिया जाय।

७। इसके उपरान्त 'पर्या०' (पर्याय) देकर पारिभाषिक शब्द के अनेक पर्याय दिये गये हैं और प्रत्येक पर्याय के आगे गोल कोष्ठक में क्षेत्र का संक्षिप्त रूप है। एक से अधिक पर्याय के रहने पर उनका पूर्वोक्त क्रम से उल्लेख किया गया है। ये सभी पर्याय बिहारी भाषाओं के विभिन्न क्षेत्रों में प्रयुक्त शब्द हैं। यत्र-तत्र इलाहाबाद और बनारस के आस पास के भी शब्द दे दिये गये हैं; क्योंकि ये दोनों स्थान भोजपुरी से सम्बद्ध हैं। ऐसे शब्दों के आगे भी स्थान निर्देश कर दिया गया है।

८। पर्यायों के बाद बड़े कोष्ठकों में कोश के मूल शब्द के व्युत्पत्तिक या पुनर्निर्मित रूपान्तर दिये गये हैं। इनमें यथासम्भव शब्द के ऐतिहासिक विकास का ध्यान में रखा गया है। साथ ही कहीं व्युत्पत्ति के साथ और कहीं बिना व्युत्पत्ति के भी मूल शब्द के सादृश्य संस्कृत शब्द और आगे तद्भव, पालि, प्राकृत तथा आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं के पर्याय रूप दे दिये गये हैं। प्रत्येक शब्द के आगे कोष्ठक में उसकी भाषा का संक्षिप्त रूप निर्दिष्ट है। इसके अतिरिक्त इसी कोष्ठक में शब्दों की व्युत्पत्ति या पुनर्निर्मिति विषयक विभिन्न मत भी यथास्थान निर्देश के साथ दिये गये हैं। जहाँ किसी पुस्तक अथवा लेखक का नाम लिया गया है, उसके संक्षिप्त रूप के पहले एक निर्देश चिह्न लगा दिया गया है।

हमारी लोकभाषाओं में कई ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जो संस्कृत के विभिन्न कोशों में तो उसी रूप में उल्लिखित हैं, पर संस्कृत पालि और प्राकृत के साहित्य में उनका प्रयोग नहीं मिलता। ऐसे स्थलों में संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि के कोशों से उन शब्दों के उद्धरण दे दिये गये हैं और अन्त में उन कोशों के संक्षिप्त रूप कोष्ठक में दिये गये हैं। जैसे— 'कड़ाह' के लिए 'कटाह' और 'पैंड़ा' के लिए 'पैंदक'।

यत्र तत्र आवश्यकतानुसार कोष्ठक के अन्दर और कहीं कहीं बाहर भी, शब्द की विशेष व्याख्या के लिए 'टि०' (टिप्पण) देकर विस्तृत विचार का क्रम दिया गया है।

कोष्ठक के अन्दर व्युत्पत्ति आदि के रूप तिर्यगक्षर (१२ प्वाइंट इटालिक्स) में दिये गये हैं।

## शब्दार्थ निरूपण

इस कोश में बिहार प्रदेश के विभिन्न जिलों अथवा क्षेत्रों में बसनेवाले कृषक वर्गों में प्रचलित और प्रयुक्त होनेवाले कृषि सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द ही रखे गये हैं। इसके यथासम्भव मूल शब्द रखे गये हैं, उनमें कोई साहित्यिक संशोधन नहीं किया गया है। इन शब्दों के मूल रूप में होते हुए भी इनमें उच्चारण ध्वनि का निर्देश नहीं किया गया है। ध्वनि के लिए आगे कुछ संक्षिप्तात्मक नियम दिये जा रहे हैं, जिनसे उनकी मूलगत ध्वनि का ज्ञान हो जाने से देवनागरी ध्वनि चिह्न के प्रयोग की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

ये सभी मूल शब्द प्रातिपदिक रूप में रखे गये हैं। इनके विभक्त्यन्त रूप का प्रयोग यहाँ नहीं किया गया है। बिहार की तीनों भाषाओं में शब्दों के जहाँ समान रूप हैं, वहाँ वे उन्हीं रूपों में दिये गये हैं। पर किसी शब्द के रूप में भेद होने पर उस भिन्न रूप शब्द को मूल शब्द मानकर पृथक् अपने अनुक्रम में रखा गया है।

अर्थ समान होने पर तीनों भाषाओं में पाये जानेवाले भिन्न रूप शब्द पर्याय के रूप में मूल शब्द के आगे या अर्थ के बाद दे दिये गये हैं।

एक ही शब्द के अनेक अर्थ होने पर उन अर्थों को अनुक्रम संख्या देकर अलग अलग दिखाया गया है।

जहाँ आवश्यक समझा गया है वहाँ वस्तुओं के अर्थ और रूप को स्पष्ट करने के लिए चित्र भी दे दिये गये हैं।

इन शब्दों को मैथिली, मगही, भोजपुरी या भागलपुरी आदि बोलियों की सीमा में बाँधने का प्रयास नहीं किया गया है, बल्कि तत्तद् भाषा क्षेत्र के अंतर्गत आनेवाले क्षेत्र विशेष के नाम का संकेत कर देना ही हमारा आशय है। अतः सामान्यतः हमने जिलों अथवा उनके अन्दर के क्षेत्रों के नाम दे दिये हैं। मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि का उल्लेख अप्रासंगिक है। किन्तु ये सभी उल्लिखित क्षेत्र मै०, मग०, भोज० और भाग० के अन्दर ही आते हैं। इन भाषाओं के क्षेत्र की सीमा के बाहर का कोई क्षेत्र इनमें सम्मिलित नहीं है।

अबतक भाषा वैज्ञानिकों ने बिहार की पटना कमिश्नरी, तिरहुत कमिश्नरी, और भागलपुर कमिश्नरी के सतालपरगने के कुछ भागों और संतालों को छोड़कर सभी जिलों में बोली जानेवाली बोलियों का मैथिली, मगही और भोजपुरी के ही नाम से वर्गीकरण किया है। कोश में दिये हुए अपने मानचित्र में भी हमने इसी मान्यता का अनुसरण किया है। परन्तु इसके प्रतिकूल आज भागलपुरी क्षेत्र के कुछ कंठों से सहज मातृभाषा प्रेम से प्रेरित एक अस्फुट आन्दोलित स्वर सुनाई पड़ रहा है कि सहरसा जिले के उत्तरी भाग को छोड़कर सम्पूर्ण भागलपुर कमिश्नरी की बोली 'भागलपुरी' है, जो मैथिली से सर्वथा भिन्न है। ग्रियर्सन ने इसे 'छिका छिकी' कहा है। किन्तु हमें यहाँ न तो इसका भाषा वैज्ञानिक अध्ययन ही प्रस्तुत करना है और न इसके पक्ष-विपक्ष में हमारा कोई आग्रह ही है। कोश प्रस्तुत करते समय मुख्यतया हमारा यही ध्यान रहा है कि भाषाओं का क्षेत्रीय महत्त्व होने के कारण उनका निर्देश भी क्षेत्र विशेष के नाम से ही हो। अतः हमने सर्वत्र क्षेत्र विशेष का उल्लेख किया है, न कि किसी भाषा विशेष का। तुलनात्मक अध्ययन की सुविधा के लिए क्षेत्रीय विभिन्नताओं का निर्देश अधिक उपयुक्त है। क्षेत्रीय विभिन्नताओं के निर्देश में यहाँ केवल जिलों का ही निर्देश नहीं किया गया है, प्रत्युत जिलों के अन्तर्गत क्षेत्रों का भी निर्देश किया गया है। यथा—द० मुं०, द० भा०, द० प० शाहा० आदि।

## क्रिया का मूल रूप

(१) इस कोश में क्रिया का मूल रूप 'ल' प्रत्ययान्त लिया गया है। यथा—घँटल=घँटना, करल=करना आदि।

सामान्यतया बिहार की तीनों भाषाओं में क्रियार्थक संज्ञा में 'ल' प्रत्यय ही लगता है। इसलिए यहाँ यही सामान्य रूप लिया गया है। इसके अतिरिक्त 'ब' प्रत्ययान्त एक और रूप भी है, जो मैथिली क्षेत्र में प्रचलित है। यथा—खायब जायब आदि। परन्तु यह रूप विशेष स्थलों में ही व्यवहृत होता है। इसलिए क्रियार्थक संज्ञा का यहाँ सामान्य रूप 'ल' प्रत्ययान्त ही रखा गया है।

मगही, मैथिली, भोजपुरी और नागपुरी सभी भाषाओं में समान रूप से 'ब' भविष्यार्थक प्रत्यय है, किन्तु मगही में विशेष रूप से 'ब' के बदले 'म' का भी प्रयोग होता है, यथा=जायब=जावेंगे, जायम—जायँगे।

बिहारी भाषाओं की क्रियाओं के भूतकालिक रूपों में सामान्यतया 'ल' प्रत्यय लगता है। यह 'ल' कृत् प्रत्यय है। अतः यह सामान्यभूत और दूसरे भूतकालिक भेदों का भी प्रतिपादक है। साथ ही यह 'ल' क्रियात्मक विशेषण प्रत्यय भी है।

उदाहरण—घँटल=घटा हुआ, घटाया हुआ।

(२) प्रेरणार्थक क्रिया का मूल रूप 'आवल' प्रत्यय लगाकर रखा गया है। यथा—घँगल का घँगावल, घँटकल का घँटकावल।

'आवल' का कहीं कहीं 'आयल' रूप होता है। यथा—घटकल से घँटकावल। घँटकावल और घँटकायल—इन दोनों रूपों में क्रमशः 'व' और 'य' की श्रुति है। तदनुसार इनके रूप काउल, आओल और काअल, आयल भी लिखे जा सकते हैं। इन रूपों का यथावत संग्रह नहीं किया गया है, क्योंकि ये स्वयं समझा जा सकता है। 'व' या 'य' श्रुतिविषयक नियम आगे दिये जा रहे हैं।

(३) 'आवल' और 'आयल' प्रत्यय प्रातिपदिक रूपों से धातु (नाम धातु) बनाने में भी प्रयुक्त होते हैं। यथा—अँगुरी>अँगुरियावल अँगुरा>अँगुरायल।

क्रिया का उपर्युक्त रूप ही इस कोश में व्यवहृत हुआ है। काल, वचन आदि के अनुसारी रूप इसमें छोड़ दिये गये हैं। हिन्दी का 'ना' प्रत्ययान्त रूप बिहारी भाषाओं में नहीं होता।

जहाँ-जहाँ क्रिया के मूल रूप के लिए 'ल' प्रत्ययान्त क्रियार्थक संज्ञा का रूप नहीं दिया गया है, वहाँ-वहाँ क्रिया के साथ भाव (वि०—विशेषण) का निर्देश करके विशेषण विशिष्ट अर्थ भी दिये गये हैं। यदि कहीं ऐसा न भी हो तो ऐसे स्थलों में सर्वत्र 'ल' प्रत्ययान्त क्रिया रूप का विशेषण भी समझ लेना चाहिए और वहाँ वैसे शब्दों का व्यवहार कर लेना उचित है।

क्रियाओं के प्रायोगिक भेद—सकर्मक, अकर्मक का व्याकरण संबंधी निर्देशों में उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा गया है, क्योंकि यह तो अर्थ और प्रयोग से ही जाना जा सकता है।

## व्याकरण, व्युत्पत्ति तथा अर्थ-विषयक संक्षिप्त रूप

| | |
|---|---|
| अ० क्रि० | अकर्मक क्रिया |
| अनु० | अनुकरणात्मक |
| अनुवा० | अनुवादात्मक |
| अल्पा० | अल्पार्थक |
| अल्पा० प्र० | अल्पार्थक प्रत्यय |
| अव्य० | अव्यय |
| अस्० | अस्त्यर्थक |
| उदा० | उदाहरण |
| कहा० | कहावत |
| क्रि० | क्रिया० |
| क्रि० प्र० | क्रिया-प्रत्यय |
| क्रि० वि० | क्रिया विशेषण |
| टि० | टिप्पणी |
| दे० | देखिए |
| देशी | देशी |
| देशी प्र० | देशी प्रत्यय |
| धा० | धातु |
| ना० धा० | नाम धातु |
| ना० धा० प्र | नाम धातु प्रत्यय |
| निषे० | निषेधात्मक |
| पुं० | पुंलिंग |
| प्रेर० | प्रेरणार्थक |
| मिला० | मिलाइए |
| मु० प्र० | मुस्लिम प्रयोग |
| मु० री० | मुस्लिम रीति |
| मुहा० | मुहावरा |
| यौ० | यौगिक |
| ला० | लाक्षणिक |
| लोको० | लोकोक्ति |
| वि० | विशेषण |
| वि० प्र० | विशेषण प्रत्यय |
| विशे० | विशेष प्रयोग |
| वै० | वैकल्पिक प्रयोग |

## शब्द-संग्रह के विविध क्षेत्रों की सूची तथा उनका निर्देश

| क्षेत्र संकेत | संग्रहकर्त्ता का नाम | पता-ठिकाना |
|---|---|---|
| चंपा०-१ | श्रीगणेश चौबे, | बँगरी, पो० बँगरी, चंपारन (दक्षिण) |
| चंपा २ | श्रीविद्यानन्द सिंह, | मजगावा, डाक०—पकड़ीदयाल चंपारन (पूर्व) |
| दर० १ | श्रीभवानन्द झा, | सलेमपुर, डाक०—सौरा, कोढ़ा (थाना) पूर्णिया (द०) |
| पट० १ | श्रीकांत शास्त्री, | नारायणपुर, डाक०—एकंगरसराय, पटना (पूर्व) |
| पट० २ | श्रीहरिप्रकाश, | खोदसराय, बिहारशरीफ, पटना (पूर्व) |
| पट० ३ | श्रीकृष्णदेव, | " " |
| पट० ४ | श्रीरामाधार शर्मा, | महेन्द्रू, पटना-६ (पटना-नगर से दक्षिण के निवासी) |
| बिह०,रां०,हरि० | श्रीविक्रमादित्य मिश्र, | मायल, रामनगर, चंपारन (द० प०) |
| भाग० १ | श्रीरामस्वरूप चौधरी, | बिशनपुर, शम्भुगंज, भागलपुर (दक्षिण) |
| भाग० २ | श्रीदिनानन चौधरी, | मोहद्दीनगर, अमरपुर, भागलपुर (दक्षिण) |
| मुं०-५ | श्रीवाल्मीकिप्रसाद सिंह, | बरबीघा, मुँगेर |
| मुं० १ | श्रीसुरेश्वर पाठक, | तारापुर, मुँगेर (दक्षिण) |
| मु० ९ | श्रीजुगाई झा, | भगवती, कटरा, मुजफ्फरपुर (उ० प०) |
| शाहा० १ | श्रीशिवकुमार लाल, | मकपारी, डुमराँव, शाहाबाद (उत्तर) |
| शाहा०-२ | श्रीराजेश्वर प्रसाद, | गुरार, भोजपुर (परगना), शाहाबाद (द० प०) |
| छा० १ | श्रीमधुसूदनदेव नारायण, | हरियावा, छपरा |

## निर्देश-ग्रन्थ और उनके संक्षिप्त रूप

| संक्षिप्त रूप | पुस्तक का नाम | लेखक, संपादक | स्थान | सन् |
|---|---|---|---|---|
| अग्रवाल०— | हिंदी के सौ शब्दों की निरुक्ति | डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल | ना० प्र० पत्रिका काशी | ५४, २००६ वि०, ९०–९९ |
| अथर्व०— | अथर्ववेद | | | |
| अने०— | अनेकार्थसंग्रहकोश | हेमचंद्र | विद्याविलास प्रेस काशी | १९८५ वि० |
| अमर०— | अमरकोश (निर्णयसागरीय) | श्रीविष्णुदत्त शर्मा, खेमराज | श्रीकृष्णदास, बंबई | १९३९ ई० |
| | | रामाश्रमी टीका | " " | १९४४ ई० |
| अवधी०— | अवधी कोश | श्रीरामाज्ञा द्विवेदी | हिंदुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद | १९५५ ई० |
| आप्टे०— | आप्टेकोश इंग्लिश डिक्शनरी | आप्टे, | पूना | १९१२ ई० |

| संक्षिप्त रूप | पुस्तक का नाम | लेखक, संपादक | स्थान | वर्ष |
|---|---|---|---|---|
| आप्टे० | आप्टेज संस्कृत इंगलिश-डिक्शनरी (परिवर्धित संस्करण) | श्रीवामनशिवराम आप्टे | प्रसाद प्रकाशन, पूना | १९५७ ई० |
| इंग० संस्कृ० | इंगलिश संस्कृत-डिक्शनरी | श्रीमोनियर विलियम | मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी | १९५७ ई० |
| इटि० या० | इटिमोलोजीज ऑफ् यास्क | डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा | होशियारपुर | १९५३ ई० |
| गुज० इंग० | गुजराती इंगलिश डिक्शनरी | श्रीबेलशरे | बंबई-२ | |
| गुप्त० | प्रमेयाग और उनकी शब्दावली | डॉ० हरिहरप्रसाद गुप्त | दिल्ली | १९५९ ई० |
| ग्रामे० | ग्रामेटिकल संस्कृत इंगलिश-डिक्शनरी | डा० सूर्यकांत शास्त्री | | |
| ग्रिय० | बिहार पीजेंट लाइफ | जार्ज ग्रियर्सन | गवर्नमेंट प्रेस, पटना | १९२६ ई० |
| घाघ० | घाघ और भड्डरी | श्रीरामनरेश त्रिपाठी | प्रयाग (द्वितीय संस्करण) | १९४९ ई० |
| चेम्बर्स० | चेम्बर्स इंगलिश डिक्शनरी | रेवरेंड टी० डाविडशन | लंदन | १९४८ ई० |
| त्रिक० | त्रिकाण्डशेषकोश | श्रीविष्णुदत्त शर्मा | बंबई | १९२६ ई० |
| देशी० | देशी नाममाला | श्रीहेमचंद्र | कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता | १९३१ ई० |
| देशी ना० | ,, | ,, | पिशल पूना | |
| दो० को० | दोहाकोश | प्रो० बागची द्वारा संपादित | | |
| निघ० | निघण्टु निरुक्तसहित | दुर्गस्वामीकृत टीकासहित | बंबई, | |
| निरु० | निरुक्त | ,, | ,, | ,, |
| नेपा० | नेपाली इंगलिश-डिक्शनरी | डा० आर० एल्० टर्नर | लंदन | १९३१ ई० |
| पा० स० म० | पाइअ सद्द महण्णवो | पं० हरगोविंददास टी० सेठ | कलकत्ता | १९२८-२८ ई० |
| पाणिनि० | सिद्धांतकौमुदीस्थसूत्र धातुपाठ | | वाराणसी | १९४६ ई० |
| पाणिनि ग्रा० | पाणिनि ज ग्रामेटिक | | जर्मनी | |
| पालि० | पालि इंगलिश डिक्शनरी | टी० डब्ल्यू रेज डेविड्स | लंदन | १९५२ ई० |

| संक्षिप्त रूप | पुस्तक का नाम | लेखक, संपादक | स्थान | वर्ष |
|---|---|---|---|---|
| व्यु० को०— | मराठी व्युत्पत्ति कोश | श्रीकृष्णाजी पांडुरंगजी कुलकर्णी केशवजी भिकाजी धवले | बंबई २ | १९४६ ई० |
| शब्द०— | शब्दार्थचिंतामणि | सुखानंद-कृत | आगरा | १९२१ वि० |
| शाश्व०— | शाश्वत कोश | | ओरियंटल बुक एजेंसी, पूना | १९२९ ई० |
| शिव०— | शिवकोश | शिवदत्त मिश्र | पूना | १९५२ ई० |
| संता० हि०— | संताली इंगलिश डिक्शनरी | ए० कैम्पबेल | पोखुरिया, मानभूम | १८९९ ई० |
| संस्कृ० शब्द०— | संस्कृत शब्द सागर | श्रीमतानंद विद्यासागर | कलकत्ता | १९०० ई० |
| सुश्रुत०— | सुश्रुतसंहिता | | | |
| स्कॉटिश०— | स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी (तीन खंड) | डा० विलियम ग्रांट और डेविड डी० म्यूरिसन | एडिनबरा | १९४१ ५२ ई० |
| हल०— | हलायुध कोश | | सरस्वती भवन, वाराणसी | २०१४ वि० |
| हला०— | " | थामस आफरेट | एडिनबरा | १८६१ ई० |
| हाब्स०— | हाब्सन जाब्सन | कर्नल हेनरी युले | लंदन | १९०३ ई० |
| हिंदी उ०— | हिंदी उर्दू कोश | श्रीरामचंद्र वर्मा | हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई | १९०३ ई० |
| हिंदु०— | हिंदुस्तानी कोश | श्रीहरिशंकर शर्मा | आगरा | २००९ वि० |
| हिंदु० इंग०— | हिंदुस्तानी इंगलिश डिक्शनरी | एस० डब्ल्यू० फैलन (डॉ० सूर्यकांत द्वारा संपादित) | | |
| हिं० मरा०— | हिंदी मराठी-व्यवहार कोश | ग० र० वैशंपायन | पूना | १९४९ ई० |
| हिं० श० सा०— | हिंदी-शब्द सागर | श्यामसुंदरदास आदि | ना० प्र० स० काशी | १९१६ ई० |

| संक्षिप्त रूप | पुस्तक का नाम | लेखक, संपादक | स्थान | वर्ष |
| --- | --- | --- | --- | --- |
| व्यु० को० | मराठी व्युत्पत्ति कोश | श्रीकृष्णाजी पांडुरंगजी कुलकर्णी केशवजी भिकाजी धवले | बंबई २ | १९४६ ई० |
| शब्दा० | शब्दार्थ-चिंतामणि | सुखानंद-कृत | आगरा | १९२१ वि० |
| शाश्व० | शाश्वत कोश | | ओरियंटल बुक एजेंसी, पूना | १९२९ ई० |
| शिव० | शिवकोश | आशित्रदत्त मिश्र | पूना | १९५२ ई० |
| संता० डि० | संताली इंगलिश डिक्शनरी | ए० कैम्पबेल | पोखुरिया, मानभूम | १८९९ ई० |
| संस्कृ० शब्द० | संस्कृत शब्द सागर | श्रीजीवानंद विद्यासागर | कलकत्ता | १९०० ई० |
| सुश्रुत० | सुश्रुतसंहिता | | | |
| स्कॉटिश० | स्कॉटिश नेशनल डिक्शनरी (तीन खंड) | डा० विलियम ग्रांट और डेविड डी० म्यूरिसन | एडिनबरा | १९४१-५२ ई० |
| हला० | हलायुध कोश | | सरस्वती भवन, वाराणसी | २०१४ वि० |
| हला० | ,, | थामस आफरेक्ट | एडिनबरा | १८६१ ई० |
| हाब्स० | हाब्सन जाब्सन | कनल हेनरी युले | लंदन | १९०३ ई० |
| हिंदी उ० | हिंदी उर्दू कोश | श्रीरामचंद्र वर्मा | हिंदी ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, बंबई | १९०३ ई० |
| हिंदु० | हिंदुस्तानी कोश | श्रीहरिशंकर शर्मा | आगरा | २००१ वि० |
| हिंदु० इंग० | हिंदुस्तानी इंगलिश डिक्शनरी | एस० डब्ल्यू० फैलन (डॉ० सूर्यभान द्वारा संपादित) | | |
| हिं० मरा० | हिंदी मराठी-व्यवहार कोश | ग० र० वैशंपायन | पूना | १९४९ ई० |
| हिं० श० सा० | हिंदी-शब्द सागर | श्यामसुंदरदास आदि | ना० प्र० स० काशी | १९१६ ई० |

# कृषिकोश

# अ

अँइठा—(स०) शख के समान एक कीड़ा। घोघा(चपा० १)। [*आवेष्ट*, (सस्कृ०), *ऐंठा*—(हिं० श० सा०)]

अँइठा

अँइठी-(स०) (१) वह मजदूर, जो मिट्टी ढोते समय कुदाल चलानेवाले के पास रहता है (चंपा० १)। (२) खेत के बीच का वह भाग, जहाँतक सोह कर मजदूर दूसरा 'पाह' आरंभ करता ह (चपा० १)। [*देशी, मिला०—आवेष्ट* ]

अँकटा—(स०) गेहूँ चना, मसूर, खसारी आदि के दानों में मिलनेवाला घास की जाति का एक अनाज, जिसमें छोटे छोटे गोल दाने होते हैं, इसकी दाल भी बनाई जाती ह। (द० म०, दर० १ पट० ४)। पर्या०—अँकरा, अँकरी (प० म०, शाहा०)। अटका (भाग १)। [*अँकटा < अकटा < अकतश्र < अक्रतक, मिला०—अक्कट* (प्रा० दो० को० ७६)]

अँकड़उर—(सं०) कँकरीली मिट्टी (शाहा०)। दे०—अँकडौर। [अँक्ड़+उर < अकरपूर]

अँकड़ही—(वि०) दे० अँकडाह (विहा० आज०)।

अँकड़ा—(सं०) (१) बड़ा कंकड़ (शाहा०)। (२) गहूँ, जौ आदि में मिलनेवाला एक प्रकार का कंकड़। दे० अँकरा। पर्या०—गँगटा—(द०-पू०) ओंकड़ (भोज०, पट०)। [अकुर]

अँकड़ाह—(वि०) वह मिट्टी जिसमें कंकड़ हो (चपा०)। पर्या०-अँकडही-(विहा० आज०) [*अँकड़ + आह* (प्र०) < *अंकुर* ]

अँकड़ी-(सं०)(१) एक प्रकार की घास, जो पशुओ का खाद्य ह (प०)। दे०-*अँकता*। पर्या०-अँकरी (पट० ४)।(२) छोटा और महीन कंकड़(विहा०, आज०)। पर्या०—गँगटी—(द० पू०) अँकडी (आज०)। इँकड़ी, (३) अनाज में पाया जानेवाला छोटा कंकड़। [*देशी* (?) *मिला०—अकुर* ]

अँकड़ैल—(वि०) *कँकड़ीली मिट्टी*—(सा०)। दे०—कंकराही। [ *अकड़+एल* < (इल)—(सस्कृ०)]

अँकड़ौर—(वि०) कँकडीली मिट्टी—(प०)। दे०—कंकराही। [ अँकड़+ओर (प्र०) ]

अँकता—(स०) एक प्रकार की घास, जो पशुओ का खाद्य है (प० पट०, गया, द० पू०)। पर्या०—अटका, अकटा (द० भाग०), अँकरी, अँकडी (प०), भेसरी ( *गया, उ० प०* ), भिलोर (उ० प०)। [ *अँकता < अकतश्र < अक्तक, मिला०* अक्कट (प्रा० अप०)—*दो० को०*—७६ ]

अँकरहिया मटर—(स०) एक प्रकार की छोटी *मटर (भोज० आज०)*। [*अँकर+हिया (प्र०) +मटर*]

अँकरा—(स०) गेहूँ में मिलनेवाला एक प्रकार का घासपात, (प०म०, शाहा०)। दे०-अँकटा। [ दे०-*अँकटा* ]

अँकरी—(स०)(१) एक प्रकार की घास, जो पशुओं का खाद्य ह (प०)। दे०—अँकता। (२) गेहूँ, जौ आदि में मिलनेवाला एक प्रकार का घासपात (प० म०, शाहा०)। दे०—अँकटा। [ *अँकर+ई० < अँकरा*, [दे०-*अँकटा*]

अँकवार, अकवार-(स०) (१) दोनों भुजाओं के अंदर भर आनेवाली फसल का परिमाण। पर्या०—अकवारा, पाँजा (पट०,

अँकवार

(शाहा० १)। [अँखुआ+इल (प्र०)<अँखुआ <अक्ष, अक्षि, अङ्कुर]

अँखुआएल— वि०) वह ऊख, जिसमें सब अंकुर निकला हो (पट०)। दे०—पुआरी। पर्या०—अँखुअइल (भाग०—१) [अँखुआ+एल (=इल – वि० प्र०) <अक्षिमत]

अँखौता—(स०) खमे की दोना कानियों (शाखाओं) में लगी हुई धुरी, जिस पर लाठा लटकता ह (द० मु०, पट० ४)। दे०—अखौता। पर्या०—अगौता (भाग० १) [अक्षवत् अक्षवाट]

अँखौता

अँग उँग—(स०) दे०—अग बुग।

अँगऊँ—(स०) खलिहान में तयार नए अन्न में से ब्राह्मण के लिए निकाला हुआ अश (प०)। दे०—अँगवुग तथा बिसुनपिरित। [अग्रान्न]

अँगवुग—(स०) गहस्थ क द्वारा ब्राह्मण के लिए अन्न में से निकाला हुआ अश (शाहा०)।

अँगरवार—(स०) तुरत कटे हुए ऊख के रखने का स्थान (शाहा०)। दे०—टोनियारी। [अँगर∠अग्रकाण्ड, अँगर+वार<अग्रकाण्ड-वाट]

अँगरा—(प०) (१) तेज पछवा हवा क कारण होनेवाला अनाज का एक रोग (पाला) (उ० प०, चपा० शाहा०)। पर्या०—झरका (सा० म०, पट०–४), मुरका=अफीम में लगा एक रोग (चपा०)। (२) धान की फसल का एक रोग, इससे धान का पौधा पीला हो जाता ह और जलने लगता ह (चपा०)। [अंगार] टि०—इस रोग स बचने के लिए केले का खम खेत में गाड दिया जाता है (चपा० १)।

अँगरवाह—(स०) कोल्हू क लिए ऊख के लब लबे टकडे काटनेवाला व्यक्ति (प०)। दे०—कानू। [अँगार+वाह<अग्रकाण्ड+वाह] टि०—'वाह' या 'वाहा' हलवाहा का शब्दांश ह जो दूसरे श दों के अत में जुटकर करने वाला आदि अर्थ में प्रयुक्त होता ह—जसे चरवाहा=चरानेवाला, भैंसवाहा=भैंस चराने वाला आदि।

अँगवरिया—(स०) मजदूरी में मज या अनाज न लेकर तीन दिन खेत के मालिक का हल चला लेने के बाद एक दिन के लिए उसी हल से अपना खेत जोतनेवाला हलवाहा। पर्या०—अगवरिया, अँगवार (प०), तेपटा (सा०, चपा०, म०, उ० पू० म०, भाग०), तिसरी, तिसरिया। [अँग+वरिया (=वार)<अग्रवार, अग्रपाल]

अँगवार—(स०) (१) दे०—अँगवरिया। (२) दवाँई (दौनी) किए हुए अन्न की राशि में हल वाहे का भाग (भाग०)।

अँगवारा–(स०) (१) सम्मिलित खेती में अपने अपने हल बलों से बारी-बारी करके अपने खेत जोतनेवाले किसान (प०)। (२) दे०—अगवरिया।

अगा—(सं०) (१) एक प्रकार का मोटा धान जो विशेषतया ऊँची जमीन में पदा होता ह और इसका सूक काला होता ह (चपा० १, म०)। (२) तुरता, धपधकन। [अगभ मो० वि० डि०]

अँगारी—(स०) कोल्हू में डालने के लिए काटी हुई ऊख की टुकडी (द० प० शाहा०)। दे०—गँडी। [अग्रकांड, अगारिका]

अँगुरियावल—(क्रि०) किसी फल की बतिया को उँगली दिखाना। किंवदंती एसी है कि इस तरह उगली दिखाने से वह बतिया सूख जाती ह (चपा०-१)। [अँगुर+इयावल (ना० धा० प्र०)='अङ्गुलीयति' के अर्थ में]

अँगेड़ीहा—(वि०) ऊख की खडी फसल को काटने वाला। पर्या०—गँड़वहिया (उ० प०), पजवाहा (म०), पगरवाह (म०), पँगरवाह (म०) गेंडछीला (शाहा०), छोलया (द०-प० शाहा०), केतरपार (पट०, गया) कतरपारा या पतरपारा (द० मुं०), घुरकट्टा या कटनिया (द० भाग०)। [अग्रकाड-वाह, (अगेंडी+हा)]

अँगेर—(स०) बीज के लिए काटे गए ऊख क ऊपर (सिरा) का टुकड़ा, जो और भाग के बजाय जल्दी उगता ह (सा०)। पर्या०—अँगेरा (गया), अगारी (पट०), अगरा (द० मु०), आगा (द० भाग०) बधिया (ग० द०), फुनगी (उ० प० म०), अँगोर, अँगोरी (भाग०)। [अग्रकांड—काड का अग्रभाग, अग्र, अगारिका] (२) पारे क

अड्ढ़िया > अँडिइया > अँटिया। अडिका = चार जौ का एक परिमाण (मो० वि० डि०)। पसही < प्रसृति। दोमड़ा < द्विमोट (मोट = बंडल मो० वि० डि०) ]
(२) कटनी के समय प्रति हल किसान के द्वारा बढ़ई को दिया जानेवाला एक निश्चित परिमाण में (आँटी भर) धान (चंपा०)। पर्या०— मोँगन (पट० ४) दे०—बोझा।
(३) रोपने के लिए तयार उखाड़े हुए बीजों के पौधों का पूला (बंडल) (गं० उ० द०-पू०, आज०)। दे०—आँटी [ अधिका ] (४) अनाज निकालन के बाद पुआल की आँटी (बंडल)—(ग० द०, सा०, आज०) दे०—पूला (५) घास, लकड़ी या किसी फसल आदि का बांधा हुआ पुल्ला या गट्ठा, जो दोनों हाथों से पकड़ा जा सके। (चंपा० १, भाग० १)। (६) आँटी, पुल्ला, छोटा बोझा (मु० १)। [ अधिका ]

अँटिया

अँटिया

अँटियावल—( क्रि० ) (१) अँटिया या पुल्ला बाँधना (मु० १, पट० ४)। (२) गायब या हजम करना। दे०—अटिया। [ अँटिया + ना < अँटिया < अधिका ]
अँटियावल—( वि० ) घास, लकड़ी या धान आदि का बाँधा गया मुट्ठा (चंपा० १, पट० ४)। [अँटिया + आवल < अँटिया < अधिका]
अँठिया—(स०) एक प्रकार का केला (दर० १)। [ आँठी + इया < अष्ठील ]
अँठियावल—(क्रि० मा० धा०) फल के भीतर के बीज का पुष्ट या कड़ा होना, आम आदि फलों में आँठी होना (मुं० १, पट० ४)[ अष्ठीयन ]
अँठिली—(स ) (१) आम की गुठली। (२) दे० अँठुली। [ अष्ठीलिका ]
अँठुली—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते ह (गया)। पर्या०—अँठिली, आँठी (द० प० शाहा०, गया)। [ अष्ठिल— (मिला०—अम्बष्ठा चाम्ललोण्याम्-(मेदि०) ]
अँड़ड़—(सं०) रेंडी का पौधा (उ० प० म०, द० भाग० )। दे०—रेंड़। पर्या०—अंडी (भाग० १)। [ एरड ]
अँड़ड़ी—(सं०) रेंड का बीज (उ० प० म०, द० भाग०) पर्या०—अंडी (भाग०-१)।
अँड़री—(स०) रेंड का बीज, जिससे तेल निकलता ह। ( उ० प० म०, द० भाग० )। दे०—रेंडी। [अँडर + ई < एरड]
अंडा—( स० ) रेंडी का पौधा। ( म०, द० भाग० )। दे०—रेंड। [ एरड ( संस्कृ० ), अँड़ेरि (ने०) ]
अड़ास—(स०) दे०—अडांस।
अँड़िआवल—(क्रि०) बल के रुक जाने पर उसके अण्डकोष में खोदकर उसे आग बढ़ाना (सा० १, पट० ४, भाग० १) [अँडियाव + ल, आँड + इयाव (मा० धा० प्र०), आँड़ < अ ड ]
अँड़िया—(वि०) बधिया न किये हुए बल आदि पशु ( मुं० १ )। पर्या० आँड़ ( पट० ४, भाग ० १), अंड़ीवा—(भाग० १)। [अडिक, अडवान् ]
अंडी—(स०) (१) रेंड का पेड, रेंड का बीज। ( २ ) एक प्रकार का रेशमी कपड़ा मं०, द० भाग०, भोज०, मग०)। दे०—रेंडी [एरड (संस्कृ०) अँड़ेरि (ने०) ]

अंडी

अँतरा, आँतर—(सं०) पान की लताओं या पंक्तियों के बीच का स्थान। पर्या०—दौज ( द० पू० ), दौंगर ( पट० गया० ) पाहे (द० पू० म०) [अ तरा > अँतरा > आँतर। पार्श्व > पाह > पाहे ]
अँदार—(स०)—अनार ( पट० १ ) [ अनार (फा०) ]
अधड़—(स०) आँधी (दर० १, पट० ४, भाग० १ चंपा०, भोज०) पर्या०—अधर (भाग०-१)। [ अध-(हि० श० सा०), अ धकार। अ ध > अ धा, अँधकी रात्रि (नेपा०)]
अँधरी पटावन—(स०) ऊख की पहली सिंचाई ( द० भाग० )। दे०—गदाढार पर्या०— मिलानी—(भाग० १)। [अँधरी + पटावन]

*अद्ढिया > अँडिइया > अँटिया । अडिका =* चार जौं का एक परिमाण (मो० वि० डि०)। *पसही < प्रसृति । दोमहा < द्विमोट* (मोट = बडल मो० वि० डि०) ]
(२) कटनी के समय प्रति हल किसान के द्वारा बढई को दिया जानेवाला एक निश्चित परिमाण में (अँटी भर) धान (चपा०)। पर्या०—मौंगन (पट० ४) दे०—बोझा।
(३) रोपने के लिए तैयार उखाड़े हुए बीजो के पौधो का पूला (बडल) (ग० उ०, द० पू०, भाग०)। दे०–आँटी [ *अर्धिका* ] (४) अनाज निकालनके बाद पुआल की आँटी (बडल)–(गं० द०, सा०, भाज०) दे०–पूला (५) घास, लकडी या किसी फसल आदि का बाँधा हुआ पुल्ला या गट्ठा, जो दोनो हाथो से पकडा जा सके। (चपा० १, भाग० १)। (६) आँटी, पुल्ला, छोटा बोझा (मु० १)। [ *अर्धिका* ]

अँटिया

अँटिया

**अँटियावल**—( क्रि० ) (१) अँटिया या पुल्ला बाँधना (मु० १, पट० ४)। (२) गायब या हजम करना। दे०—अँटिया। [ *अँटिया + ना < अँटिया < अर्धिका* ]
**अँटियावल**—( वि० ) घास, लकड़ी या धान आदि का बाँधा गया मुट्ठा (चपा० १, पट० ४)। [*अँटिया + आवल < अँटिया < अर्धिका*]
**अँठिया**—(स०) एक प्रकार का केला (वर० १)। [ *आँठी + इया < अष्ठील* ]
**अँठियावल**—(क्रि०, ना० धा०) फल के भीतर के बीज का पुष्ट या कड़ा होना, आम आदि फलो में आँठी होना (मु० १, पट० ४) [ *अष्ठीयन* ]
**अँठिली**—(स०) (१) आम की गुठली। (२) दे० अँठुली। [ *अष्ठीलिका* ]
**अँठुली**—(स०) एक प्रकार की घास जिसे पशु खाते हैं (गया)। पर्या०—अँठिली, आँठी (द० प० शाहा० गया)। [ *अष्ठिल*—(मिला०—प्रम्बष्ठा चाम्ललोण्याम्–(मेदि०) ]
**अँड़ड**—(स०) रेंडी का पौधा (उ० प० म०, द० भाग०)। दे०—रेंड। पर्या०—अडी (भाग० १)। [ *एरड* ]
**अँड़ड़ी**—(स०) रेंड़ का बीज (उ० प० म०, द० भाग०) पर्या०—अडी (भाग०-१)।
**अँडरी**—(स०) रेंड का बीज, जिससे तेल निकलता है। (उ० प० मं०, द० भाग०)। दे०—रेंडी। [*अँड़र + ई < एरड*]
**अडा**—( सं० ) रेंडी का पौधा। ( म०, द० भाग०)। दे०—रेंड। [ एरड ( संस्क० ), *अँड़ेरि* (ने०) ]
**अडास**—(स०) दे०—अडांस।
**अँड़िआवल**–(क्रि०) बल के रुक जाने पर उसके अडकोष में खोदकर उसे आगे बढाना (सा० १, पट० ४, भाग० १) [*अँडियाव + ल, आँड + इयाव* (ना० धा० प्र०), *आँड < अ ड* ]
**अँड़िया**—(वि०) बधिया न किये हुए बल आदि पशु ( मु० १ )। पर्या० आँड़ ( पट० ४, भाग ० १), अडीवा—(भाग० १)। [*अडिक, अडवान्* ]
**अडी**—(स०) (१) रेंड का पेड, रेंड का बीज। ( २ ) एक प्रकार का रेशमी कपडा म०, द० भाग०, भोज०, मग०)। दे०–रेंडी [एरड (संस्कृ०) *अँड़ेरि* (ने०) ]

अडी

**अँतरा, आँतर**—(सं०) पान की लताओं या पक्तियों के बीच का स्थान। पर्या०—टौज ( द० पू० ), दौंगर ( पट०, गया० ) पाहे (द० पू० म०) [*अ तरा > अँ तरा > आँतर। पार्श्व > पाह > पाहे* ]
**अँदार**—(स०)—अनार ( पट० १ ) [ *अनार* (फा०) ]
**अघड**—(स०) आँधी (दर० १, पट० ४, भाग० १ चपा० भोज०) पर्या०—अधर (भाग० १)। [ *अध*–(हि० श० सा०), *अ धकार। अ ध > अ धा, अँधकी रात्रि* (नेपा०)]
**अँधरी पटावन**—(सं०) ऊख की पहली सिचाई ( द० भाग० )। दे०—गडाढार पर्या०—मिलानी—(भाग० १)। [*अँधरी + पटावन*]

के लिए किसी पेड में डोरी बांधकर लटकाया हुआ ताड का पत्ता या टिनका टुकडा, जो डोरी खाचने से आवाज करता ह । (द० पू० म०) दे०— ढबढबवा । [ आकाशीय, अकुश < अकसी < अकासी । ]

अखउत—(स०) पानी पटानवाले लाठे की वह छोटी लकडी, जिसमें धुरी लगी रहती ह तया जिस पर लाठा वठाया हुआ रहता ह (शाहा० १) [अख+उत < अक्षयत् । ]

अखना—(स०) मछली पकडने के लिए पानी से सटा हुआ खोदा गया गड्ढा, जिसमें मछलियाँ कूद कर पड तो जाती हैं, पर निकल नही सकती (चपा० १)। [ अ+खना, अख+ना < अक्ष (?) ]

अखरा—(वि०) १ विना धोया कूटा हुआ (अन्न)। २ विना घी लगाई हुई (रोटी) (शाहा० १) [ अ+खरा < अ+क्षाल ] । ३ विना साफ किया (छांटा) पीसा हुआ जो (पट०-४) दे० गूरी । पर्या०—अखरी (द० मु०), अखरो (द० भाग०) ऑवट (उ०-प० वि०, द० पू० म०, भाग० १)। [(अ+क्षाल), अ (स०) +खरा (हि०)-(हि० श० सा०)] ।

अखरी—(स०) विना साफ किया (छांटा) पीसा हुआ जो (द० मुं०) (दे०-अखरा) पर्या०—अखरो विना भिगोया हुआ (भाज०)। [अ+क्षाल । ]

अखरो—(स०) विना साफ किया (छांटा) पीसा हुआ जो (द० भाग०)। दे०—अखरा पर्या०—अखरऽ—भाग • [अ+क्षाल > अखार > > अखरो (ओ वर्णागम स्थानीय उच्चारणाथ) ]

अखाड़ल—(क्रि०) (१) किसी पशु द्वारा सींग से नाद या जमीन को कोड़ना (चपा १, पट० ४) (२) खेत की गहरी कोडाई करना (चपा १) पर्या०—अखनवाही, हुरऽ-(भाग १, सिडाठ० भाग १)। [ उखाड़+ल < उत्खातन, < उत्खनन उत्खनन < उत्+खन्] ।

अखाढ़ी कोडन—(स०) ऊख की मुख्य कोडनी, जो असाढ़ या आर्द्रा नक्षत्र में होती ह । पर्या०—अदरा क कोटनी, असाढ़ी कोड़न (प०), पाछा (गया)। [आषाढ़ीय+कुद्दन (?) = कोड़न]

अखाढ—(स०) आषाढ़, भारतीय वर्ष का चौथा और ग्रीष्म ऋतु का अतिम मास, जून के अतिम और जुलाई के आदि के १५ दिन । (इस मास की पूर्णिमा के दिन प्राय उत्तराषाढ़ नक्षत्र पड़ता ह, अत आषाढ नाम पडा ह ।) पर्या०—आसाढ। असाढ (भाग १) [ आषाढ ] टि० —असाढ़ मास में ही धान की बोआई होती ह, अत इसका बहुत महत्त्व ह । इस महीने में धान की बोआई होती है और धान रोपने के लिए खतों को जोत कोड कर तयार किया जाता ह । आर्द्रा में धान की रोपनी प्राय हो जाया करती है, कभी-कभी वर्षा की दरी से पुनर्वसु और पुष्य तक भी होती है । किंतु बाद का रोपा धान अधिक फलवान नही होता । असाढ मास की महत्ता तो सर्वतोभावेन ह जैसा कि अगली कहावत से प्रतीत होता ह—

"जेकर बनल असढ़वा रे तेकर बारहो मास ।" —जिस किसान के खत आषाढ़ महीने में तयार हो जाते ह उसके बारहो मास अच्छे ही रहत हैं ।

अखाढ़ी—(सं०) (१) आषाढ़ में बोयी जानेवाली नील की दूसरी खेती (ग० उ०) । दे० फगुनी । २—आषाढ में उत्पन्न होनेवाली फसल या घास आदि—(भाग १)। [असाढ़+ई < आषाढ़ीय]

अखेता—(स०) खभे की दोनो कानियों (शाखाओं) में लगी हुई धुरी, जिस पर लाठा लटकता है (गया, पट०)। दे०—अखोता [अक्षवत्, अक्षकूट]

अखेद—(सं०)—(गया०, पट०) दे० अखेता । दे०—अखोता [ अक्षवत्, अक्षकूट ]

अखेन—(स०) (भाग १)। दे० अखेना ।

अखेना—(सं०) खलिहान में दौनी के समय पुआल या डठल आदि को हटाने या झाडन के काम में आनवाली एक लग्गी, जिसके अतिमछोर में लोहे का काँटा आदि लगा कर उसे नुकीला बनाया जाता ह । (पट०, गया, द० मु० भाग १)।

अखेना

दे० अखना पर्या०—अखेनऽ (भाग १)।

ऊपर (सिर) का टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्दी उगता है (पट० ४)। दे०—अँगरी। पर्या०—छिप (भाग १)। [अग्र, अग्रकाण्ड]।

अगरी—(सं०) बोझा की कतार (चपा०—१)।

अगला—(सं०) धान के डंठल को छोड़कर केवल बाल की कटाई (चपा० गया)। दे०—बलकट। [अग्र्य]।

अगलो—(सं०) बाँस की फुनगी की ओर का हिस्सा, (चपा० १)। पर्या०—अग्गा (भाग० १)। [अग्र्य]।

अगवड़—(सं०) १-हलवाहे को अगाऊ (अग्रिम) दी जानेवाली मजदूरी (प०)। पर्या०-अगवार अधार (भाग० १), अगौरी (द० प० म०), हडौरी (उ० प० म०), लगुआ (सामा०)। [अग+वड़ < अग्रवृत्ति, अग्रवलि (बलि= भाग, अंश, भोजन, अन्न)]। २-अगाऊ (अग्रिम) मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (उ०प०)। पर्या०—अगवड़जन (उ० पू०), साओख (द० भाग०), कमाई (प०), कनियाँ (पट०, गया द० मु०), लगुआजन पहले से लिये हुए ऋण को चुकता करने के लिए काम करनेवाला मजदूर। सटोआर (भाग० १) [अग्रवलि]

अगवड़जन—(सं०) (उ० प० )। दे० अगवड़। [अग+बड+जन < *अग्रवृत्ति+जन, अग्र वलि+जन]।

अगवन—(सं०) अन्न के बीज पर दिया जानेवाला सूद (द० प० शाहा०)। दे०—आधी। पर्या०—ड्योढ़िया (पट० ४)। सवैया दोबरा डेढ़िया (भाग० १)।

अगवन—(सं०)—(शाहा०)। दे०—फाजिल। [अग+वन < अग्रपण, अग्रिमान्न]।

अगवर—(सं०) ओसान के समय हवा में भूसा के साथ उड़ा हुआ अनाज (द० पू०, पट० ४)। दे०—अगवार। [अगवर < अवकर ?]।

अगवरिया—(सं०) दे०—अँगवरिया।

अगवार—(सं०) (१) फसल के बोझों को हटाने पर खलिहान में पड़ा हुआ अनाज (गं० उ०—सामा०) पर्या०—सहार (भाग० १), अगवार, अगवारी (प०)=ओसान के समय हवा में भूसा के साथ उड़नेवाला (निष्फल=खखरा) अनाज। भाठ (ग०उ० सामा०), तरी (सा० गं० द०)। [अवकर]। (२) घर के सामने का भाग (चपा १)। (३) खेतिहर मजदूर के लिए खलिहान से निकाला हुआ अन्न का भाग (चंपा० १)। [अग्र+वाट =(स्थान)]।

अगवार, अगवारी—(सं०) ओसान के समय हवा में भूसा के साथ उड़ा हुआ अनाज (प०)। पर्या०—अगाड (चपा०, पट०, गया), अगवर (द०-पू०)। [अवकर]।

अगवारी—(सं०) दे०—अगवार।

अगवासा—(सं०) घर के आगे की जमीन (शाहा० १)। [अग+वासा < *अग्र+वास]।

अगस्त—(सं०) एक प्रकार का लंबा वृक्ष, जो शरद् ऋतु में फूलता है और जिसका फूल सफेद होता है (पट० १)। [अगस्त्य]।

अगहन—(सं०) आग्रहायण भारतीय वर्ष का नवम और हेमन्त ऋतु का पहला महीना। (प्राय नवम्बर के अंतिम और दिसम्बर के आदि के पंद्रह दिन)। इस मास की पूर्णिमा के दिन मृगशिरा नक्षत्र का उदय हुआ करता है अतः इसका नाम मार्गशीर्ष भी है। (मगसर प०)< मार्गशीर्ष)। कभी इस महीने के बाद से वर्षारंभ होता था, इसलिए इसे आग्रहायण (अग्रे हायन-मस्य=इसके आगे वर्षारंभ होता है।) कहते हैं (सर्वत्र)। [*आग्रहायण (< अग्र+हायन) > अगहन]।

अगहनिया—(वि०) (शाहा०-१)। दे०—अगहनी। [अगहन+इया < अगहन < आग्रहायण < अग्र+हायन]।

अगहनी—(सं०)-(१) अगहन महीने में होनेवाला धान या अन्य फसल (चपा० १ पट० ४, भाग० १)। (२) अगहन महीने में कटनेवाली फसल (धान) (दर० १, भाग० १ आज०)। [अगहन+ई < *आग्रहायणीय]।

अगहनुआ—(सं०)-(१) वह उड़द, जो अगहन में फलती है (सा०, चपा०)। दे०—रहा। यौ०—अगहनुआ कुट्टी—अगहन मास में की जानेवाली चावल चूड़ा आदि की कुटाई (भाग० १)। [अगहन+उआ (वि० प्र०)]।

*आहार, अग्र—चाउर* (चावल), *अग्र+ऊढ =अग्रौढ* ]।

अगौतिया—(स०)—(१) आगे का। (२) समय के शुरु होते हो अथवा कुछ पहले ही रोपी बोई जानेवाली और पहले तैयार होनेवाली फसल (मु०-१)। पर्या०-अगत्तर (भाग०-१)। [*अग+औतिया<*अग्र+उप्त*]

अगौरी—(स०) हरवाहे को अगाऊ दी जानेवाली मजदूरी (द० प० म०)। दे०—अगवड। [ *अग+औरी<अग्र+आहार = अग्राहार, अग्र+चाउरी* (चावल)=*अगाउर>अगौरी, अग्र+ऊढ=*अग्रौढ* ]।

अग्गा—(स०)—(भाग० १)। दे०—अगरा। [ *अग्र* ]

अग्निझम्प-(स०) एक प्रकार का फूल (वर० १)। [ *अग्नि+झम्प* ]।

अछार—(स०)—(१) पानी में ही बीज खसाने (बोने) की प्रक्रिया (दर० पूर्णि० १, चपा०)। (२) जोरों की वर्षा, बौछार। (३) वृद्धि, उछाल। [ <**आसार* (आसार=मूसलाधार वृष्टि) *उच्छाल* ]।

अछारा—(स०) खेत में पूरा पानी रखकर बीज बोया जाना (मु० १ भाग०-१)। [*आसार* (आसार=मूसलाधार वृष्टि) ]।

अछारी—(स०) उतनी वृष्टि, जितने से जमीन में हाल होकर पानी जमा हो जाता है (मुं० १)। [*आसार*]।

अछेवट—(स०) पीपल बरगद और पाकड़ का संयुक्त वृक्ष (पट० १)। [ *अछे+वट<*अक्षयवट* ]।

अजमोदा—(स०) अजवाईन एक प्रकार का मसाला। पर्या०—वनजवाइन (म०) पितरसेली, चितरसेली (म०)। [ *अजमोद, अजमोदा* (संस्कृ०) *अजमोद, अजमुदा* (हि०), *वनयमानी* (ब०) *अजमोद, थोडी अजमोद* (गु०) *आजामोदा* (ते०), *अजमो दावोवा* (मरा०) ]।

अजवाईन—(स०) एक प्रकार के महीन दाने का मसाला (गया, द० म०)। पर्या०—जवाईन (प०, चपा०, पट०, द० भाग०), जेनाईन (ग० उ०)। खोरासनी जवाईन—यह वस्तुतः इस अजवाईन की जाति का नहीं है। [ *यवानी खोरासानी जवाईन=पारसीक यवानी* (संस्कृ०) ]।

अजवारल—(वि०) (१) अन्न आदि निकालकर खाली किया गया बर्तन, (चपा० १, पट० ४, सर्वत्र)। (क्रि०)-(२) किसी बर्तन को खाली कर देना (भाग० १, सर्वत्र)। [*अजवार+ल* (प्र०)<*अजवार* (?) ]।

अजान—(स०) छींट कर (बावग) बोया जाने वाला श्वेत वर्ण का धान (द० मु०) [ *देशी* ]।

अजुरा—(स०) मजदूर को मिलनेवाली मजदूरी (पू०)। दे०—मजूरी। [*अजलि*= (कभी कभी अजलि से मापकर ही मजदूरी दी जाती है) ]।

अजू—(स०) (१) फसल (मकई) की बिना पकी बाल (म०)। दे०—दुद्धा। (२) किसी फल की कोमल बतिया (चपा० १)। पर्या०—खिश्रा—(भाग० १)। [ *आर्द्र* ]।

अटका—(स०)-(द० भाग०)। दे०—अँकता। [*अटका<अकता<अकतअ<*अक्षतक*]।

अटकामिसिया—(सं०) खेत में उपजनेवाला एक प्रकार की घास (मु०-१, भाग०-१) [ *अटका+मिसिया<*अक्षतक+मिश्रित* ]

अठकठिया—(स०) (१) आठ कट्ठे का खेत (मु० १, भाग० १)। (२) आठ लकड़िया (?) की (नाप) (मु० १)। [ *अठ+कठिया<अठ + कट्ठा + इया<*अष्ट+काष्ठा* ]।

अठनिया—(स०) भूमिकर में से अधवार्षिक चुकती (किस्त)। (चपा०, भाग० १) दे०—अधमर। [*अठनी+इया<आठ आना,<आएनक—मिला० 'अएु'—*(नेपा०) ]।

अठन्नी—(स०) दे०—अधसर। आठ आने का सिक्का।

अठवारा—(स०) गाय चराने या दूहनेवाले को पारिश्रमिक के रूप में गाय के दूध में से आठ दिन में से एक दिन दिया जानेवाला दूध (सा०, भाग० १)। दे०—वारा। [*आठ+वार* (दिन) <**अष्टवार*]।

अडकल—(क्रि०) उस खेत से पानी का सूख जाना,

अगहर—(सं०)-(द० "शाहा०)। दे०—अगवर। [ < *अग्रहार ]।

अगाउर—(स०) मजदूर को दी जानवाली अग्रिम मजदूरी(द०-पू०म०)।दे०-फाजिल।[अगाउ+र, अग + आउर, अगा + उर< * अग्रवलि ]।

अगाड़—(स०) ओसान के समय हवा में भूसा के साथ उड़ा हुआ अनाज (चपा०, पट०, गया)। दे०—अगवार। [ अग्र, अवकर ]।

अगार—(सं०)-(१) मजदूर को दी जानवाली अग्रिम मजदूरी (पट०)।दे०—फाजिल [अगार < अगवार < * अग्रवृत्ति < * अगवलि २-मोट का वह छोर, जहाँ उसका अंत हुआ हो—(चपा० १)। [ अग्र ]।

अगार, अगारी—(सं०)—कुएँ के ऊपर बरह (मोटा रस्सा) से जुड़े हुए ढेकुल के छोर का अगला भाग ( भाग०-१ )। पर्या०—अगड़न (पट० ४)। [ अगार< अगार < * अग्र ]

अगारी—(स०)—(१) बीज के लिए काटे गये ऊख के ऊपर का टुकड़ा, जो और भाग की अपेक्षा जल्द उगता है (पट०)। दे० अँगरी। [ अग्रकाण्ड, अंगली=ऊख का टुकड़ा (दे०-मा० मा० हम०)]। (२) दे०—अगार। [ अग्र ]।

अगिया—(स०) एक प्रकार की घास, जो धान के पौधे को जला देता है। [अग्नि]।

अगेंद—(सं०)-(१) पशुओं को चारे के रूप में दिया जानेवाला ऊख का ऊपरवाला भाग (पट० ४, पु०)। [अग्रकाण्ड]। (२) ऊख के ऊपरवाले हिस्से की पत्तियाँ। (३) चारे के लिए काटा गया ऊख के ऊपर का हरा भाग (शा०)। पर्या०—गेंद (द०-म० शाहा०), अँगरी (गया प०) अगरा (पट०) पगार (म०) छाव (पू० म०), पगड़ा (द० पू०, भाग०) पगड़ा (भाग०-१)।[अग्रकाण्ड,पगार < *प्राग=प्र+अग *पग्राम, छाँव< *छिदा, छाया]।

अगेंद—(सं०) ऊख के ऊपर का कटा हुआ हरा भाग, जो चारे के काम में आता है (गा०)। पर्या०-अँगर (गा०), गेंद (चंपा०,शाहा०), । अगारी (गया, पट०), अगरा (पट०), अगाड़ (द० म०), पगार (म०), पगड़ा (द० भाग०)। [अग्रकाण्ड पगार<पगाड़< *प्राग, पग्राम]।

अगरबधू—(स०) (गया)। दे०—अगरदध। [ अगर+बधू< अग्रबध ]।

अगोरनिहार, अँगोरिया —( स० ) फसल या अनाज की रखवाली (रक्षा) करनेवाला (प० ४)। दे०-रखवार। पर्या०—अगोरा (चपा०, द० मु०)। [ अगारनि+हार ( वि० प्र० ), अगार+इया (वि० प्र०) ]।

अगोरबटाइ—(स०) खलिहान में होनेवाला बटवारा। यहाँ बँटवारा होने तक अनाज की रखवाली करनी पड़ती है, अतः इसे अगोर बटाई कहते हैं। दे०—बटाई गोरिहारी। [ अगोर+बटाई ]।

अगोरल—(क्रि०)खेत आदि की रखवाली करना (चपा०, मु १, पट० ६, भाग० १) [ अ+ गोचरा, अ + गोपन, अगोरना (हि०) < अग्र —( हि० शा० सा० ) ]।

अगोरा—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (रक्षा) करनेवाला (चपा०,द० मु०,पट० ४)। दे०—रखवार। पर्या०—अगोरिया, अगोर निहार, जागवार (भाग०-१)। अगोरी= रखवाली। [ अगार+आ, अगार+इया, अगारनि+हार ( वि० प्र० ) ]

अगोरिया—(सं०)-दे०-रखवारी। [ अगार+ इया ]।

अगोरिया अगारनिहार—(सं०)। दे०—रख वार। अगोरनिहार।

अगोरी—(सं०) फसल या अनाज की देखभाल (पट०-४)। दे०—रखवारी।

अगौं— (स०) गृहस्थ का (भूमिपालक) के लिए नये तैयार अन्न से निकाला गया अन्न। पर्या०—अगग्रह शाहा०), रसुआइ ( चपा० ), (भाग०-१) रसवद (चंपा०)। [ अग्राश ]।

अगौंओं—(सं०) खलिहान में तैयार नये अन्न में से पहले-पहल निकाला गया ब्राह्मण भाग (प०)। दे० बिसुनपिरित। [ < *पग्राश]।

अगोढ़ी—(स०) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम काम की मजदूरी (द० मं०)। दे०—फाजिल। [ अग+ओढ़ी< अग्र+

आहार, अग्र—चाउर (चावल), अग्र+ऊढ =*अग्रौढ ]।

अगौतिया—(स०)—(१) आग का। (२) समय के शुरू होने हो अथवा कुछ पहले ही रोपी जानेवाली और पहले तयार होनेवाली फसल (मु०-१)। पर्या०—अगत्तर (भाग०-१)। [अग+औतिया< *अग्र+उप्त]

अगौरी—(स०) हरवाहे को अगाऊ दी जानेवाली मजदूरी (द० प० म०)। दे०—अगवड। [अग+औरी< अग्र+ आहार = अग्राहार, अग्र+चाउरी (चावल) = अगाउर >अगौरी, अग्र+ऊढ = *अग्रौढ ]।

अग्गा—(स०)—(भाग० १)। दे०—अगरा। [अग्र ]

अग्निझप्प-(स०) एक प्रकार का फूल (बर० १)। [अग्नि+झप्प ]।

अछार—(स०)—(१) पानी में हो बीज ससान (चोन) की प्रक्रिया (दर० पूर्णि० १, चपा०)। (२) जोरो की वर्षा, बौछार। (३) वृद्धि, उछाल। [ < *आसार (आसार = मूसलाधार वृष्टि) उच्छाल ]।

अछारा—(स०) खेत में पूरा पानी रखकर बीज बोया जाना (मु० १ भाग०-१)। [आसार (आसार = मूसलाधार वृष्टि) ]।

अछारी—(स०) उतनी वृष्टि, जितने से जमीन में हाल होकर पानी जमा हो जाता है (मुं० १)। [आसार]।

अछेवट—(स०) पीपल बरगद और पाकड का संयुक्त वृक्ष (पट० १)। [अछे+वट< *अक्षयवट ]।

अजमोदा—(स०) अजवाईन एक प्रकार का मसाला। पर्या०—वनजवाइन (म०) पितरसेली, चितरसेली (म०)। [वनमोद, अजमोदा (संस्कृ०) अजमोद, अजमुदा (हि०), वनयमानी (ब०) अजमोद, बोडी अजमोद (गु०), आजामोदा (त०), अजमोदावोना (मरा०) ]।

अजवाईन—(स०) एक प्रकार के महीन दाने का मसाला (गया, द० मुं०)। पर्या०—जवाईन (प०, चपा०, पट०, ब० भाग०), जेवाईन (म० उ०)। खोरासनी जवाईन—यह वस्तुत इस अजवाईन की जाति का नहीं है। [ यवानी खोरासानी जवाईन=पारसीक यवानी (संस्कृ०) ]।

अजवारल—(वि०) (१) अन्न आदि निकालकर खाली किया गया बर्तन, (चपा० १, पट० ४ सर्वत्र)। (क्रि०)-(२) किसी बर्तन को खाली कर देना (भाग० १, सर्वत्र)। [अजवार+ल (प्र०)< अजवार (?) ]।

अजान—(स०) छींट कर (सावन) बोया जाने वाला श्वेत वर्ण का धान (ब० मु०) [ देशी ]।

अजुरा—(स०) मजदूर को मिलनेवाली मजदूरी (पू०)। दे०—मजूरी। [अजलि = (कभी कभी अंजलि से नापकर ही मजदूरी दी जाती है) ]।

अजू—(स०) (१) फसल (मकई) की बिना पकी बाल (म०)। दे०—दुद्धा। (२) किसी फल की कोमल बतिया (चपा० १)। पर्या०—खिचा—(भाग० १)। [ आर्द्र ]।

अटका—(स०)-(द० भाग०)। दे०—अँकता। [अटका< अकता< अकतअ< *अक्रतक ]।

अटकामिसिया—(स०) खेत में उपजनेवाली एक प्रकार की घास (मुं०-१, भाग०-१) [ अटका+मिसिया< *अक्रतक+मिश्रित ]

अठकठिया—(स०) (१) आठ कट्ठे का खेत (मु० १, भाग० १)। (२) आठ लकड़ियो (?) की (मार) (मु० १)। [अठ+कठिया< अठ + कट्ठा + इया< *अष्ट + काष्ठा ]।

अठनिया—(स०) भूमिकर में से अपवादिक चुकती (किस्त)। (चपा०, भाग० १) दे०—अधसर। [अठनी+इया< आठ आना,< *आणक—मिला० 'अणु'—(नपा०) ]।

अठन्नी—(स०) दे०—अधसर। आठ आने का सिक्का।

अठवारा—(स०) गाय चराने या दुहनेवाले को पारिश्रमिक के रूप में गाय के दूध में से आठ दिन में से एक दिन दिया जानेवाला दूध (सा०, भाग० १)। दे०—वारा। [आठ+वार (दिन) < *अष्टवार]।

अड़कल—(क्रि०) उस खेत के पानी का सूख जाना,

जिसमें धान की फसल बोई गई हो, किंतु फसल अभी तक हरी भरी न हो पाई हो। (शाहा०)। [अड़क+ल<अड़क (?)]।

अड़कल—(वि०) अटका हुआ। दे०—अड़कल।

अड़गड़ा—(सं०) अपराधी मवेशियों को बाँध रखने का सरकारी स्थान (मुं०-१, भाग० १)। पर्या०-फाटक काँजी हाउस। [अड़+गड़ा<आड़+घर]।

अड़गड़ा

अड़गुड़ाह—(वि०) ऊँची-नीची, टेढ़ी मेढ़ी, ऊबड़ खाबड़ जमीन। [देशी]।

अड़हुल—(सं०) एक प्रकार का फूल, जो लाल रंग का होता है (दर०, पूर्णि० १)। पर्या०—उड़हुल (पट० ४), अदउल (भाग० १ ओदउल (चंपा०)। [ओड़पुष्प]।

अड़रनेवा—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध फल पपीता (दर०, पूर्णि० १)। पर्या०—पपीता, रड़मेवा (भाग० १, चंपा०)। [एरंड+मेवा]।

अड़ाँस, अँड़ास—(सं०) कुएँ के मुँह का वह भाग जहाँ पानी गिराते समय कूड़ ठहर जाता है (कहीं कहीं यह लकड़ी का बना होता है)। (पट० ४ गया, भाग० १, मुंग०-५, म० २ चंपा०)। [मिला०- अड़स (मे०)= (झुकना, रोकना), अड़ (प्रा०)=कूप, कूप के पास का गर्त्त, तट (पा० स० म०)]।

अड़ा—(सं०) जंगल में पशुओं के रहने के लिए बनाई गई पलानी (गया)। दे०—खाता। [अड्डा मिला०-√अड (उद्यम), √अड्ड, (अभियोग), √अम (भूतप्रयोगि वारणव)। अड्ड (प्रा०)=रोक, जो आड़े आता हो, बाधक होता हो (पा० स० म०), अड्डा (सता०)=मध्याह्न में पशुओं के बैठाने की जगह (सता० हि०)]।

अड़ान—(सं०) जंगल में पशुओं के रहने के लिए बनाई गई पलानी। (पट०, भाग०)। दे०—खाता। पर्या० अलान (पट० ४)। [*आलान, √अड (उद्यम) √अम (भूतप्रयोगितिवारणेषु) अड्डि (म०)=रहना, ठहरना (मरा०) अड्डा। (संता०)=मध्याह्न में पशुओं को बैठाने की जगह (सता० हि०)। अड़ान, अड़ार (भाग०)]।

अड़ानी—(सं०)—(१) कुदाल के दंड के नीचे वाला गाँठदार अंतिम अंश। दे०—हूरा। (२) ढेंकी चलाते समय सहारे के लिए हाथ में पकड़ा जानेवाला बाँस या लकड़ी का टुकड़ा, जो दो खम्भों के बीच बँधा रहता है। (पट० ४, द० मुं०) दे०—अरधम। [आलान, अड़ + अनी<*अर+अणि]।

अड़ानी

अड़ार (सं०) (१)—(शाहा०) दे०—अड़ान और खाता। (२) चरागाह के लिए छोड़ी गई जमीन (शाहा०)। दे०—परती। पर्या०—गोचर। [अड़ा (सता०)=मध्याह्न में पशुओं के बैठाने की जगह (संता० हि०)]।

अड़ाव—(सं०) रुकावट (सा० १)। [मिला०—√अट (उद्यमे) आलान]।

अड़ीया—(सं०) (मुं० १)। दे०—अँड़िया। [अड़ (=घट)+ईया<अएड्वान् (संस्कृ०) अड्डुया (मे०)]।

अढ़इया घेल—(सं०)—बड़ा-बड़ा, लगभग दो-ढाई सेर तक का फलवाला बैल—(प० १)। [अढ़इ+या+घेल<(अढ़ाई) अर्द्ध+द्वि+बिल्व]।

अदउल—(सं०)—(भाग० १)। दे०—अड़हुल।

अदाहल—(क्रि०)—खेत का बार बार जोत कोड़कर तैयार करना (दर०, पूर्णि० १)।

अढ़ैया—(सं०) ढाई सेर का बटखरा (बिह०, हरि०, रो०)। [अर्ध+द्वि]।

अतार—(सं०) एक प्रकार का कर्म जिसकी तरकारी बनती है (उ० प०)। दे०—पतार। [अतार<सतार अता (लता)+र]।

अदंत—(सं०) वह बछड़ा, जिसके दूध के दाँत न टूटे हों और नये दाँत नहीं निकले हों, किन्तु गोजन्म (मुं०, दर० पूर्णि० १, भाग० १)। दे०—उदंत। [अ+दंत]।

अदरख—(सं०)—दे०—अदरक। [*आर्द्रक (संस्कृ०) आद्दु (प्रा०) आलें (मरा०)]।

अदरख—(स०) एक प्रकार का कद, जिसका उपयोग मसालों और औषधों में होता ह। यह तीता होता ह। पर्या०-अदरक, आदी, आद, (द०-पू० म०, भाग० १)। [आर्द्रक (सस्कृ०), आद (गु०) आलें (मरा०)]।

अदरा—(सं०) छठा नक्षत्र, आर्द्रा। (पट० ४, चपा०, भाग० १) दे०—अरदरा।

टि०—आर्द्रा नक्षत्र की वर्षा फसल के लिए नितान्त आवश्यक मानी जाती ह।

कहा०—अदरा मास ज बोए साठी।
दुख के मार निकाल लाठी॥

—आर्द्रा नक्षत्र में यदि साठी धान बोया जाय तो आप लाठी मारकर दुख को मार भगाएँ।
[ < *आर्द्रा (सस्कृ०), आर्द्रा (मरा०) ]

अदरा के कोडनी-(स०) दे०-असाढ़ी कोडनी। [अदरा+के+कोड़नी—यौ०]।

अदरा कोरन—(स०)-(चपा०,द०-पू०)। दे०—असाढ़ी कोरन। [अदरा+कोरन—यौ०]।

अदरिया—(सं०) एक प्रकार का आम जो आर्द्रा नक्षत्र में पकता ह (पट०-१)। [अदरि+या (प्र०)< *आर्द्रा]।

अदलई बदलई—(सं०) परस्पर आदान प्रदान (पट० ४ भाग० १ चंपा०)। [अदलई+बदलई—बदल की आवृत्ति, अदला-बदल-(मरा०)]।

अदार—(सं०)—(१) वह बल जो काम में कभी न रुके (मं० शाहा०, द० भाग०)। पर्या०—अदारी औदार (पट०, गया), अर्यो (द० मु०)।(२) वह बल जिसे अभी तक हल में नही लगाया गया हो (चपा०, भाग० १)। [अदार (सता०) =साँढ, आद्रुत=अ+ ✓द्रु+त उदार< उद्+आर (कौल रस्सी) < उद्गत + आर (=बधन या सीमा से पार)]।

अदारी—(स०)—दे०—अदार।

अधकचु (वि०)-अधपका फल (चपा० १ पट० ४ भाग० १)। [अध + कचु, अर्धाकच्चा (मरा०), अधकचो (नें०)]।

अधकड़ किस्त-(स०)-(द० भाग० भाग० १)। दे०—अधखर। [अध+कड़+किस्त, अर्ध+कर (सस्कृ०)+किस्त (फा०)]।

अधकर—(स०)-(ग० उ०)। दे०—अधखर। [अध+कर< *अर्धकर]।

अधखर—(स०) भूमिकर में से अर्धवार्षिक चुकती (किस्त)-(ग० उ० भाग० १)।पर्या०—अधकर, (ग० उ०)। अठनिया अठन्नी (सामा०), अधकड़ किस्त (द० भाग०)। [अध+खर= *अर्ध+कर]।

अधन्नी—(स०) प्रतिमास दो पसे प्रति रुपये सूद की दर (द० पू० भाग० १)। दे०—टकही। [अध+अन्नी=आध (< अर्ध)+आना]।

अधपइ,अधपई—(स०) आधा पाव या दो छटाँक माप का बटखरा (भोज०, मग० शाज०)। दे०-अधपौआ। [अध+पइ< आध+पाइ< *अर्धपाद]

अधपक्कू—(वि०)फसल की अधपकी बाल (गया, भाग०-१, चपा०-१)। दे०—हुबसाएल। पर्या०—डँभाएल (द० भाग०) डम्हाएल (चपा०) [अधपक्व]।

अधपौआ—(स०) आधा पाव या दो छटाँक वजन का बटखरा (रो०)। पर्या०-अधपइ, अधपई (भोज०, मग०, शाज०)। [अध+पौआ ✓ *अर्धपाद]।

अधबटिया—(स०) भावली या जिरात जमीन की उपज में से किसान और जमींदार के बीच आधे आध की बटाई (चंपा० द०-पू०)। दे०—अधिया [अध+बटिया (=बटाई) < अर्ध+बटन]।

अधबटैया—(स०) (पट०, गया, भाग० १) दे०—अधिया [अध+बटैया]।

अधबलिया—(सं०) गाड़ी का एक हिस्सा (दर०, पूर्णि० १)। पर्या०-अधबल्ला [अध+बलिया < *अर्धवलय]।

अधभरी-(सं०) वह धान जिसके दानों में चावल पूर्णतया विकसित नही होत, बल्कि आधा भूसा ही जाता है (द० मु० भाग० १) [अध+भरी]।

अधमना—(स०) आधे मन का बटखरा। आधा मन बीस सेर का होता ह, अत इसे बिसखरा' भी कहते हैं (वि०, हरि०, रो०)। [अध+मना< *अर्ध+मान, मानक (?)]।

अधरसा—(वि०)—(शाहा०) दे०—अधरासा। [अध+रसा< *अर्ध+रस]।

दे०—बोदर। (२) वह स्थान या गड्ढा, जहाँ करान गाड कर पानी पटाया जाता है (चपा०)। [मिला० अनूक=रीढ (मो० वि० हि०), अनूप=जलसमीपस्थ, नदीतट, अनूर्ध्व=अधिक ऊँचा नहीं, अनुन्नत]।

अनुपान—(स०)एक प्रकार का मेला (वर० १)। पर्या०—अल्पान (पट० ४)। [देशी]।

अनुराधा—(सं०) सतरहवाँ नक्षत्र अनुराधा, यह नक्षत्र कार्तिक महीने में पडता है। [अनुराधा]।

अनूपी—(स०) एक प्रकार का फूल (वर० पूणि० १)। [अनूप=जल-समीपस्थ]।

अनेर जाएल—(मुहा०) पशुओं का भूला जाना, भटक जाना (च० पू० म०)। दे०—हेरा जाएल। [अनेर+जाए+ल (प्र०) अनेर<अनृत (हि० श० सा०) अनेड=मूर्ख,<*अन्+अर्य=अस्वामिक]।

अनेरवा जाएल—(मुहा०) दे०—हेरा जाएल और अनेर जाएल। [अनृत (=अनेर)—हि० श० सा०), अनेड—मूर्ख, *अनर्य (=अन+अय=अस्वामिक]

अनेरा—(स०) (प० मं०, भाग०१)। दे०—अनरिया। [*अनर्य=(अन्+अय)अस्वामिक]।

अनरिया—(स०) वह पशु जो बिना किसी देख भाल के चरने के लिए छोड दिया जाता है (प० चपा० १)। पर्या०-अनरा (प०-म०) छुट्टहा (गया), उद्‌गार (पट०) उज्झा (द० मु०) उजरा (द० भाग०)। [*अनर्य (<अन्+अय) =अस्वामिक, अनेरा=अनर्य, छुट्टहा √छुट (देशी) √छुट (छेदन संस्कृ०), उज्झा=उज्झ, उज्झित (संस्कृ०)=त्यक्त, उजरा—उजड (देशी) उद्√ज् (=क्षयोहानो)]।

अनौआ—(स०) वह ऊँचाई जहाँ तक करीन आदि से पानी उठाया जाता है (द० प० शाहा०)। दे०—बाँध। [अनूक=रीढ (मो० वि० हि०), अनूप=जलीय प्रदेश, जलीय तट, अनूर्ध्व]।

अन्न—(स०) भोजन, अनाज। [अन्न]।

अन्पट—(स०) मवेशियों की आँख को बंद करने के लिए सीक और टाट का बना हुआ ढक्कन (शा० चपा०)। पर्या०—खोलसा (म०, द०-पू०) खोल, खोला (पू०) झोपनी (शाहा०) नाकुता (शाहा०), अधियारी (पट०) अँधेली (गया)। टोकनी (पट० ४) खोलसा —(भाग १)। [अनुवृत=(अनु √व+त) ढँकनेवाला]।

अनपट

अन्हड—(स०)-दे०-अंधड (वर० १,भाग० १)। [*अंधकर]।

अन्हरवखे—(सं०) सबेरे का वह समय, जब पूरा साफ नहीं हुआ हो और कुछ कुछ अंधकार हो (चपा०-१)। पर्या०—अन्हरूखे (भाग० १)। [अंहर+वखे, <अंध (क) र+वखे (<उपस्)]।

अन्हरिया—(स०) ऊख में अंकुर फूटने पर पहली कोडना या जोत (उ० पू० म०)। दे०—पुआरी। पर्या०-अन्हारि-(दर०-१)। [अंधकर]।

अन्हरिया—(स०) कृष्णपक्ष की रात, जिसमें चन्द्रमा नहीं उगता (चपा० १ दर० १, पट० ४ भाग० १)। [अंधकारिन् (पक्ष)]।

अन्हरुखे—(स०)-(भाग० १), दे०-अंहरवखे।

अन्हरोख—(स०)—(दर० १) दे—अंहरवख [अंहर+ओख<*अंधकर+उपस्]।

अन्हारि—(स०)—(दर०-१)। दे०—अंह रिया और पुआरी।

अन्हारी दत—(मुहा०)—ईख के खेत में पाचड पडना (दर०-१)।

अन्हार—(स०)—धान रोपने के पहले खेत को तयार करने के लिए जल से भरने की प्रक्रिया (द० भाग०)। दे०—लेव। [अनु+अवगाह]

अन्हावल—(क्रि०)—धान के पौधे को रोपने के लिए खेत गीला करना (मु० १)। [स्नान (?), अनु+अवगाहन]

अन्हेरिया—(स०) पट०) दे० अन्हरिया।[अंधकार]।

अन्हार फइल (मुहा०) बहुत जोर से बाजा बजाकर हल्ला करना (चपा—)। [अंहार+फइल, आह्वान (?)—फइल (<√ट=कर)]।

अपजोस—(सं०) एक प्रकार का मेवा। यह मुनक्का से बड़ा होता है (पट० १)। [आबजोश (फा०)]।

अपटा—(सं०)-(१) वह खेत, जिसे बाढ़ आदि किसी कारण से कृत्रिम सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती। पर्या०—उपटा (पट० ४, भाग०)। (२) नहर या पैन आदि का मुँह खोलकर जमीन की सतह से ऊँचे जल प्रवाह के द्वारा पूर्णरूपेण खेत की धारावाहिक सिंचाई (उ०-प०)। पर्या०—अगरपाट (चपा०, उ० प० म०) टोड़ (प०) सोहर (प०), छानन (पट० गया), मेलान (द० मुं०) ढुरका, उपटा (द० भाग०)। [अ+पटा]।

अपराजिता—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर० १)। [अपराजिता (संस्कृ०)]।

अपाय—(सं०) फसल का एक रोग (मुं०-१, भाग० १)। [अपाय (संस्कृ०)]।

अपासी—(सं०) सिंचाई-(पट० ४) दे०—आब पाशी। [अ+पासी<० आबपाशी (फा०)]।

अपुआँग—(सं०) एक प्रकार की घास (दर० १)।

अफार—(सं०) बिना जोता हुआ खेत (सा० १, चपा०, भाग०)। पर्या०—परती (पट० ४, भाग १)। [अ+फार<अ+फाल, अफाल]।

अफीम—(सं०) पोस्ते से उत्पन्न होनेवाली एक वस्तु जो दवा और नशा दोनों कामों में व्यवहृत होती है। [अफीम (फा०) अहिफेन (संस्कृ०)]

अबई—(सं०) दे०—अबी [अ+बई ०अ+ बीज ०अवीर्य]।

अबरसन—(सं०) वर्षा का अभाव (सा० १)। [अ+बरसा<०अ+वर्षण]।

अबाद—(सं०)-(१) वह जमीन, जो कभी परती नहीं रहती। (पट० ४, भाग० १) पर्या०—अबादी, उठर्ता (चपा०)। (२) फसल लगाया हुआ खेत। पर्या०—अबादी, घर (द० मुं० गया) खाल बैठा घास, (प०) सिलमार (शाहा०)। [अबाद=आबाद (फा०), सुरीक (मरा०)]।

अबादी—(सं०) दे०—अबाद [आबादी (फा०)]

अबिज्ज—(सं०) मरा हुआ या उगने में असमर्थ बीज (ग० उ०)। दे०—अबी। [अ+बिज्ज <*अबीज, *अवीर्य]।

अबी—(सं०) वह अन्न का बीज, जो उग नहीं सकता है (चंपा० १)। [अ+बी<*अबीज *अवीर्य]।

अबुआब—(सं०) गाँव में रहनेवाले शिल्पियों और दूकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा लिया जानेवाला भूमिकर (पू०)। दे०-मोत रफा। [अबवाब] (अर०)]।

अबोँ—(सं०) वह बैल, जो काम में कभी न थके (द० मुं०)। दे०—अथार। [अबोट (संत०)= अपरिश्रान्त]।

अबोन—(सं०) रोपने के बाद खेत से पानी को बाहर निकालकर धान के पौधों में धूप लगाने की प्रक्रिया। (मुं० १, भाग० १)। [देशी]।

अभर—(वि०) कमजोर मिट्टी (चपा०)। दे०—हलुक। [अ+भर<*अभर]।

अभ्री—(सं०)-(१) न जम सकनेवाला अनाज। पर्या०—निरबीज, बिजमार, बीयामार, बकमा (द० प० शाहा०), कुम्बी (द० भाग०)। (२) न उगनेवाला निकम्मा बीज (प०)। दे०—गुम्मी। पर्या०—अबई, कुम्बी (द० भाग०)। [अ+भ्री<*अवीर्य, *अबीज]।

अमचूर—(सं०) आम की सूखी खटाई (चंपा० १)। [अम+चूर<*आम्रचूर्ण]।

अमड़ा—(सं०) एक पेड़ और उसका फल। इसका फल कसैला और खट्टा होता है। इससे चटनी अचार आदि बनाये जाते हैं। (पट० १, दर० १, सर्वत्र)। [आम्रातक (संस्कृ०); *अंबाड़ (प्रा०), अँबाड़ा, आमरा, अमरा, अमला (हि०), आमड़ा, अमड़ा (बं०), अबाड़ा ओकपार (मरा०) अ गला आमा, अँमेड़ा, अँमेड़ा (गु०), आँवाडेकाचि; आमाट, अम्बाळ (ते०) अमरा, अँबड़ा (सं०) अमारी (ने०)]।

अमदाद—(सं०) वह धनराशि जो वंचित लोग से वसूल हो (चंपा० १)। [रूमी]।

अमना—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (द० मुं०, चपा०)। [देशी]।

अमर्दी—(सं०) एक प्रकार का धान (दर० १)।

अमदुर—( सं० ) अमरूद । एक प्रकार का पेड़ और उसका फल । इस पेड़ का फल कच्चा रहने पर कसैला और पकने पर मीठा होता है । इसके भीतर छोटे छोटे बीज होते हैं । यह फल रेचक होता है । इसकी पत्ती और छाल रँगने और चमड़ा सिझाने के काम में आती हैं । इसकी पत्ती के काढ़ा से कुल्ली करने से दाँत का दर्द दूर होता है । मदक पीनेवाले इसकी पत्ती को अफीम में मिलाकर मदक बनाते हैं (पट० १) । पर्या०—अमधुर—(चपा०), अमरूध ( शाहा० १ ) । [ *अमृत* (फल), *जाम विहि* (म० प्र०, म० भा०), *प्यारा* (बं०) पेरू-(मरा०), पेरु फल, पेरुक ( त०, ते० ), *रुनी* ( नें० ), *सफरी*, *अमरूद* ( अव० ), *साफली*, *लताम* (म०)]

अमधुर—(सं०)—(चपा०) । दे०—अमदुर ।

अमरलत्ता—(सं०) बबूल आदि के पेड़ों पर फैलनेवाली बिना जड़ पत्त की एक प्रकार की पीली लता । इसे 'परायेभोजी' लता भी कहते हैं । यह उन पेड़ों से रस लेकर जीती है (मु० १, पट०-४, भाग० १) । पर्या०—अमर-बेल । अमरलत्ती(दर० १, पूर्णि० १, भाग० १, चपा०) । [*अमर*+*लत्ता*<*अम्बर*+*लता*,< *अमर* + *लता* ]

अमरलत्ती—( सं० )—( दर० १,—पूर्णि० १, भाग० १, चपा०) । दे०—अमरलत्ता ।

अमरूध—(सं०) एक प्रसिद्ध फल (शाहा० १) । दे०—अमदुर । [ *अमृत* (फल)]

अमरौरा—(सं०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (पू० म०, गया, चपा०) । [ *देशी* ]

अमरौरा—(सं०) एक प्रकार का साग (दर० १, पूर्णि० १) । [ *देशी* ]

अमलदारी—(सं०) अमला का अधिकार (सा० १, पट० ४) । [ *अमल* + *दारी*<*अमला* + *दार* + *ई* (फा०)]

अमवाड़ी—(सं०) आम का बाग (पट० १) । [ *अम*+*वाड़ी*<*आम्र*+*वाटिका* ]

अमसूल—(सं०) एक प्रकार का धान (दर० १, पूर्णि० १) । [ *अम*+*सूल*<*आम*+*शूल*< *आम*+*शूक* ]

अमहा—(सं०) ऊख का एक भेद (घाघ)। [*अगाह* (हिं०)=नेत्र का एक रोग जिसमें आँख के ढेले से लाल मांस निकल आता है (हिं० श० सं०) <*अमात* ]

अमारी—(सं० )सूखे हुए गोबर का (बिना बनाये) ढेले जैसा टुकड़ा, जो जलावन के काम में आता है (गया, द० मु०, भाग०, पट० ४, भाग० १) । दे०—करसी । मुहा०—अमारी गुड़ल— गोबर से अमारी बनाना ।

अमावट— ( सं० ) पके आम के रस को सुखाकर बनाया गया परतदार खाद्य पदार्थ (प०, चपा०)। पर्या०—अमोट (उ० पू० म०, भाग० १) ।

अमीन—(सं०) खेत में लगी फसल का मूल्य आँकने के लिए नियुक्त व्यक्ति ( पट० ४, चपा०, भाग० १, मुंग० ५) ।

अमोट—( सं० ) पके आम के रस को सुखाकर बनाया गया परतदार खाद्य पदार्थ (उ०-पू० म०, दर० १, पूर्णि० १, भाग० १) । दे०—अमावट [ *अम्*+*ओट*<*आमावर्त* ]

अमोला—(सं०) आम का नया निकलता हुआ बिरवा (चपा० १) ।

अम्माघवद—(सं०) सफेद चावल और छिलके वाला एक अगहनी धान, जिसकी बाल में तीन तीन दानों के गुच्छ होते हैं (सा० १, चपा०) । [*अम्मा*+*घवद*<*आम्रगुत्स* (?)]

अमौरी—(सं०) आम का छोटा टिकोला, जिसमें रेशा नहीं आया हो (पट० १) । [*अम*+*औरी* <*आम्रवटी* ]

अरई—(सं०)—(१)मवेशियों को हाँकने के लिए छड़ी के अंत का नुकीला भाग । पर्या०—अरौआ ( पट० द० मु०), आर या अरुआ(द० भाग०) । [*अरुंतुद*] (२) वह बैल, जो चलते चलते एकाएक रुक जाता है (सा० १, चपा०)। [ *अरुंतुद* ]

अरई

अररस—(सं०) पपा ( गुड़ मकोम ) का रस ।

अरगनी - (सं०)-(चपा०) । दे०-अलगनी । [ *अर्क* (१६६०) *अर्क* (नें०), *अर्क* (मरा०)]

अरजन— (सं०) कमाई (चपा० १) । [*अर्जन*]

पेकची (शाहा०), पेपची (गया, शाहा०), अलवी (द० भाग०), अरुई (ब्राज०)। कच्चू, अरुमा, कंदा, कण्डा=अरुई का बड़ा भेद। [*आलुकी* (संस्कृ०), *आलुई* (प्रा०), *कोचू*, *कच्चू* (नें०), *आलु*, *अलवाचा काँदा* (मरा०), *अलवी* (गु०), *राय आलु*, *अरवी*, *कचालू*, (पं०), *शिमक*, *किजहगू* (ता०), *चम्मदुरा* (तें०)]

अरैया—(स०)-(१) धान के पौधे का एक रोग (द० मु०)। पर्या०—पोआरी (पू०)। (२) पानी में होनवाली बिना पत्तों की एक घास, जिसे पशु खाते हैं (पट० ४)। [*देशी*]

अरौ, अरौवा—(स०) हलवाहे का छोटा डंडा या छोटा पैना, जिसकी नोक में बलों के पुट्ठों पर गड़ाने के लिए लोहे का पतली कील लगी रहती है (मु०-१, पट०-४, भाग०-१)। [*अरुष्कर*, *अरुंतुद*]

अरौआ—(स०)-(१) पशु को हाँकनेवाली छड़ी के अंत का नुकीला काँटेदार भाग (पट०, द० मुं०)। दे०—अरई। [*अरुष्कर*, *अरुंतुद*] (२) हेंगा खींचने के बरहे (रस्सी) की जगह काम में आनवाली बाँस की लग्गी। दे०—कुण्डी।

अर्र्छो—(सं०) भैंसा को पुकारने का शब्द (शा० १, पट० ४)। पर्या०—अर्र्हे (भाग० १, चपा)।

अर्रा—(स०) एक प्रकार का थोड़ा बड़ा दाँतदार औजार, जिससे लकड़ी काटी जाती है (ग० द०)। दे०—आरा। [*आर*]

अर्राइल—(स०) वृक्ष के गिरने के समय की आवाज (चपा० १, पट० ४)। [*अनु०*]

अर्र्हे—स०)-(भाग १, चपा०)। दे०—अर्र्छो।

अर्हारल—(क्रि०) किसी को कोई काम करने के लिए कहना (चपा० १, पट० ४)। [*अर्ह*+*आरल* (प्र०) *अर्ह*<*अर्थ*< *ऋद्धि* (?)]

अलग—(स०)—(१) जल के रखने या बहराने से संबद्ध समतल भूमि से ऊपर उठा हुआ बाँध। दे०—पिंड। (२) दो बगीचों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेंड़ (पट०)। दे०—पाँवी। (३) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेत की भाग, मेंड़ (पट०, गया, द०-प०)। दे०—आर। (४) शरीर का एक अंग। हिस्सा। भाग (मु०-१, पट०-४, भाग० १ चपा०)। [*अ*+*लग*<*अवलग्न*,—*मिला०*—"*हिसाया प्रणये ज्ञानेऽवलग्नो मध्यलग्नयो*"—(अने०)। "*अवलग्नोऽस्त्रियां मध्येत्रिषु स्यालग्नमात्रके*"—(मेदि०)। *अलङ्घ्य*=*अलङ्घनीय*, *सीमा*]

अलगल—(स०) पाला पड़ा या मारा लगा हुआ ज्वार, मकई, बाजरा आदि (गया)। दे०—मखियाएल। (वि०) सामान्य अर्थ में उठा हुआ या उभरा हुआ। [*अ*+*लग*+*ल* (प्र०)=*न लगा हुआ*, *निष्प्राण*]

अलगा—(स०) डंठल के बिना ही केवल बाल की कटाई (द० भाग०)। दे०—बल्कट। [*अ*+*गला*]

अलगनी—(स०)-(१) फसल उखाड़ने का काम (मु० १, भाग० १)। (२) कपड़े टाँगने या रखने की रस्सी या बाँस (पट० ४, भाग० १)। पर्या०—अरगनी (चपा०)। [*अ*+*लग*+*ना* (प्र०)+*ई* (प्र०)<*अवलग्न* (?)]

अलगावल—(क्रि०) किसी चीज या बोझ, दूसरे को, किसी के द्वारा उठाया जाना (चंपा० १, पट० ४, भाग० १)। [*अ*+*लगाव*+*ल* (धा० प्र०)]

अलगी—(सं०) वह हल्की जमीन, जो अपनी उवरा शक्ति खो चुकी होती है (द०भाग०)। दे०—ढूस। [*अ*+*लग*+*ई*]

अलगोजा—(सं०)—(१) बाँस के कोपल का ऊपरवाला भाग (चपा० १)। (२) वह बाँसुरी जो सामने से फूँककर बजाई जाती है (चपा० १)। [*देशी*]

अलती—(सं०) एक प्रकार का कन्द, जो छोटा, लंबा लसदार और खाज करानेवाला होता है तथा जिसकी तरकारी बनती है (द० भाग०, भाग० १)। दे०—अरुई। [*मिला०*-*अलुकी*]

अलपजिया—(स०) पटा मानवाला पेड़ (द० पू० मु०)। द०—निमोराह। [*अलप*+*जिया*<*अल्पजीव*, *अलजिह्व*]

अलान—(सं०) लताओं को ऊपर चढ़ाने का मँगन। पर्या०—चौंदा (मु० १, पट० ४, भाग० १, चपा०)। [*आलन*, *आलम्बन*]

अलाया, अलावे—(सं०)—(१) किसान के द्वारा अपने खेत में अफीम आदि की उपज के बाद बोई जानेवाली फसल। (२) एक फसल काट लेने के बाद बोई जानेवाली दूसरी फसल। [अलावा (अ०)]

अलाये—(सं०) दे०—अलावा।

अलाह—(सं०) घासपात जलाकर बनाई हुई खाद (पट०, गया)। दे०—खाद।

अलुआ—(सं०)—(१) एक प्रकार का लंबा, मीठा कंद, जो फलाहार आदि में खाया जाता है (पू० उ० बि०)। दे०—सकरकंद। (२) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (म० उ०, द०, भाग०—१)। [आलू, आलुक]

अलुई—(सं०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (पू० म० सा०—१, चंपा०)। दे०—आलू। [आलुकी]

अलेर—(वि०) बहुत ज्यादा, इफरात (मुं० २, भाग० १)। [मिला०—अनेरा = (जिसका हिसाब किताब न हो, अधिक)]।

अलोत—(वि०) किसी वस्तु या किसी चीज की ओट में रखना (चंपा० १ भाग० १)। [आलुप्त, मिला०—अगोर होना (बि०)]

अल्हुआ—(सं०) एक प्रकार का लंबा मीठा कंद, जो फलाहार आदि में खाया जाता है (द०-पू० मं०, मुं० १, भाग० १)। दे०—सकरकंद। [अल्हु + आ < आलुक]

अवछुराह—(सं०) मवेशियों के [illegible] चोट लग जाने की प्रक्रिया (चंपा० १)। पर्या०—ओछुराह (पट० ४)। [अवक्षुर]

अवद्दार—(सं०) वर्षा का वह झोंका जो कुछ देर के लिए एकाएक पानी बरसा जाता है (चंपा० १)। पर्या०—अद्दार (पट० ४, भाग० १)। [अ*सार = आ + सार]

अवाँसल—(वि०) नई बरतन या पहले-पहल काम में लाना (सा०)। दे०—उपाहन [आपासन]।

अषारस—(सं०) वह बही जिसमें प्रत्येक दिन के आय-व्यय का ब्यौरे का हिसाब लिखा रहता है। पर्या०—वासला। [आवारजा (फा०)]

असकलाइ—(सं०) ढेंकी की पूरी (द० भाग०)। दे०—असोड। पर्या०—साग, ससौआ (पट० ४)। [अस + शलाका]

असठी—(सं०) भारी (ओखली) के बीच की ऊँची भूमि (गया)। [अष्ठा ?]

असनी—(सं०)—(१) आश्विन में होनेवाला सफेद छिलकावाला एक लंबा धान (सा०—१, पट० ४, पट० १, भाग० १)। (२) वह उड़द, जो अगहन में फलती है (म०)। दे०—[illegible]। [आसिन + ई = असनी < आश्विनीय]। (३) पहला नक्षत्र, अश्विनी (पट० ४, भाग० १, चंपा०)। दे—अस्विनी। [अश्विनी]

असफगोल—(सं०) एक प्रकार की तिल जैसे दानवाली वस्तु, जो तरल वस्तु के साथ मिलने पर फूलकर लसदार बन जाती है तथा जिसके दाने और भूसी पेट की बीमारियों में खाई जाती है। इसका दाना भूरा एवं गुलाबी होता है और भूसी श्वेत भूरी होती है। पर्या०—सफगोल (पट० ४ भाग० १, चंपा०)। [इसबगोल (फा०)]

असमाना—(सं०) हल्का नीला रंग (पट० ४, भाग० १)। दे०—कुसुम। [आसमान + ई = आसमानी (फा०)। मिला०—आशा (दिशा) + मान (संस्कृ०)]।

असरा—खाँची का वह भाग जो खुला होता है (चंपा० १, पट० ४)। पर्या०—असारा (भाग० १) [अ + सारा < आसार]

असराफ—(सं०) ऊँची श्रेणी के काश्तकार (पट० ४)। पर्या०—शुरफा (पट०) शुरफान (गया), बड़ आदमी (म० उ०)। [अशराफ (अर०)]

असरेंमा—(सं०) नवाँ नक्षत्र आश्लेषा। यह नक्षत्र श्रावण के अंत में आता है। यह चक्राकार छह नक्षत्रों से बना है। इसका देवता सूर्य है। कहा०—'जे न भरे आश्लेषा मास।
घर भरे मघा मास॥'
—जो आश्लेषा और मघा नक्षत्र में नहीं भरता है, वह भरकर नहीं भरता है अर्थात् पुनः दूसरे वर्ष आश्लेषा और मघा नक्षत्र नहीं आ सके। पर्या०—असरेस, असरेंसा

(चपा०), असरेसा । असरेखा (भाग०) । [ आश्लेषा ]

असरेस—(स०) दे०—असरेखा ।

असरेसा—(सं०)—(चपा०) । दे०—असरेखा ।

असल—(स०) वह मूलधन, जो सूद पर दिया गया हो (पट ८, भाग० १, चप०) । पर्या०—मूर, मूल (शाहा०), सूदी रुपया (द०पू०) । [ असल—(अर०) ]

असल-के असल—(स०) जिस भाव पर खरीदा गया हो, उसी भाव पर बचन की प्रक्रिया (द० पू, पट ४ भाग० १, चपा०) । दे०—बिक्री के भाव ।

असला—(स०)—(भाग० १) । दे०—असरा ।

असलाएल—( क्रि० ) सड़ना स्वाद उतरना, गलना (मु० १, भाग० १) । [अ + सलाएल < अ-शरण (= श+ √ शृ = नष्ट होना, सड़ना), मिला० —सल्न (फ०) ]

असलेसा—(सं०) नवाँ नक्षत्र, अश्लेषा । दे० —असरेखा [ आश्लेषा ] ।

असा,—(स०) आषाढ़, भारतीय वर्ष का चौथा और ग्रीष्म का अंतिम मास । प्राय जून के अंत और जुलाई के आदि के १५ दिन । इस मास की पूर्णिमा को प्राय उत्तराषाढ नक्षत्र पड़ता है । अत आषाढ़ नाम पड़ा है । (पट०-४, भाग १, चपा० शाहा०, सा० भाग०) । दे०—असाढ़ ।

असाढ़ी—(स०)—(१) आषाढ़ में बोई जानेवाली नील की दूसरी खेती (ग० उ०) । दे०—फगुनी । (२) असाढ़ में बोयी जानेवाली फसल । [असाढ + ई < आषाढ़ीय ]

असाढ़ी के कोड़—(स०) ऊख की मुख्य कोड़नी, जो आषाढ़ या आर्द्रा-नक्षत्र में होती है (प०) । दे०—असाढ़ी कोड़नी । [ असाढ़ी + कोड़ ]

असाढ़ी कोड़न—(स०) आषाढ़ महीने में ऊख के खेत की हलकी कोड़ाई (पट०) । दे०—असाढ़ी कोर । [ असाढ़ी + कोड़न ]

असाढ़ी कोर—( सं० ) आषाढ़ महीने में ऊख के खेत की हलकी कोड़ाई । पर्या०-टोकप (चपा०, उ०-पू० म ), पासा ( गया ), असाढ़ी कोड़न ( पट० ), अद्रा-सोरन ( चपा० द०-पू० ) । [ असाढ़ी + कोर ]

असामियार—(सं०) वह समझौता, जिसके द्वारा किसान लोग यूरोपियन निलहों के साथ नील की खेती में प्रवृत्त हुए थे । दे०—रयती । [ असामि + यार < आसामी (अ०) ]

असामिवार—(स०) दे०—रयती । [असामि + यार < आसामी (अर०) + वार]

असामी—(स०)—(१) कर्ज लेनेवाला किसान (भाग० १, चपा०) । दे०—खदुका । (२) दे०—रिनिहा । (३) दूसरे की अधिकृत जमीन को नगदी आदि किसी शर्त पर जोतनेवाला किसान । पर्या०–रैयत, परजा काश्तकार, पोतेदार, (पट० भाग०-१) । [आसामी (अ०) मिला०—अस्वामी (संस्कृ०)]

असार—(सं०) फाल की नोक तेज करवाने की क्रिया (द० मु०) । दे०—धार पिटावल । [आशार]

असुनी—(सं०)—(भाग०-१) । दे०—अश्विनी ।

असेरी—(सं०) भावली जमीन में पटवारी को प्रतिमन आधा सेर के हिसाब से मिलनेवाला पारिश्रमिक (शाहा०) । दे०—नोंचा । [अ + सेरी < अधसेरी < अर्धसेट]

अश्विनी—(स०) पहला नक्षत्र, जिसकी आकृति घोड़े के मुख जैसी मानी जाती है । पर्या०—असनी, असुनी (भाग० १) । [अश्विनी]

अहमुख—(स०) वह पशु, जो हमेशा जीभ निकालता हो ( पट०-१ ) । [ अह + मुख < अहिमुख ]

अहरा—(स०)—(१) जल के संग्रह के लिए बँधा हुआ जलाशय, खजाना, अहरे की मेंड़ ( द० बि० भाग० १ ) । पर्या०—बाँध, भरथन (चंपा०) घूर ( उ० म० ), छुरकी (द०-पू० म०) । (२) बाँध से घिरी हुई धान की उपजवाली और ऊँची सतह के जल प्रवाह से युक्त ऊँची समतल भूमि (ग० द०, उ० प०) । दे०—हंडडी । [आधार, जलाधार, आहार]

अहरी—(सं०)—(१) छोटा जलाशय । द०—डंडी । (२) खेतों की सीमा, जो सामान्य भूमि से ऊँची उठी रहती है, मेंड़ (पट०, गया द० प० ) । दे०—आर । पर्या०—अहीर

द०—अरई । पर्या०—अरउआ ( पट० ४, भाग० १) । [ अर, आर, अराम ]

आरहा—(स०) सत्तू, अनाज आदि की बीस पले की नाप ( मु० १, भाग० १ ) । [ आढक (सस्क०), आढ (हि ]

आरा—(सं०)—(१) पहले जोती हुई रेखा को काटकर की गई दूसरी जुताई । पर्या०—आर (चपा०, द० भाग०), समार (उ० पू० म०), सम्हार (भाग० ) । (२) सीचन के निमित्त बनी नाली का गहरा आंतरिक भाग (उ० पू०) । पर्या०—पैन पैनि । दौंगर (द० म०, पट०, गया) नारी, करहा ( पट० गया ), भीता (पू० म०), दौंग(पट०, द० पू०) (३) गाड़ी के पहिये की पुटठी के बीच में जड़ी हुई लकड़ी का माटी और चौड़ी पटरी । (४) लोहे का बना, रेतकर लकड़ी चीरने का दाँतीदार हथियार (बिहा०, आज०) । (५) टेकुआ या सूआ, जिससे चमड़ा सीया जाता है । [अर, आर, आरा, आल, आलि, आलवाल]

आरा–३

आरा–४

आरि—(स०) खतों की सीमा, जो सामान्य भूमि से ऊँची उठी रहती है, मड । (बिहा०, भाग०) । दे०—आर । लोको— आरि जाई त कपार लाठी, बीच बगा चरवाही ।' यदि तुम आरि (मेड़) पर जाते हो तो अपने सिर की रक्षा के लिए लाठी रखो, (और तब) तुम बगा (कपास) के खेत के बीच अपने गाय चराओ । [अर, आर, आल, आलि, आलवाल ]

आरिछौंटल—(मुहा०) मेंड काटना या छांटना ( म० भाग० १ ) । दे०—गोहट । [आरि + छौंटल (देशी)]

आरी—(सं)—(१) खेतों की सीमा जो सामान्य भूमि से कुछ ऊंची उठी रहती है मेंड़ । दे०—आर । पर्या०—आरी (चपा० १ भाग० १) [ आर, आलि, आलवाल ] (२) लकड़ी चीरने का एक औजार, छोटा आरा । (चंपा०, पट० ४, भाग० १, आज०)। [आर + ई < आर]

आरीचास—(सं०) खेत के चारो ओर लम्ब गोल आकार की जुताई (गया, पट० ४) दे०—चौकेठा । [आरी + चास, आर + चास (देशी)]

आरू—(सं) एक प्रकार का प्रसिद्ध गोल कन्द, जिसकी तरकारी बनाई जाती है (पू० म०) । दे०—आलू । [आलू, आलू]

आल—(स०) सामान्य भूमि से ऊँची उठी हुई खेतों की सीमा, मड । (गया, द० मुं०) । दे — आर । [आल, आर, आलवाल, आलि]

आलू—(स०) एक प्रकार का गोल कंद, जिसकी तरकारी बनाई जाती है (बिहा० आज०) । पर्या०—आरू (पू० म०), अलुआ, अलुई (मं० उ०, भाग० १) । [आलु, आलू]

आलो—(स०) पूरी फसल के पकने के पहले ही खाने के लिए किसान द्वारा काटा गया अनाज (गया । [देशी]

आस—(स०) खाद (दर० १ पूर्णि०-१ । [आस (सस्कृ०)=राख, धूलि]

आसन—(सं०) एक प्रकार का वृक्ष (दर० १ पूर्णि० १) । [असन]

आसाचास—(सं०) जमींदार की ओर से किसान को चौथाई मालगुजारी या मालगुजारी के बिना परती जमीन देने की प्रणाली (चंपा०, प० म०) । दे०—सिल्ही [आसा + चास (देशी)]

आसिन—(स० / आश्विन, भारतीय वर्ष का सातवाँ और शरद् ऋतु का पहला मास (सितम्बर के अंत और अक्टूबर के आदि के प्राय १५ १५ दिन) । आश्विन की पूर्णिमा को प्राय अश्विनी नक्षत्र हुआ करता है, अत इस मास का नाम आश्विन पड़ा । ज्योतिष गणना के अनुसार कभी आश्विन से ही वर्ष का आरंभ किया जाता था, तब यह पहला मास था । [आश्विन < आश्विनी < अश्व + इन् (प्र०)]

आहर—(स )—(१) बाँध से घिरी हुई धान की उपजवाली, जलप्रवाह से युक्त, ऊँची समतल भूमि (ग० उ०, उ० प० भाग० १) । द-डहेड़ी । (२) दो पड़ावों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेड़ ( द० मुं० भाग० १) । दे०—साँवी [आहर, आघार] ।

आही—(सं०) पोर (पवर) के किनार की सोते-जसी गहरी जमीन। [देशी]

आठुल—(सं०) सूखा या पुआल से बनी फसल की राशि (पू० म०, भाग०-१)। दे०—मेंवासा। [देशी]

## इ

इँकड़ी—(सं०) अनाज में पाया जानेवाला छोटा छोटा कंकड़। दे०—अँकड़ी। [मिला—अंकुर]

इँकरी—(सं०) दे०—इँकड़ी।

इगुर—(सं०) कूटकर छिलका-रहित किया हुआ जौ। पर्या०—इगुरी। [देशी, मिला० - इगुर (=रंग) हिंगुल (संस्कृ०)]

इँगुरी—(सं०)—दे०—इँगुर। [देशी]।

इंच—(सं०) एक फुट का बारहवाँ हिस्सा (हरि०, री०)।

इँजर—(सं०) एक जंगली पेड़ (मुं० १, भाग० १) [इन्जल=जल प्रधान भूमि में उगनेवाला एक पौधा—मो० वि० डि०]

इँजोरिया—(सं०) शुक्ल पक्ष। महीने के कृष्णपक्ष के अतिरिक्त दूसरा पक्ष, जिसमें चन्द्रमा की कला प्रतिदिन बढ़ती है और रात उजली होती जाती है। (पट० १) दे०—इजोरिया। [इन्दुज्योतिष्, ज्योतिष्, ज्योतिर्]

इँदरा—(सं०) ईंट, पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ (पट० ४)। दे०—इनारा। [इन्द्रवाट, अप्पु, इरंपर < इरं = जल+पर=धारण करनेवाला, कुआँ]।

इँदारा—(सं०) ईंट पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ। दे०—इनारा। [अप्पु, इन्द्रवाट, इरंपर]।

इकड़ी—(सं०) (१) सरकंडे की तरह की एक घास, जो टट्टी आदि बाँधने के काम में आती है। (चंपा० १) पर्या०—इंकड़ (पट० ४)। (२) अनाज में मिलनेवाला छोटा कंकड़। दे०—इँकड़ी। इकट, इत्कट=एक प्रकार का सरकंडा (मो० वि० डि०)।

इकरी—(सं०)-(१) एक प्रकार का घास। (२) घास की पत्तियों का अवशेष (द० मुं०, रा०)। दे०—खोखो। [इकट, इत्कट=एक प्रकार का सरकंडा]—(मो० वि० डि०)]

इकर—(सं०) दे०—इकरी।

इजाफा—(सं०) लगान में की गई वृद्धि (शा० १, पट० ४, भा० १)। [इज़ाफ़ा (अ०)]

इजमाल लगान—(सं०) अनेक भूस्वामियों की सम्मिलित मालगुजारी (शा० १)। [इजमाल+लगान (फा०)]

इजारा—(सं०) ठेके पर लिया गया ठीका। (पट० ४ भाग० १)। पर्या०—जरपेशगी ठीका। [इजारा (फा०)]

इजोरिया—(सं०) शुक्ल पक्ष (दर० १-पूर्णि०, १)। दे०—इँजोरिया। [इजोरिया < इन्दुज्योतिर्, < ज्योतिर्]

इतर बेल—(सं०) एक लता विशेष (चंपा० १, दर० १, पूर्णि०-१)। [इन्द्रवल्ली]।

इनाम—(सं०) (१) ऊँची जाति के कारकुनों को भूमिकर से मुक्ति (पट०)। दे०—माफी। [इन+आम (अ०)] (२) प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिलने पर अधिकृत कर-मुक्त भूमि। दे०—नरोदगी। [इन+आम (अ०)] (३) पुलिस-अधिकारियों, मैजिस्ट्रेटों के अर्दलियों या कांस्टेबुलों को या किसी दूसरे बड़े सरकारी नौकर के द्वारा भी काम अच्छा करने, शिकार खेलने या किसी विशेष अवसर पर माँगा गया या दिया गया पुरस्कार (प-मं०, भाग० १)। दे०—सलामी। [इन+आम (अ०)]

इनायत—(सं०) प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिलने पर अधिकृत कर-मुक्त भूमि। दे०—इनाम, तरोत्री। [इना+आयत (अ०)]।

इनार—(सं०) ईंट-पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ। (चंपा० १ पट० ४ भाग० १)। दे०—इनारा। [मिला० इन्द्रवाट इरंपर (=इरा + पर = जलधर), अप्पु, <० इन्द्रागार (—शु० कु० च०)—नेपा०]

इनारा—(सं०) ईंट पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ (शि० भाग०)। पर्या०-इदारा, इनार (चंपा०), इँदरा (पट० १ भाग० १)। [इन्द्रवाट, इरंपर (इरा+पर=जलधर) अप्पु, <० इन्द्रागार (—शु० कु० च०)-नेपा०]।

इंद्रकमल—(सं०) एक प्रकार का दूब (दर० १)। [इन्द्रकमल]

इमली—(स०) एक प्रकार की खट्टी फली, जो लंबी होती है। इसका पेड़ बड़ा होता है, पत्तियाँ छोटी छोटी होती हैं, किंतु लकड़ी बड़ी मजबूत होती है। [*अम्लिका*, (संस्कृ०), *अंबिलिया* (प्रा०) *इमली* (हि०), *इम्लि* (ने०), *इम्मली* (प०), *आमिड़ी* (सिं०), *आमली* (गु०) *आँवली* (म०) *अंबिल्ल* (सिंहा०)]

इमली के चाई—(स०) इमली की एक गिरह (पट० १)। [*इमली* के+*चाई*]

इमिरती—(स०)(१) एक प्रकार का क्षारयुक्त फल, जिसकी रसदार तरकारी बनती है। पर्या०—रमचरना (गया)। (२) एक प्रकार की मिठाई जो जलेबी के आकार की होती है। [*अमृत*]

इलाम—(स०) दे०—इनाम। [*इनाम* (अ०)]

इलाही गज—(स०) अकबर के समय की राष्ट्रीय नाप जो ३३¾ इंच की होती थी। [*इलाही*+*गज* (अ०)]

इस्तमरारी—(स०) निश्चित कर (राजस्व) की शर्त पर भूमि जोतनवाला असामी। टि०—मौरूसी और इस्तमरारी में भेद करना प्राय कठिन होता है। इस भेद को न तो जमींदार ही समझता है और न काश्तकार ही। [अ०]

इस्तमरारी बंदोबस्त—(स०) भूमि के इस्तमरारी बंदोबस्त करने की प्रक्रिया [*इस्तमरारी*+*बन्दोबस्त* (फा०)]

## ई

ईंकर—(स०) पान की लता का आधार-स्तम्भ, जो प्रधान कोरा के बीच में छह छह पड़ते हैं (शाहा०, पट० ४)। दे०—सरई। [इक्कड़, इत्कट। दे०—इकर।]

ईंट—(स०) साँचे में ढाला और आग में पकाया हुआ मिट्टी का चतुष्कोण, लंबा, मोटा, मकान बनाने का साधन विशेष (ग० ब०)। दे०—इटा पर्या०—ईंटा (पट० ४, भाग० १, चपा०)। [इष्टका (संस्कृ०) >इट्ठका (प्रा०) > इट्ठआ (प्रा०) >इट्ठा>ईटा, ईंटा>ईंट]।

ईंटा—(सं०) दे०—ईंट। पर्या०—ईंट, इंटा (ग० ब०), ऐंटा (पट०, गया, द० मुं०)। लोको०—"मन में आन, बगल में ईंटा।" —ऊपर से मीठी बातें और सद्व्यवहार करना, पर भीतर-ही भीतर आघात पहुँचाने की तयारी। [इष्टका (संस्कृ०) >इट्ठका (प्रा०) >इट्ठआ (प्रा०) >इट्ठा>ईटा, ईंटा>ईंट]

ईकर—(स०)—(पट० ४)। दे०—इकड़ी-१।

ईनार—(स०)—(चपा० १)। दे०—इनारा।

ईस—(स०)—(१) हल में लगी लम्बी लकड़ी, जिसमें जुआ या पालो जुड़ा रहता है। पर्या०—हरीस (पट० ४, द० मुं० १, भाग०-१)। (२) एक जंगली लकड़ी। [ईषा (संस्कृ०), ईसा (प्रा०)]

ईस

## उ

उकटनी—(सं०) बीज बोने के पहले खेत के पुराने पौधों की जड़ या घास आदि को उखाड़ कर बाहर निकाल फेंकने की प्रक्रिया। (चपा०, पट० ४)। पर्या०—तामना (पट० ४)। [उकटन+ई< *उत्कर्षण]

उकटल—(क्रि०) कटे हुए अनाज के पौधों को दौनी के समय उलट पलट करना (पट० ४, भाग० ५ मुं० २)। दे०—कउरल। (वि०) उलट-पलट की हुई वस्तु। [उकट+ल (प्र०) उत्+कृत्, उत्+कृष्]।

उकठल—(क्रि०) पेड़-पौधों का सूखना (शाहा० १)। (वि०) सूखा हुआ पेड़-पौधा। [उकठ+ल (प्र०) < *उत्काष्ठ, अवकृष्ट]।

उकठा—(सं०)—(१) अधिक वर्षा के कारण मरा हुआ चना या कोई दूसरी फसल (द०-प० शाहा०)। दे०—मराइल। (२) गहूँ में लगा पालो का रोग जो अनाज को सुखा देता है (ब०)। पर्या०—उकड़ा, उखरा (भाग०-१), उकसा। [अवकृष्ट *>उकट्ठ, उकट्ठ (प्रा०)> उकठ, उकठ>उकठा, उकड़ा]

उकद्‌ल—(क्रि०)—(१) किसी पेड़ या पौधा का एक प्रकार के कीड़ा लगने के कारण सूख जाना

आही—(सं०) चौर (घवर) के किनार की सोते-जसी गहरी जमीन। [देशी]

आहुल (सं०) मूठा या पूला स बड़ी फसल की राशि (पू० म०, भाग०-१)। दे —अँवांसा। [देशी]

## इ

इँकड़ी—(सं०) अनाज में पाया जानेवाला छोटा छोटा कंकड़। दे०—अँकड़ी। [मिला—अंकुर]

इँकरी—(सं०) दे०—इँकड़ी।

इगुर—(सं०) भूटकर छिलका रहित किया हुआ जौ। पर्या०—इगुरी। [देशी, मिला० - इगुर (=रंग), हिंगुल (संस्कृ०)]

इँगुरी—(सं०)—दे०—इंगुर। [देशी]।

इच—(सं०) एक फुट का बारहवाँ हिस्सा (हरि०, रो०)।

इँजर—(सं०) एक जंगली पेड़ (मुं० १, भाग० १) [इन्जल=जल प्रधान भूमि में उगनेवाला एक पौधा—मो० वि० हि०]

इँजोरिया—(सं०) शुक्ल पक्ष। महीने का कृष्णपक्ष के अतिरिक्त दूसरा पक्ष, जिसमें चन्द्रमा की कला प्रतिदिन बढ़ती है और रात उजली होती जाती है। (पट० १) दे०—इजोरिया। [इन्दुज्योतिप्, पयोतिप्; ज्योतिर्]

इँदरा—(सं०) ईंट, पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ (पट० ४)। दे०—इनारा। [इन्द्रगाट, प्रा०, इरंधर < इरं = जल+धर=धारण करनेवाला, कुआँ]।

इँदारा—(सं०) ईंट पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ। दे०-इनारा। [प्रा०, इन्द्रगाट, इरधर]।

इकड़ी—(सं०) (१) सरकंडे की तरह की एक घास, जो टट्टी आदि बाँधने के काम में आती है। (चपा० १) पर्या०—इकर (पट० ४)। (२) अनाज में मिलनेवाला छोटा कंकड़। दे०—इँकड़ी। इक्कट, इत्कट=एक प्रकार का सर कंडा (मो० वि० हि०)।

इकरी—(सं०)-(१) एक प्रकार की घास। (२) घास की पत्तियों का बना हुआ (द० पू०, सा०)। दे०—[illegible]। [इक्कट, इत्कट=एक प्रकार का सरकण्डा]—(मो० वि० हि०)]

इकर—(सं०) दे०—इकड़ी।

इजाफा—(सं०) लगान में की गई वृद्धि (सा० १, पट० ४, भा० १)। [इजाफा (अ०)]

इजमाल लगान—(सं०) मनक मुस्तानियों की सम्मिलित मालगुजारी (सा० १)। [इजमाल+लगान (फा०)]

इजारा—(सं०) बंधक पर लिया गया ठीका। (पट० ४ भाग० १)। पर्या०—जरपेशगी ठीका। [इजारा (फा०)]

इजोड़िया—(सं०) शुक्लपक्ष (दर० १-पूनि०, १)। दे०—इँजोरिया। [इजोड़िया<इन्दुज्योतिर्, <ज्योतिर्]

इनर बेल—(सं०) एक लता-विशेष (चपा० १, दर० १, पूनि०-१)। [इन्द्रवल्ली]।

इनाम—(सं०) (१) ऊँची श्रेणी के कारगुजारों की भूमिकर से मुक्ति (पट०)। दे०—माफी। [इन+आम (अ०) [ (२) प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिलने पर अधिकृत कर-मुक्त भूमि। दे०—तरौन्नी। [इन+आम (अ०)] (३) पुलिस अधिकारियों, मजिस्ट्रेटों के बड़े सिपाहियों या कांस्टेबलों को या किसी दूसरे बड़े सरकारी अफसर के द्वारा भी ग्राम प्रवेश करने, निविर डालने या किसी विशेष अवसर पर माँगा गया या दिया गया पुरस्कार (प-म० भाग० १)। दे०—सलामी। [इन+आम (अ०)]

इनामत—(सं०) प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिलने पर अधिकृत कर मुक्त भूमि। दे०—इनाम, तरौन्नी। [इन+आमत (अ०)]।

इनार—(सं०) ईंट-पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ। (चपा० १, पट० ४, भाग० १)। दे०—इनारा। [मिला० - इन्द्रगाट इरधर (=इरा + धर = जलधर), प्रा०, < इन्द्रागार (—मु० कु० च०)—नेरा०]

इनारा—(सं०) ईंट पत्थर से बनाया हुआ बड़ा कुआँ (बिहा०, मात्र०)। पर्या०-इँदारा, इनार (चंपा०), इंदरा (पट० १, भाग० १)। [इन्द्रगाट, इरंधर (इरा+धर=जलधर) प्रा० < इन्द्रागार (—मु० कु० च०)—नेरा०]।

इन्दरमल—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर० १)। [इन्दुरमल]

उखाँव, उखारी—(स०) ऊख रोपने का खेत (प०)। पर्या०—ऊख के खेत, केतारी के खेत (अन्यत्र, भाग० १)।

टि०—ऊख की खेती के लिए बड़ी मेहनत और सावधानी की आवश्यकता होती है इसलिए कहा जाता है—"तीन पटावन तेरह कोड़न" ऊख के पौधों को तीन बार पटाना और तेरह बार कोड़ना चाहिए। [उख+आँव<ठाँव<स्थान्, मिला०-एत्त्वीन]

उखाड़ल—(क्रि०) (१) किसी गड़ी हुई चीज को जमीन से निकालना (चपा० १)। (वि०)-(२) कोई गड़ी हुई चीज, जो उखाड़ ली गई हो। [उखाड़+ल<उत्खात, मिला०—उखाड़ना (हिं० प०, ल०), उखड़ना (हिं० प०, ल०) उखेल्नु (न०), उखाड़नु (सिं०), उखाड़ बुँ (गु०), उखाड़ने (मरा०), सभ०<*उक्खिड, उक्खड (म० भा०), उक्खलिया (प्रा०) सभ०-<*उत+स्कृत (संस्कृ०)-नेपा०]

उखारी, उखाँव—(स०)-(१)—(प०) दे०—उखाँव। (२) वह खेत, जिसमें ऊख हो (शाहा०)। [उख + आरी < इक्षु + केदार]

उखाव—(स०) ऊख के लिए तैयार किया हुआ खेत। (पट०-४, आज०)। दे०—उखाँव। [उख+आव<इक्षु+वप्र या आव<ठाँव<ठाँव<स्थान्, स्थाम]

उखेड़ा—(स०)-(१) ऊख का छोटा पौधा, जो उखाड़कर बाहर कर दिया जाता है (पट० ४)। (२) ऊख का छोटा पौधा, जो पानी के बिना सूखने लगता है (मग० ५, मुं० १)। लोको०—धान पान उखेरा, तीनों पानी के चेरा"—घाघ।-धान, पान और ऊख-इन तीनों को पानी बहुत चाहिए। [ऊख+एरा (प्रत्या० प्र०), ऊख<इक्षु]

उखेपी—(स०) बिना चरवाह का ढोर (मुं०-१)। [उत्क्षेप्य]

उखेया—(स०)-(पट० ४)। दे०—उसड़ा।

उखेल—(स०) वर्षा समाप्त होना (पु० भाग०-१)। मुहा०—उखल करल—पानी का पड़ना बंद हो जाना। [उखे+ल (प्र०) <अवक्षर (?)]

उखेता—(स०) खेत से निचली सतह में पानी के रहने पर उसे ऊपर प्रवाहित करके सिंचाई करने की प्रक्रिया (द०-पू०, भाग० १)। दे०—उदह के पानी ले जाएल। [उत्क्षेपित]

उखैनी—(स०) खलिहान में फसल की दौनी के समय पुआल तथा डंठल आदि हटाने के काम के लिए बनी हुई एक लग्गी, जिसके अंतिम छोर पर लोहे का काँटा देकर या बाँस की पतली शाखा (कनछी) छोड़कर एक टेढ़ी पतली नोक बनाई जाती है। (द० भाग०)। दे०—अखना। [उत्खनन्, उत्क्षेपणी, अक्षाणी]

उखौता—(सं०) वह धुरी, जिसपर ढेंकी काम करती है (गया)। दे०—मखौता। [अक्षवत्]

उगरवाह—(स०) रखवाला (दर० १, पूर्णि० १)। दे०-अगोरनिहार, अगारिया। [उगर+वाह]

उगरवाहि—(स०) रखवाली (दर० १, पूर्णि -१)। [उगर+वाह+इ]

उगल—(क्रि०) (१) उगना, पौधों का जमना। (२) सूर्य का उदय होना। (वि०) उगा हुआ। पर्या०—जनमल। [उग+ल (प्र०) <उग<*उद्ग्, उद्गम (संस्कृ०) उगना (हिं०)]

उगावल—(क्रि०) उगल क्रि० का प्र०। उगाना पौधों का उगाना। [उग+आवल (प्र०)<*उद्ग्, उद्गम (संस्कृ०)]

उगाहल—(क्रि०) चंदा आदि की निश्चित रकम को माँगना या इकट्ठा करना उगाहना (चपा० १, पट०-४)। (वि०) उगाहा हुई वस्तु। [उगाह+ल<* *अवग्राह, *उद्+ग्राह। <*उद्घातयति, उद्घाटनम्—उग्घाडइ (प्रा०) उघाउनु (न०) उघाई (कुमा०), उगाहना (हिं०) उगाहणा (प०) <*उद्ग्राहयति, उग्गाहइ (प्रा०), < * उद्गृत्, उग्गृते (संस्कृ०) <* उद्गारयति, <उद्घाट्, उद्घाटित, <*उद्घारयति—नेपा०]

उघेन—(स०) किसी बर्तन में बाँधकर कुआँ से पानी खींचनेवाली रस्सी (उ० पू० म०)। दे०—उबहन। पर्या०—उभेन (भाग०-१)। [उद्वहन]

उचका—(सं०) टूटा दीवार छप्पर छाजा आदि के सहारे के लिए लगाया गया खंभा (द० पू० म०)

उखाँव, उखारी—(सं०) ऊख रोपन का खेत (प०)। पर्या०—उख के खेत, केतारी के खेत (अन्यत्र, भाग० १)।
टि०—ऊख की खेती के लिए बड़ी मेहनत और सावधानी की आवश्यकता होती है इसलिए कहा जाता है—"तीन पटावन तेरह कोड़न ऊख के पौधों को तीन बार पटाना और तेरह बार कोड़ना चाहिए। [उख+आँव< ठाँव< स्थान, मिला०-एद्वीन]
उखाड़ल—(क्रि०) (१) किसी गड़ी हुई चीज को जमीन से निकालना (चपा० १)। (वि०) (२) कोई गड़ी हुई चीज, जो उखाड़ ली गई हो। [उखाड+ल< उत्खात, मिला०—उखाड़ना (हि० प०, ल०), उखड़ना (हि० प०, ल०) उखेल्नु (न०), उखाड़नु (सि०), उखाड़ वुँ (गु०), उखाड़ने (मरा०), सम०< *उक्खिड़, उक्खड (म० प्रा०), उक्खलिया (प्रा०) सम०-< *उत्+स्कृत (सस्कृ०)-नेपा०]
उखारी उखाँव—(सं०)-(१)—(प०) दे०—उखाँव। (२) वह खेत, जिसमें ऊख हो (शाहा०)। [उख+आरी< इक्षु+केदार]
उखाव—(सं०) ऊख के लिए तैयार किया हुआ खेत। (पट०-४, आज०)। दे०—उखाँव। [उख+आव< इक्षु+वप्र या आव< ठाँव< ठाँ< स्थान, स्थाम]
उखेड़ा—(सं०)-(१) ऊख का छोटा पौधा, जो उखाड़कर बाहर कर दिया जाता है (पट०-४)। (२) ऊख का छोटा पौधा, जो पानी के बिना सूखने लगता है (मग० ५, मुं० १)। लोको०—"धान पान उखेरा, तीनों पानी के चेरा"—धान।—धान, पान और ऊख—इन तीनों को पानी बहुत चाहिए। [उख+एरा (अल्पा० प्र०), ऊख< इक्षु]
उखेपी—(सं०) बिना चरवाह का ढोर (मु०-१)। [उत्क्षेप्य]
उखेरा—(सं०)-(पट० ४)। दे०—उखेड़ा।
उखेल—(सं०) वर्षा समाप्त होना (मु० भाग०-१)। मुहा०—उखल करल—पानी का पड़ना बंद हो जाना। [उखे+ल (प्र०)< अवक्षर (?)]
उखेता—(सं०) खेत से निचली सतह में पानी के रहने पर उस ऊपर प्रवाहित करके सिंचाई करने की प्रक्रिया (द० पू०, भाग० १)। दे०—उदह के पानी ले जाएल। [उत्क्षेपित]
उखैनी—(सं०) खलिहान में फसल की दौनी के समय पुआल तथा डंठल आदि हटाने के काम के लिए बनी हुई एक लग्गी, जिसके अंतिम छोर पर लोहे का काँटा देकर या बाँस की पतली शाखा (कनछी) छोड़कर एक टेढ़ी पतली नोक बनाई जाती है। (द० भाग०)। दे०—अखैना। [उत्खनन, उत्क्षेपणी, अक्षाणी]
उखौता—(सं०) वह धुरी, जिसपर ढेंकी काम करती है (गया)। दे०—अखौता। [अक्षवत्]
उगरवाह—(सं०) रखवाला (दर० १, पूर्णि० १)। दे०-अगोरनिहार, अगोरिया। [उगर+वाह]
उगरवाहि—(सं०) रखवाली (दर० १, पूर्णि १)। [उगर+वाह+इ]
उगल—(क्रि०) (१) उगना, पौधों का जमना। (२) सूर्य का उदय होना। (वि०) उगा हुआ। पर्या०—जनमल। [उग+ल (प्र०) < उग< *उद्ग, उद्गम (सस्कृ०) उगना (हि०)]
उगावल—(क्रि०) उगल क्रि० का प्र०। उगाना, पौधों का उगाना। [उग+आवल (प्र०)< *उद्ग, उद्गम (सस्कृ०)]
उगाहल—(क्रि०) चंदा आदि की निश्चित रकम को माँगना या इकट्ठा करना, उगाहना (चंपा० १, पट०-४)। (वि०) उगाही हुई वस्तु। [उगाह+ल< * *अवग्राह, *उद्+ग्राह। < *उद्घातयति, उद्घाटनम्—उग्घाअ (प्रा०), उघाउनु (न०) उघाई (कुमा०), उगाहना (हि०) उगाहणा (प०) < *उद्ग्राहयति, उग्गाहइ (प्रा०), < * उद्गृत्, उग्गुरते (सस्कृ०) < * उद्गारयति, < उद्घाट्, उद्घाटित, < *उद्घारयति—नेपा०]
उघेन—(सं०) किसी बर्तन में बाँधकर कुआँ से पानी खींचनेवाली रस्सी (उ० पू० म०)। दे०—उबहन। पर्या०—उभैन (भाग०-१)। [उद्वहन]
उचका—(सं०) टूटी दीवार, छप्पर, शाखा आदि के सहारे के लिए लगाया गया खंभा (द० पू० म०)

[उजर+ल ( वि० प्र० ) उद्+√ज 'वयो हानौ"। <*उज्जट<उद्+जटा (सस्क )- नेपा०]

उजरा—(स०)-(१) वह पशु, जो किसी देखभाल व विना चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (द० भाग०, भाग० १)। दे०-अनरिया। (२) विना चरवाहे का ढोर (द० मु०)। (३) दूसरे की फसल चरनेवाला पशु (मुं० १)। (वि०) [उजला+जरा< उद्रज्जु]

उजराधान—(स०) एक धान विशेष, जो उजला और लवा होता है। (पट० १) [उजरा+धान <उज्ज्वलक+धान्य]

उजागर-(सं०) एक प्रकार का धान, जो फाल्गुन चत में बोया जाता है और अगहन में काटा जाता है, (प्राय० मं० उ०)। पर्या०—जागर (सा०, उ० पू० म०)। [उ+जागर< उज्जागर= अच्छा जमने वाला, ऊपर उठने वाला]

उजाड़—(सं०) (१) उजड़ा हुआ गाँव। (२) उजड़ा हुआ स्थान। दे०—दमका। (३) छुट्टा पशु, फसल विहीन खेत। [उजड़ना (हिं०) उद्+√ज (=वयोहानौ) >उज्जर, उज्जार]

उजारल—( क्रि० ) किसी पौधे को उखाड़ना, उजरल क्रिया की प्र० क्रि०। ( चपा० १ भाग १)। (वि०)-उजाडा हुआ पौधा। [उजार+ ल (क्रि० प्र०) उद्+√ज (=वयोहानौ)> उज्जर, उज्जार। <*उज्जाटयति, मिला०- जटा (सस्क०)=मूल, ठज्जाडेइ, ( प्रा० ), उजाडयो (कुमा०), उजारिब ( असo ) उजारिवा (ओ०) उजाडना (हिं०, पं०), उजाडणु (ल०), उजानु (ने०), उजाडनु (सि०) उजाडवुँ (गु०)]

उजाह-(स०) आषाढ़ में प्रथम प्रथम काफी वर्षा होन पर मछलियों का सामूहिक रूप से बाहर निकलना (चपा० १)। [उ+जाह<*उदाज <उद्+√अज्=बाहर निकलना]

उज्झा—(सं०) वह पशु जो बिना किसी देखभाल के चरने के लिए छोड दिया जाता है (द० मुं०)। दे०—अनरिया। [उज्झित]

उझकुन—(सं०) किसी बर्तन के नीचे, उसकी सतह को बराबर करन के लिए प्रयुक्त लकडी आदि का टुकडा (चपा० १)। पर्या०-उचकुन (भाग०-१)। [उझक+कुन<उच्चक्करण]

उझलन— स०)-(१, प्राय माघ महीने में की जानेवाली ऊख की पहली कोडनी (कोड़ाई) (गया, प०)। दे०—अँधरी कोरन। (२) छिछली कोडाई करके अनाज के खेतो से घास आदि की की जानेवाली सफाई (गया, शाहा०)। [देशी]

उझिलल—(क्रि०) किसी बरतन से अनाज आदि का बाहर निकालना। (वि०) वह अन्न, जो किसी बर्तन से नीचे रख दिया गया हो (चपा० १, पट० ४, भाग० १)। [उझिल+ ल (प्र०) उज्झल्करण (हिं० श० सा०), <*उद्गिर <उद्+√गृ (निगरणे), उद्धरण<उद्+हृ]

उटकनी—(सं०) (१) चिउरा कूटते समय ऊखल में उसे उलट पलट करने की लकडी (पट० ४)। पर्या०-खोइला (पट० ४, चपा० १), ठोकरा (भाग० १)। (२) बोरसी उटकनो की आग उलट पलट करने की लकडी (द० मुं०, पट० ५)। [उटक्क+ई। मिला०-√उठ "उपघाते=ठोकर देना, उटक्ना]

उटकल—(क्रि०) दे०—उघटल। (वि०) उटकी हुई वस्तु।

उटरा—(स०) (१) मटर, चना, जौ, गहूँ या कोई अन्य दो या तीन मिले हुए अनाज, जो एक ही साथ बोये गये हों (पट०)। पर्या०— उटेरा (पट० ४) उटेर (शाहा०)। (२) बलगाडी के आगे सगुन के नीचे लगी हुई एक मजबूत खूटी, जिससे वह जमीन पर न गिरने पाती है। [देशी]

उटेर—(स०)-(१) दे० उटरा। (२) जौ-गहूँ के साथ एक दो करके बोया जानवाला मटर या चना (शाहा०)। मुहा०-उटेर बोअल-उटर का बोना। उटेर उखाड़ल—उटेर का उखाडना। उटेर कबाड़ल—उटेर का उखाड़ना।

उटेरा—(सं०) दे०—उटरा (पट० ४, भाग० १)।

उट्टा—(सं०) बिना अगाऊ मजदूरी लिए

उतराखाढ—(स०) इक्कीसवां नक्षत्र, उत्तराषाढ़ यह पूस महीने में पड़ता है। [ उत्तराषाढ़ ]

उतरा फगुनी—( स० ) बारहवां नक्षत्र, उत्तर फाल्गुनी यह प्राय भादो के शुक्लपक्ष में पड़ता है। [ उतरा+फगुनी< *उत्तर+फाल्गुनी ]

उतान-(वि०) उत्तान, उलटना। उतान होअल (मुहा०)-उलट जाना चित हो जाना। [उत्तान]

उतारल—(क्रि०) उतरल क्रि० का प्र०। उतारना, गाड़ी का जूआ या हल का पालो बैल के कंधे से उतारना। [ उतार+ल प्र० )< *उत्तार< उत्+√तॄ, (संस्कृ०) उतारना (हिं०), उतार्नु (ने०) उताड़ना (पं०) उतार्यु (गु०), उतार्णे (मरा०)]

उतेर—(स०)—(१) मटर का हरा और कोमल छीमीदार पौधा, जो खेत से उखाड़ लिया जाता है (सा० १)। (२) मवेशियों के खाने के लिए रखी हुई या निकाली हुई फसल या घास (शाहा० १)। (३) कमजोर पौधा, जो खेत से निकाल दिया जाता है। [उ+तेर< *अनतीर्य, अवतर]

उत्तर भाद्रपद—( स० ) छब्बीसवां नक्षत्र, उत्तर भाद्रपद यह फाल्गुन कृष्ण में पड़ता है। [ उत्तर+भाद्रपद ]

उथर—(वि०) छिछला (पट० ४ भाग० १) दे०—उथल। [ उ+थर< *उत्थल, उत्तल ]

उथल—(वि०) कम गहरा, छिछला (चपा० १)। पर्या०—उथर (पट ४ भाग० १)। [उथल < *उत्थल, उत्तल ]

उदगर—(स०) वह पशु जो बिना किसी देखभाल के चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (पट०)। दे० —अनरिया। पर्या०—उदाम (भाग० १)। [ < *उदर्गल=बँधन से निकला हुआ ]

उदत--(स०) वह मवेशी जिसके दूध के दांत अभी नहीं टूटे हों ( पट० ४ चपा० १, आज०)। पर्या०—अदत (पू० भाग० १)।

"उदत बरदे अदन्त बिआय
आप जाय या खसम खाय। —घाघ।
यदि मवेशी अदत ही बरधाय (गामिन हो) और बच्चा दे तो वह या तो स्वयं मरे या स्वामी का नाश करे।

[उ+दन्त< *अ+दन्त]

उदह के पानी ले जाएल—(मुहा०) खेत की सतह से नीचे पानी रहने पर उसे ऊपर पहुँचाकर सिंचाई करना। उक्त प्रकार की सिंचाई की प्रक्रिया ( पट० ४, सा०-१ ) पर्या०-उरैया (द०-पू०)। [उदह< *उद्वाह]

उदाम—(स०) वह पशु जो बिना किसी देखभाल के ही चरने के लिए छोड़ दिया जाता है (भाग० १)। दे०—अनरिया। [< *उद्दाम < उद्+दाम=बंधन रहित]

उद्राछ—(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध वृक्ष का बीज। (२) उस बीज की माला (पट० ४)। [रुद्राक्ष]

उधार—(स०) वह रकम जो चुका देने के वादे पर ली गई हो (पट ४, चपा० १, भाग० १)। [उद्+हार = उद्धार* >उधार]

उघेरल—(क्रि०) किसी कंद आदि को हाथ से खोदना (चपा० १)। (वि०)—हाथ से खोदी हुई वस्तु। [उघे+रल (क्रि० प्र०)< उद्+√हृ]

उनटा चिरचिरी—(स०) एक प्रकार की घास, जो पशुओं के चारे के काम आती है (पू० म०, गया, पट० ४, भाग० १)। [उनटा< उलटा < *उल्लट। चिरचिरी (=अपामार्ग)]

उनवल—(क्रि०) घिर आना (खासकर घटा का—घिरना) (चपा०)। [उनव+ल (क्रि० प्र ) < *उन्नम< उद्+√नम्=झुकना]

उनहल-(वि०) लकड़ी की वस्तुओं या कुदाल, हल जैसी चीजों का किसी कारण टेढ़ा मेढ़ा होना या उभर जाना। [< *उन्नद्ध, उन्नद्ध]

उनवाहा—(सं०) खेत जोतने के समय किसी आदमी के एवज में किसी दूसरे आदमी का काम करना ( सा० १ )। [< *अन्वावाह< अनु+आ+√वह्+अ (=घञ)]

उनाह—(स०)-(१) धान की खेती में धान बोने के पश्चात घास पात आदि की सफाई करने और बीज को नीचे दबाने के लिए पुनः की जानेवाली हल्की सी जुताई (उ० पू०, उ०-पू० म०, भाग०-१)। पर्या०-गजर (उ०-पू०म०), समाह ( पट० ), बिदाह ( गया ), बिदाह (प०, पट०, गया), बिदहनी (चपा०, द० पू०)। उवाहना, उनाहीन, उनाहना (दर० १, भाग० १)। [ उन+आह< उन+वाह< अनु ( पीछे ) +वाह ] (२) किसी रोग से मुक्त होने के लिए भाफ लेना

उबहनी—(स०)। दे०—उबहन। [<*उद्वहन]

उबहैन—(स०)—(द० भाग०)। दे०—उबहन।

उबिछल—(क्रि०) हाथ की अंजलि या किसी ढक्कने आदि से पानी उलीच कर खत पटाना (चपा० १, पट० ४)। दे०—उपछल। [उबिछल <उपछल< उप्पोच्छल (प्रा०) <*उत्प्रोत्क्षण (सस्कृ०)]

उबेर—(स०)—(१) वह खत या मदान, जहाँ गाएँ चराई जाती ह (गाहा०)। दे०—चराई। [<*उद्वृत<उद्+√वृ (?)] (२) वर्षा बंद हो जाना (दर०, चपा० १)। [<*उद्वार, <*उद्वेल (?)] (३) फसल कटने के बाद वे खत जहाँ गाए आदि चरती ह। [उदवृत]

उबेरा—(स०) वह खत या मदान, जहाँ गाएँ चराई जाती ह (द० मु०)। दे०—चराई। [<*उद्वृत<उद्+√वृ]

उभर-खाभर—(स०) ऊँची-नीची जमीन (उ० प०, द० पू० म०, भाग० १)। पर्या०—मटहा (उ० प० म०), डाबर (चपा०, उ० पू०म०), उबर-खाबर (पट०, गया, द० मु० सा०), ऊँचखाल (पट० चपा प०), ऊगर खाबड़ (गाहा०) उचली (द० भाग०)। [उद्भर+खात, उपरि+खात अथवा उभर का अनु०]

उभैन—(सं०) कुआँ स पानी निकालन की डोरी (मुं० १, भाग० १)। दे०—उबहन। पर्या०—उनहन (पट० ४)। [<*उद्वहन]

उमकल—(क्रि०) किसी वस्तु का उमग में आकर उछलना-कूदना। उत्तजित होना। जोश में आना (मुं० १ चपा, पट० ४)। [<*उद्+√मक=चलना>उन्मकन, उमक्नु (ने) <*उक्रम, <*उत्क्रमयति (?) मिला० क्राम्यति, उत्क्रामति (सस्कृ०) उक्कामति (पा०), उक्कमई (प्रा०)—नेपा०]

उम्मी—(सं०) होरहा बनाने के लिए मटर की काटी हुई हरी बाल (प०, म०)। पर्या०—ऊमी उनी (चपा०)। टि०—जौ और गहूँ की बाल को आग में भूनकर भा उम्मी बनाई जाती ह (गाहा०)। [<*उलमुक (सस्कृ०), उम्मुअ (प्रा०) मि०—उम्मत्थिअ (प्रा०) = दग्ध, जला हुआ]

उरकुस्सी—(स०)—(१) एक पराश्रित घास, जो पोस्ते आदि फसल को हानि पहुँचाती ह (द० पू० वि)। पर्या०—निछौतिया, विछवतिया, भरभौंड़ (द० प० गाहा०), ठोकरा (गाहा०, चपा०)। (२) एक प्रकार का पौधा, जिसकी पत्तियों के लगने पर जोरो से खुजलाहट होती ह (मुं० १ चंपा० म०, भाग० १)। मुहा०—उरकुस्सी लगल =व्याकुल होना, स्थिर न रहना। [कलाछ (हि०) अलाकुशी, आलकुशी (बं०) <*अलिशूक (सस्कृ०)]

उरदी—(स०) एक प्रकार का दलहन, जो स्लेटी रग का, छोटा और बीच में उजली सी पतली रेखा लिये होता ह। इसकी दाल पकने पर चिकनी होती ह। दे०—उरिद। [ऋद्ध (?), उडिद (देशी)—'उडिदो माप धान्यम्—दे० ना० मा०]

उरिद—(स०) द०—उरदी। पर्या०—कलाई, फराई, कलाय (भाग०-१), मास कराई (पू० म०), उरीद (दर० १, पूर्णि० १, भाग० १)। [<*ऋद्ध, (?) उडिद (देशी) उडिदो मापधान्यम्—दे० ना० मा०। माष (सस्कृ०), मास (पा०, प्रा०), माट (प०), उडद, ठडिद (हिं०), मापकलाय (बं०), उडिद (मरा०) उडद, ऊडद (गु०), ठरिदु, उरदु (सि०)]

उलटल—(क्रि०) उलटना गाडी आदि का उलट जाना। [उलट+ल (प्र०) <*उल्लट, √उल्लट्यते। वुल्टानु (कश्म०) ओलटिन (असo) टलटा (प०) उल्टिवा (ओ०), उलटना (हि०), उलटनु (ने०) उलटणा (पं०) उलटणे (मरा०) उलटर्वुं (गु०)—नेपा०]

उलटावल—(क्रि०)-उलटल प्रे० रू। प्र०। उलटाना।

उलटा सरसों—(स०) वह सरसों जिसकी फली ऊपर की ओर उठी न होकर नाचे की ओर झुकी होती ह (प्राय सवत्र)। [उलटी+सरसों <*उल्लट+सर्षप]

उलरुआ—(स०) गाडी का पीछ की ओर गिरने स बचाव के लिए लकड़ी या बाँस की बनाई

ऊँटा— (सं०) एक काँटेदार पौधा, जिसके बीज से खुजली की चिकित्सा के लिए तेल बनाया जाता है (द० मुं०, भाग० १)। [उष्ट्रकण्टक]
ऊँख—(स०)— दे०—ऊख।
ऊख, ऊखि-(स०) एक प्रकार का दण्डाकार पौधा, जिसका रस मीठा होता है और जिससे गुड़, चीनी आदि बनाई जाती है। पर्या०—केतारी (म०, पट०, गया, द० पू० बिहा०) कुशियार उ० पू० म०)। [<*इक्षु (संस्कृ०),इक्खु (प्रा०), आख, इखु, कुशिर (ब ) ऊस, उस (मरा०) ऊस शेरडी(गु०), करुएदु, कबु (क०) चिरकु ते०) इक्कु (ता ) सौंठो, सोंठा सेलडी (मरा०), गन्ना गड़ा (प०), करम्ब (प्रा०) नए शकर (फा०), कमुसुकर (ब ),ईख, ऊख (हिं०)। [केतारी<कान्तार कुशियार ∠कोशकार]
ऊख नम्मर २४—(सं०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद। यह हल्के लाल रग का पतला ऊख है। यह बसी नीची जमीन में जहाँ पानी जमा होता है रोपा जाता और अधिक परिमाण में उपजता है (बिह० रो०)। [ऊख+नम्मर+२४∠ऊख (हिं०)+नंबर (अं०)+२४ (सख्या)]
टि०—ऊख के साथ दिये ये नंबर भारत की विभिन्न ऊख अनुसंधानशालाओं के वैज्ञानिक शोध के विभिन्न प्रयोगों पर आधारित हैं।
ऊख नम्मर ३१३—(स०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद जो उजले रंग का होता है। इसकी उपज अच्छी होती है, इसका छिलका पतला होता है। यह ऊख नरम और रस से भरा होता है। इसका गुड़ साफ होता है। चीनी की मात्रा भी अधिक होती है। आजकल बीमारी लगने के कारण इसकी खेती बहुत कम हो गई है (बिह०, रो०, हरि०)। [ऊख+नम्मर+३१३∠ऊख (हिं०)+नंबर (अं०)+३१३ (सख्या)]
ऊख नम्मर ३२१—(स०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद। यह लाल रंग का और मोटा होता है। यह नरम और रसीला होता है। इसका गुड़ अच्छा नहीं होता। कुछ वर्ष पूर्व इसकी खेती खूब होती थी। इसमें बीमारी लग जाने के कारण इसकी खेती अब कम हो गई है (मिला० लाल गोंडी लाल गेंडा) (बिह०, रो० हरि०)। [ऊख (हिं) + नम्मर ∠नंबर (अं)+३२१ (सख्या)]
ऊख नम्मर ४१६—(स०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद। यह काफी मोटा और वजनदार होता है। इसकी उपज अच्छी होती है। (बिह० रो०)। [ऊख (हिं)+नम्मर<नंबर (अं०)+४१६ (सख्या)]
ऊख नम्मर ४५३—(स०) ऊख का एक पारिभाषिक भेद, जो काफी मोटा और लंबा होता है। पर्या०—समसेर (रो०) हड़हवा, रुसीहवा (भोज०) कटहवा (मग०)। [ऊख(हिं) +नम्मर <नंबर (अं०)+४५३ (सख्या)]
ऊखर खावड़—(स०)—(शाहा०) दे०—उभर खाभर। [ऊखर+खाबड़, ऊखर<उखड़ा∠उखड़ना (हिं०) <*उत्कर्षण ∠*उत्खनन, खाबड़< खर्पर ?)]
ऊखि-(सं०)-(स०, भोज०, भाज०)। दे०—ऊख।
ऊना डेढ़ी जोत—(सं०) खेत की टेढ़ी जुताई (चंपा०)। दे०—ऊना ड्योढ़ी जोत। [ऊना +डेढ़ी+जोत—(यो०)]
ऊना ड्योढ़ी जोत—(स०) खेत की टेढ़ी जुताई (सा० पट०)। पर्या०-ऊना डेढ़ी जोत (चंपा०)। [ऊना+ड्योढ़ी+जोत- यो०)]
ऊना फानी—(स०) खेत की चौड़ाई की ओर से जुताई (पट०)। दे०—फानी। [ऊना+फानी-(यौ )]
ऊनी—(स०)—(चंपा०)। दे०—उम्मी ऊमी। [मिला०—ऊर्मी]
ऊपराहुत—(स०) ऊपर की ओर वाली जमीन। ऊँची जमीन (चंपा० १)। दे०—उपरवार। [ऊपर+आहुत∠उपरि+आभृत (?)]
ऊबर खाबर—(स०)—(पट० ४, भाग० १)। (दे०—उभर खाभर)। [ऊबर+खाबर, ऊबर ∠उद्वर्म (?,) खाबड़ (मनु०) या∠खर्पर]
ऊमि—(सं०) मडुए के कच्चे दाने, जिन्हें पीस कर और हल्का कर रोटी बनाई जाती है या जो भून कर खाए जाते हैं (चंपा० १)। [मिला०—ऊर्मी]
ऊमी, उम्मी—(स०) होरहा बनाने के लिए मडुए

एकहन—(स०) वह अन्न, जिसमें दूसरा अन्न नहीं मिला हो (शाहा० १)। [एक+हन ∠ एक+अन्न या < *एकधान्य ]

एकहरा—(स०) वह हेंगा, जिसमें दो ही बल जोते जाते हैं (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—हगी। पर्या०—दुबरधिया (चपा०)। [एक+हरा (प्र०) ∠ ग्रास् (सस्कृ० प्र०)]

एकहुला के माल—( सं० ) किसी खतिहर का एकमात्र पशु (चपा १)। [ एक+अहुला+के +माल—(यो०) ]

एकैस—( स० ) इक्कीस की सख्या । [ एक+ ऐस ∠ * एक विंशति ]

एकैसिया—(सं०)—(१) फसल के २१ बोझा की एक राशि ( शाहा० )। (२) फसल को काटने बाँधने और खलिहान तक पहुँचाने के लिए मजदूर को २१ बोझा पर एक बोझा मजदूरी देने की प्रचलित प्रणाली (शाहा० गया मुं०, भाग०-१)। दे०—एकसी। [ एकैस+ इया ∠ *एकविंशतिक ]

एकैसी—(स०)—(१) बोझ से बडी फसल की एक राशि (२१ बोझे = एक एकसी)—(पट०, गया, द० मुं०)। (२) फसल को काटने, बाँधने और खलिहान तक पहुँचाने के लिए मजदूर को २१ बोझो पर एक बोझा मजदूरी देने की प्रचलित प्रणाली (पट०, गया, द० मु० भाग० १)। पर्या०—एकैसिया (शाहा०)। [एकैस+ई ∠ *एक विंशतिक]

एखरा जात—(स०) जमीदारी के विषय में होने वाला गाँव का खर्च (पट०)। दे०—गाई खरच।

एगदाईं—(स०) दौनी में घूमनेवाला सबसे तेज बल ( द० भाग० पट०-४ )। दे०—पाट। [ ∠ *युग्दमिन् ∠ *एकदमिन् ]

एघाँव—(स०)-(१) वह ऊँचाई, जहाँ तक करीन, लाठा आदि से पानी उठाया जाता है। दे०—चोन्ह। (२) जब करीन, लाठा आदि से पानी चलाने में कई उठान ( ऊँचाई ) पडते हों और प्रत्येक को पार करके ऊपर खेत तक पानी पहुँचाया जाता हो तो उस दशा में पहला उठान या जलाशय (ग० द०)। दे०—थवका। पर्या०—एघावा (पट०), एघाव (द० भाग०), एघाई (भाग० १), दोघाँव = दूसरा उठान, दोघावा (पट०), दोघाइ (भाग० १)। तेघाव = तीसरा उठान, तेघावा (पट०)। तेघाई (भाग०-१) चौघाँव = चौथा उठान, चौघावा ( पट० )। [ए+घाँव ∠ एक+ स्थाम (?) ]

एघाइ—(सं० (भाग० १)। दे०—एघाँव।

एघाव—(स०)—(द० भाग०)। दे०—थवका। [ एक+स्थाम (?) ]

एघावा—(सं०)—( पट० )। दे०—थवका। [एक+स्थाम]

एड़ा—(स०)—(१) गडासी की बेंट के अंत का गाँठदार भाग (ग० उ०)। पर्या०—हूर (उ०-पू० म०, चपा०) ठेकना (द० प० म०, शाहा० ), आढक (द० प० शाहा०), मूठ, मुठिया ( द० पू० बिहा०, भाग०-१ )। (२) दे०—हूरा। (३) गाडी को पीछे की ओर गिरने से बचाने के लिए दी जानेवाली थूनी। पर्या०—उलरूआ, सिधवाइ, लरूआ (पट०)। [<*एड्डक(?)]

एड़ा

एदली—(स०) एक प्रकार का धान, जो छींट कर (बावग) बोया जाता है (गया)। [ (देशी), मिला० एतक, एतल = काले वर्ण का हिरण, सम०—एतक सदृश होने से नाम पड़ा हो। ]

एमारत सेस—(स०) किसान से मकान बनाने के लिए लिया जाने वाला एक प्रकार का कर (सा० १)। [ इमारत+सेस ]

## ऐ

ऐंजा—(सं०) एक प्रकार का साग (दर० १)। [ देशी ]

ऐन—(स०)—(१) रुपये या पैदा अनादि के रूप में चुकाया जानेवाला भूमि-कर। दे०—माल। (२) कौल के मुताबिक जमीन की फसल का हिस्सा (मु० १)। (३) मायली या ठीके की जमीन का मालिकाना हिस्सा ( मुं०-१, भाग० १)। [अन्, अमन ]

ऐमाल—(सं०) एक प्रकार का धान (दर० १, पूर्णि० १)। [ मिला०-अम्ल ]।

पानी आ सके। (२) चारा खिलाने के लिए प्रयुक्त टोकरी (कहीं कहीं)। दे०—पथिया। [मिला०-ओतेपीक्र∠आ+उत्त+इपीक्र]।

ओद—(वि०)—(१) गीला (चपा० १)। (स०) —(२) एकसाथ मइलाकर उगनेवाले बाँस के पौधों का समूह (चंपा० १)। [आर्द्र, ओदम्, आवन्ध]

ओदरल—(क्रि०)-(१) किसी सटी हुई चीज का फटकर अलग हो जाना (चपा० १, भाग० १)। (२) खेत की पपड़ी का फटना। [< *अवदार< अव+√दृ=फटना]

ओदार—(स०) किसी फसल का बोझा बाँधने के लिए पटुए की ऐंठी हुई रस्सी (पू० म०)। दे —कपरा। [देशी]

ओदारल—(क्रि०) ओदरल क्रि० का प्र०। किसी सटी हुई ऊपरी चीज को फाड़ना या अलग करना (चप० १ भाग० १, पट० ४)। [*अव-दार< अव+√दृ=फाड़ना]

ओदौंछी—(सं०) गीले खेत को जोतकर उसमें बीज बोने पर फसल में लगनेवाला एक रोग विशेष (शाहा० १)। [ओद+ औंछी< ओदा <आर्द्र, उद+औंछी औंछी< उच्छ (?)]

ओध—(स०) बाँस के पौधों का समूह(चंपा० १), दे०—बाँस क कोठी। [आवन्ध]

ओरहा—(स०)—(१) पकने के पहले ही काटी हुई गहूँ की फसल (व० पू० म०, भाग० १)। दे०—होरहा। (२) भूनने के लिए काटा हुआ अनाज (व० पू० म०, चपा०, भाग० १)। दे०—होरहा। [अव+√उल=जलाना, भूनना]

ओरीटीनी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (पट०, गया)। [देशी]

ओल—(स०) जमीन में पैदा होनेवाला एक प्रकार का कन्द। इसमें भरता, तरकारी आदि बनाये जाते हैं। पर्या०—सूरन (दर० १, पट० ४ भाग० १ पट० १)। [ओउ (सस्कृ०), ओल (हिं०), ओल (ग०), ओल् (बं०), ओल (मो०), सूरण (गु०)]

ओलल—(क्रि०)—(१) अन्न को चलाकर उसमें मिले विजातीय अन्न या दूसरी वस्तु को अलग करना। (२) जोते हुए खेत या क्यारी की मिट्टी को घास फूस निकाल देने के बाद बराबर करना। (दर० १, चपा०, पूर्णि० १, भाग०-१)। [अव+√लल्=चलाना]

ओल्हनी—(स०) रोपनी के समय गाया जानेवाला एक प्रकार का गीत, जो अपराह्न के परार्द्ध में गाया जाता है और जिसका स्वर धीरे धीरे नीचे की ओर झुकता है। इसका प्रतिकूलार्थक श— चढ़ता है (चपा० १)। [उल्हा (प्रा०) =बुझना, अव + हरण = < *अवहलन < अव + √हल् (=नीचे जाना, गिरना, झुकना)]

ओल्हल—(क्रि०)—(१) किसी चीज का किसी एक तरफ झुक जाना (चपा० १, पट० ४)। (२) हल या ट्रैक्टर द्वारा एक तरफ ज्यादा मिट्टी फेंकना (चपा० १)। [< *अवहल्ल < अव+√हल् (=गिरना, चलना)—(सस्कृ०), उल्हा (प्रा०)=बुझना, अव+ हरण= एक तरफ रखना, झुकाना]

ओल्हे आव—(सं०) हल, गाड़ी आदि में जुते बैलों को घुमाने के समय हाँकनेवाले का संकेत —। (सा १)। [ओल्हे+आव]

ओसर—(स०) पूर्ण वयस्का बाछी, जो गाय बनने के लिए तैयार हो। पर्या०—कलोर (प०), गौर उ० पू० म०), फेटाइन (पट०), ऑंवरिया (व भाग०)। [उपसर्या, < *उस्रा (गाय)]

ओसाएल—(क्रि०) ओसाना वायु के बहाव में अनाज का सूप आदि से ऊपर से नीचे तक पतली रेखा में गिराकर भूसा आदि से अलग करना। पर्या०—ओसावल (चपा १ पट० ४)। [< *अव + √सो (षो) 'अन्तकर्मणि'= समाप्त करना, पूर्ण करना *अव + √शृ= छितराना, फैलाना, *अव+√सृ=प्रेरणा देना, नीचे फैलाना, अवसरन]

ओसारा—(सं०) घर के आगे का बरामदा।

ओसावनि—(स०)। दे०—ओसौनी।

ओसावल—(वि०)—(चपा० १, पटना० ४)। दे०—ओसाएल। (वि०) ओसाया हुआ। [< √अव+√सृ, *अव+√सो]

टक्, चूना का पत्थर (मो० वि० डि०), 'कर्करी मुकुरे टंटे'—( अने० ), 'कर्करी भाण्डभेदना दर्पणे कठिने त्रिपु' (मेदि०) ]

ककड़ी—(स०)–(१) इट पत्थर का छोटा टुकड़ा ( गया, पट०, भाज० )। दे०—अँकडी। पर्या०—अकरी। [ कर्कर ]

कँकडी—(स०) दे०—ककडी।

ककराही—(स०) कंकरीली मिट्टी (सा०, पट०, म० २)। पर्या०—अँकड़ैल (सा०, शाहा०) अँधडौर (प०)। [कक्कर+आही<अस्थि (?)]

कँकरोटिया—( स० ) एक प्रकार की कडी मिट्टी, जो जमीन खोदने पर जमीन की ऊपरी सतह के नीचे मिलती है (द० भाग०, पट० ४)। दे०—गँगटियाहा। पर्या०—गँगारट(पट० ४), कंकरोटी [कक्कर+ओटिया<*ओष्ठी, अस्थि (?)]

कंकरी—(स०)-(शाहा० सा०, चपा०)। दे०—ककडी।

कँकरोटी—(सं०) दे०—कंकरोटिया।

कँगनिया—( स० ) नदी का खडा ऊँचा किनारा ( उ० पू० म० )। दे०—करारा। [ कंकट= सीमा, अवधि, कच्छ=किनारा ]

कचनचूर—( सं० )—(१) रोपा जानवाला एक प्रकार का उत्कृष्ट धान (द० मुं० चपा०)। (२) बासमती चावल का एक भेद (पट० ४)। [ कञ्चनचूर्ण ]

कचा—(वि०) दे०—कच्चा।

कचु—(सं०) एक प्रकार का साग, जिसकी पत्ती अरुई की तरह चौडी होती है (दर० १ म० २)। [ मिला० –कंज ]

कँचोरस—(स०) ऊख को पेरकर या चूसकर निकाला गया रस (द० भाग०)। दे०—रस,। पर्या०—कचरस (पट० ४ चंपा०)। [कँचो+रस]।

कजर—(स०)—( १ ) रस्सी बाँटनेवाली एक विशेष जाति (उ० प० विहा०, गया)। पर्या०—कजड़ा, कजड़ (चंपा०), चाँई (प० म०), रसघटा (शाहा० गया)। (२) एक प्रकार का हरा पानी (म० २)। [कंजर (देशी), कालजर= बुंदेलखंड का एक भाग, उस प्रदेश के रहने-वाले लोग। इनका पेशा रस्सी बाँटना और भीख माँगना है ]

कँटहवा तार—( स० ) दो तीन पतले तारों को मिलाकर बनाया गया लोहे का तार, जिसमें दो एक इंच की दूरी पर लोहे के ही काँटे बन होते हैं। यह फसल की सुरक्षा के लिए खेत के चारों ओर घेरने के काम आता है (बिह० ), [ कँट-हवा+तार (देशी), कँटहवा <काँटा< कण्टक]

कटा—(स०)–( १ ) वर्षा या सिंचाई के बाद तेज धूप के कारण कडी हो गई खेत की मिट्टी को मुलायम करने के लिए व्यवहृत कुछ काँटों जसी लोहे की कीलों से बना एक तरह का हल (म०)। पर्या०—खखोरनी (म०) [ <*कण्ट, कण्टक< √कण्ट > कण्टति= चलता है, घूमता है। (२) काँटा। ( ) सरकडा, (चपा० १)। पर्या०—कोंढ़ा ( चपा०, पट ४, शाहा०)। [ काण्ड ]

कँटिया—(स०)–(१) गाय भस के दूहने या घी-तेल आदि रखने के काम में प्रयुक्त लंबी गर्दन वाला मिट्टी का छोटा बर्तन। पर्या०—कटिया (चंपा०), धूआ (चपा०), टेहरी ( पट० ४ ), मेटिया (चंपा०, द० भाग०) झरही (चपा०, म० २)। [ मिला०—कठिन लंबी गर्दनवाला। कंठाल=पात्र, करक=कमण्डलु—'कमण्डलुश्च करक' (शाश्व०)] (२)-(उ० पू०, द० प० म०) दे०—कोहा। [ मिला०—कठाल=पात्र ]

कंठ—(स०) दे०—कठी। [ <*कण्ठ ]

कठफोड—(सं०) वह सुग्गा, जिसके गले में इंद्र-धनुष-सा रंग निकल आया हो ( शाहा० १ )। [ कंठ+फोड<कंठ + फोड<स्फुट ]

कठा—(स०)—(१) मवेशियों के गले में पहनाई जानेवाली घुंडीदार मोटी रस्सी ( विहा०, भाग० )। (२) स्त्रियों के गले का एक आभूषण। [<*कंठक]

कठी—(स०) कुदाल की धार और पासे की जोड (पट०,गया)। पर्या०—नट्टी (शाहा०), सन, कठ (द० भाग०), सुन (द० मुं०)। (२) दे०—कठा। (३) तुलसी या बेल की टहनी की बनी पतली सी माला। [ <*कण्ठ ]

कँड़डा—(सं०) जंगल या चरागाह में सूखा हुआ गोबर, जो खाद अथवा जलावन के काम में आता है (गं० उ०, म० २)। पर्या०—चड़डा (गं० उ०), दमारा (पट० ४ मग० ५) कड़ा

कउर—(सं०) वह स्थान जहाँ गड्ढा खोदकर गोइठी लकड़ा, पुआल आदि डालकर और उसमें आग लगाकर गाँव के लोग जाड़ में आग तापते हैं और शीत निवारण किया करते हैं (गाहा०)। दे०—घूर।

कउरल—(क्रि०) कटे हुए अनाज के पौधों को दौनी के समय उलट-पुलट करना (चपा० १, शाहा०)। पर्या०—उकटल (पट० ४, मग० ५, म० २)। [कउर+ल (प्र०) < *कवर= संयुक्त, सम्मिलित (मो०वि०डि०), < *कणावकिरण < कण+अवकिरण < अव+√कृ (विक्षेपे=फेंकना)]

कउरी—(स०) दे०—कँवरी।

कउली बूँट—(स०) उजले और बड़ दानावाला एक प्रकार का चना (पट० १)। पर्या०—कवली बूट (मग० ५, म० २) कबुली बूँट (चपा०) [कउल+ई+बूँट< काबुली+बूँट]

ककड़िया—(स०) आम का एक भेद, जो ककड़ी के समान होता है (दर० १, म० २)। [मिला०-कर्कोटक, कर्कटी]

ककड़ी—(सं०)-(१) खीरे की जाति का एक लंबा पतला फल, जो कच्चा खाया जाता है। पर्या०—कँकरी, (शाहा० सा० पट० ४, मग० ५ प्रभृति भी) काँकरि (=बड़े आकार की ककड़ी)—(शाहा०), फँकड़ी (पट० १ गाहा०)। यह फल बहुत जनप्रिय है। इसके विषय में कहावत है—"निकोरिया गलाह हाट काँकरि देखि हिया फाट (कोई मनुष्य बिना पैसे के बाजार गया, वहाँ ककड़ी देखकर उसका हृदय फटने लगा।)। 'एक हाथक काँकरि, नौ हाथक बीया (एक हाथ की ककड़ी और उसमें नौ हाथ का बीज)। (२) खरबूज की तरह का एक फल जो पकने पर फूट जाता है और फूटने पर फूट या फूट कहा जाता है। [कर्कटी (संस्कृ०), कक्कडी (प्रा०), ककड़ी (हि०), काँकुड़, बड़ काँकुड़ (बं०), काँकडी (ओ०), कक्ड़ी (प०), काँकडी (मरा०)

ककड़ी

काकडी (गु०), कांकिरा (सिंह०), ख्यारजात्र (फा०), क्रिम्सा ऊ्‌ट्स (अ०), कमत्थर (अ०)]

ककना—(स०) फसल को हानि पहुँचानेवाली एक घास (दर० ४, गया, द०-पू०)। पर्या०—घनसारी (शाहा०, पू० म०) [मिला०—कङ्कण (?) (संस्कृ०), कलुनी। मिला०-काँको (ने०)]

ककीर—(सं०) प्रचलित श्रेणी का एक अच्छा पान, जिसके पत्ते लंबे और कोमल होते हैं (उ० पू० म०)। दे०—कनवा। पर्या०-ककेर (द० पू० म०)। [मिला०—कर्कटी=ककड़ी की तरह लम्बा होने के कारण संभावित नाम]

ककुड़ी—(स०) तम्बाकू के पत्ते का एक रोग, जिसमें हरा पत्ता सिकुड़ जाया करता है (दर० १, चपा०, मग० ५)। टि०—कद्दू और मिरचे के पत्तों में भी यह रोग कभी कभी हो जाता है। [∠*कर्कट=एक प्रकार का रोग। ककड़ (हि०), कर्कर (संस्कृ०)=सूखी या सेंकी हुई सुरती का मुरमुरा चूर, जिसमें पीनेवाला तम्बाकू मिला रहता है (हिं० श० सा०)]

ककेर (सं०)—एक प्रकार का अच्छा पान, जिसके पत्ते लंबे और कोमल होते हैं (द० पू० म०, म० २)। दे०—ककीर।

कगिया—(स०) वह बैल, जिसका रंग काग की तरह काला हो (पट० १, मग० ५)। पर्या०—करिया (म० २)। [काग+इया (प्रा०) < काग < *काक]

कचकुट्टा—(सं०) ईख का अधपका रस (मु० १, चपा०)। दे०—कचरस।

कचटाही—(स०) वह मिट्टी, जो कुछ मुलायम तथा कुछ कड़ी हो (गाहा० १)। [कचट+आही (देशी)]

कचनार—(स०) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष, जो मझोले आकार का होता है, कहीं-कहीं लता के जैसा भी होता है। इसकी पत्तियाँ गोल और सिरे पर कटी होती हैं। छाल भूरा और फूल लाल, पीले और सफेद होते हैं। फूलों और कलियों की तरकारी बनती है। फली चिपटी होती है (दर० ? पट० १-६, मग० ५, चपा० गाहा०)। [काञ्चनार (संस्कृ०) कंचणार (प्रा०) कचनार (हि०) काञ्चन, काँचनार (बं०), काँराल,

(=कटा हुआ), कच्य (विकसित होनेवाला) <*कच् (विकसने)]

कच्चाबिगहा—(स०) जमीन की एक नाप, जो किसी स्थान विशेष में तो प्रचलित हो, पर दूसरे स्थानों में उससे भिन्न हो। भिन्न भिन्न स्थानों में 'बिगहे' की नाप में अन्तर पाया जाता है। 'बिगहा' की असतुलित माप। पक्का बिगहा ०३५ वगगज या २० कटठ का होता है। [कच्चा+बिगहा<*विग्रह (?)]

कचानीघा—(स०) दे०—कच्चा बिगहा।

कच्चू—(स०) अरुई की जाति का लंबा मोटा कन्द, जिसकी तरकारी बनती है (मग० ५ पट० ४)। दे०—अरुई। पर्या०—अरुआ (चपा०), कनचू (दर० १)। [मिला०—कचु, कच्ची=एक प्रकार का खाद्य कन्द (मो० वि० डि०)]

कच्छड़—(स०)-(चंपा०)—दे०—कछाड़ २।

कछाड़—(स०)-(१) नदी या पोखर का किनारा, कछार। दे०—करारा। (२) इस प्रकार पहनी हुई धोती या लुंगी, जिसके नीचे लटके हुए छोर को ऊपर खोंसकर कमर में कसकर बाँध लिया गया हो। (चपा०, मग० ५, पट०-४)। पर्या०—कच्छड़ (चपा०)। [कच्छ*>कछा+ड़, काछ]

कछाड़ा—(सं०)-(पट०-४)। दे०—करारा। [कच्छ*>कछा+ड़ा]

कछार—(स०) दे०—कछाड़।

कछुआ-डाबर—(सं०) वह अत्यत उपजाऊ खेत, जो कछुए की उलटी हुई खोपड़ी की तरह गहरी होता है और जिसमें आसपास के चारों ओर से पानी और सड़ी गली खाद आदि आकर गिरती है। (दर० मुज०) [कछुआ+डाबर]

कछुआ डाव—(स०) नदी का वह बहाव, जिसमें जल प्रवाह के कारण रेतीली जमीन की ऊँचाई और नीचाई में फेर बदल होते रहने से कहीं थोड़ा और कहीं अधिक जल रहा करता है (मग० ५ मु० १ पट० ४)। [कछुआ+डाव, कछुआ<कच्छपक, डाव< √प्लव (गतौ), (म० द्यु०), अवधार]

कछुआ-सीम—(सं०) एक प्रकार की सेम, जो तरकारी के काम में आती है (दर० १)। पर्या०—कवछुआ सेम (चपा०), गैंचिया सेम (पट० ४)। [कच्छु+शिम्बि (?)]

कछुइया—(स०) कुआँ खोदने में मिलनेवाली ढीली मिट्टी (पट०, पट० ४ गया)। [*कच्छ]

कजई—(स०) खाने से रोकने के लिए बल के मुह पर बाँधी जानेवाली रस्सी की बनी हुई जाली। (द० पू० म०)। पर्या—कजुई, मुँहबन्द (मग०-५), जाबा (पट० ४) जाब (चपा०)। [देशी]

कजरगोट—(स०) एक प्रकार का काला धान (दर० १)। पर्या०—कजरगौट, कजरघौर, कजरघोद (द० भाग०)। [कजरी (हि०), <*कज्जलगुत्स (?)]

कजरगौट—(स०)-(दर० १)। दे०—कजरगोट।

कजरघरो—(स०) छीटकर (बावग करके) बोया जानवाला एक प्रकार का धान, जिसकी बाल काले रग की होती है। (द० भाग०)। [कज्जलगुत्स (?)]

कजरघौर—(स०) महीन तथा सुगधित धान का एक भद, जिसकी बाल काले रंग की होती है (मुं० १)। पर्या०—कारीचाँक (पट० ४)। [कजरी (हि०), कज्जल गुत्स (?)]

कजरा—(स०)—(१) बड़ा और बलिष्ठ वह बल, जिसकी आँखों के चारों ओर का स्थान नीला हो। (पट०-१, पट० ४)। कहा०—'बल लीज कजरा दाम दीज अगरा।'—(घाघ) =कजरा बल लेने के लिए अग्रिम मूल्य देना चाहिए। [कजर+आ (प्र०) <काजर <काजल<कज्जल] (२) धान गेहूँ और जौ के पौधों में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा, जो पौधों का करीब छह इच के होने पर चाट जाता है (पू० म०, पट०, गया)। दे०—कजरी। [कज्जल, मिला०—कज्जल=एक प्रकार का पक्षी, कज्जार=मयूर (मो० वि० डि०)]

कजरी—(स०) रोपा जानवाला एक प्रकार का धान (द० मुं०, दर०-१)। [कज्जल] (२) एक पशु खाद्य घास (शाहा)। दे०—कजला। [कज्जल, मिला०—कचक=एक प्रकार की छत्राक (कुकुरमुत्ता) जाति की घास (मो० वि० डि०)] (३) धान गहूँ और जौ क पौधों में

कटहीहल—( सं० ) एक प्रकार का हल, जिसमें लंबी कीलें लगी रहती हैं और जिससे निकौनी की जाती है ( दर० १ )। पर्या०—कटही हर—(चपा०) बिदह (दर० १) [ कटही+हल, कटही

कटही हल

< काटल (बिहा०), काटना (हिं०)< √कृती (छेदन) या कटही< कटक (=कील) ]

कटारी—( सं० ) एक थला, जिसमें बैल पर अन्न ढोनेवाला व्यापारी अपना सामान रखता है (द० भाग०)। पर्या०—इँड़वाय (द० मु०), सास (सा०, चपा०)। [गम्भ०—कर्तरी (?)]

कटिया—(सं०)-(१) (उ० पू०)। दे०—काटल कटनी। (२)-(चपा०)। दे०-कँटिया। [कृत्ति ∠ √कृती (छेदने) ]

कटुआ—(सं०)-(१) अनाज के ऊपर का छिलका (पट०, गया, मग० ५ पट० ४)। दे०—भूसा। ... ए मे दाना को निकाल लेन पर बची छोर को ... रसी (उ० पू० म०)। दे०-डाँटी। बाँध लिया ग... लए व्यवहृत होनेवाला अरहर पट० ४ )। ... दलहन का छिलका अथवा भूसा [कच्छ* > क... ०—भूसा। [ < *कटुक, √कुट्ट

कछाड़ा—(सं० ... का रहित करना), छिलका रहित [ कच्छ* > ... कुट्टक, कडक्क, कडगर ]

कछार—(स० ... )-(१) डंठल के बिना ही केवल बाल

कछुआ-डाब ... (द० प० शाहा०)। दे०—खलकट। जो कछा... है मे आटे में गुड़ मिलाकर तथा घी होता ... में तलकर बनाया हुआ एक प्रकार का पकवान मग० ५ )। (३) एक प्रकार का आलू, जो काट कर खेतों में रोपा जाता है ( मग० ५, अन्यत्र भी)। (४) वह दही, जिसके ऊपर का मलाईवाला अंश काट (निकाल) लिया गया हो (चपा०)। [< *कृत्ति< √कृती(छेदने), 'कृत्ति कृन्ततेर्यशो वाऽन्नवा, इयमपीतरा कृत्तिरेतस्मादेव, सूत्रमयी, उपमार्थे वा'—निरु०]

कटुइ—(सं०)-(१) जल में रहनवाला एक प्रकार का झींगुर, जो धान के पौधे को काटता है। (२) गेहूँ जो आदि के पौधों को काटनेवाला कीड़ा (शाहा० १)। [कट्+इ< कट्<काटल

(बिहा०), काटना (हिं०) < √कृत्, कीट ]

कटुओ—(सं०) चारे के लिए व्यवहृत होनेवाला अरहर या किसी अन्य दलहन का भूसा (द० पू०)। दे०—भूसा। [ मिला०—कटुक, कुट्ट, कुट्टक कडक्क ]

कटैया—( स० )-( १ ) एक प्रकार का कीड़ा ( कोआ ), जो धान में लगने पर उसकी बाल को पीला बनाकर नष्ट कर देता है ( द० प० शाहा०)। पर्या०-कटोई, कटोइया (गं० द०), हरदा ( पट० ४ )। [ ∠ *कृन्तकिन् ] (२) एक प्रकार का कँटीला पौधा (दर०-१)। [ ∠ *कृन्तकारिन् ]

कटोइया—(स०)—(ग० द०)। दे०—कटया। [ ∠ *कीट, ∠ *कटकिन् ]

कटोई—( स० )—(गं० द०)। दे०—कटया। [ ∠ *कीट, ∠ *कटकिन् ]

कटौनी—(सं०) फसल काटने की मजदूरी (मुं० १, पट०-४)। [कटौन+ई, < कटावल (बिहा०) < √कृती ('छेदने ) कर्त्तन]।

कट्टा—(स०) पशुओं के खाने के लिए गँडासे या मशीन से काटे हुए घास पुआल, लत्तर आदि के छोटे छोटे बारीक टुकड़े (पट०)। पर्या० कुट्टी (द०भाग०), बिचाली (मग० ५, पट०) लेन्ही। (चंपा०)। दे०—कुट्टी। [< *कर्त्ति < √कृती ( छेदने'), (प्रे०) कट्टिअ (प्रा०), < *कृत्त (संस्कृ०), कट्ट (प्रा०)]

कट्ठा—(सं०) बीस धुर जमीन की एक नाप, बिस्वा (शाहा० पट० ४)। [∠ *काष्ठ]

कठजा—(स०) कई तरह के मिले हुए अनाज। (२) कच्चा अन्न (मु० १)। [अस्पष्ट, सम० < कतिपयान्नजाति, मिला०—सतजा (चपा०, पट० ४) < सप्तान्नजात]।

कठकरज—(स०) एक काँटेदार झाड़ी, जिसके फल का गूदा दवा के काम में आता है ( मु० १ )। पर्या०—कठकरेजी (मग० ५ पट० ४)। [< *कटुकरज, < *कटकरज]

कठकरेजा—(सं०) दे०—कठकरज।

कठकरेजी—(सं०) दे०—कठकरज।

कठकूआँ—(स०) लकड़ी के बने गोल बाँध (कोठी) से सुरक्षित कुआँ। [कठ+कूआँ< काष्ठकूप]

मुं०)। (२) कठा। जमीन नापने की पाँच हाथ की लग्गी।[सम०-< *काष्ठा या *कृष्टि]

कठाघर—(सं०) खेतों को नापनेवाला ग्रामीण। [कठा+घर< *काष्ठाघर]

कठार—(स०) एक प्रकार का कंद, जिसकी तरकारी बनती है (द०-प०)। दे०—ल्तार। [मिला०—काष्ठालुक]

कठुली—(स०) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी को बाहर निकालने का पात्र (छोटी कठौती)। दे०—चलना। [कठ+उल+ई (प्र०) < *काष्ठ]

कठेस—(वि०) वह फल, जो ठीक से पका न हो और कड़ा हो (चपा० १)। [मिला०—कठर, कठिन]

कठौआ—(स०) लकड़ी का फावड़-जैसे फलक वाला औजार, जो खेत में पानी पटाने के काम में आता है (द० मुं०)। दे०—हथा। [कठ+औआ। मिला०—काष्ठामत्र, काष्ठ कुदाल]

कठौत—(स०)-(पू०)। दे०—कठवत, कठौता। [काष्ठामत्र, काष्ठपात्र]

कठौता—(सं०) लकड़ी का कड़ाह जो रस ठंडा करने के काम में आता है। पर्या०—कठौती, कठोत (पू०), कठवत (सा०), नाद या ओसौनी (सा०, चपा०)। [काष्ठामत्र]

कठौती—(सं०)—(१) पानी व रस को ठंडा करने के काम में आनेवाला काठ का कड़ाह (पू०)। दे०—कठौता। (२) अन्न रखने का काठ का बरतन (ग० द०)। दे०—कठरा। [कठ+औत+ई, <काष्ठामत्र]

कड़ड़ा—(स०)—(ग० उ०)। दे० कड़ड़ा।

कड़रू—(स०) भैंस का बच्चा (स० प०)। पर्या०—पड़रू (चपा०)।

कड़वार—(स०)—(१) गड़, बड़ी बड़ी घास जो घर छाने के काम में आती है। काँस की जाति की एक घास। (२) धान के बोझों की राशि (चपा० १)। [<कड्, कड (= तृण पुआल आदि)+वार (=समूह), मिला०-कडुगर=शाक का डंठल। कडप्, कडना। (मरा०) कडब (गु०)]

कड़ाँव—(स०)—(चपा०)। दे०—कड़ाम।

कड़ा—(स०) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी (सा०, मग० ५)। दे०—मेंडड़ा। [*कटक (संस्कृ०) > *कडअ (प्रा०) >कड़ा]

कड़ाम—(स०) दौनी में बैलों को सिलसिलेवार बाँधने की लंबी डोरी (मुं० १)। पर्या०—कड़ाँव (चपा०)। [मिला०—कलम्बिक= गर्दन के पीछे का भाग, कण्ठमाल]

कड़ाह—(सं०) (१) ऊख के रस को उबालने के लिए लोहे का बड़ा गोल बरतन। (२) लोहे की बनी बड़ी गोल और गहरी कड़ाही (विहा०, आज०)। दे०—कराह [<*कटाह]

कड़ाह (१)

कड़ाह (२)

कड़ाही—(स०)—(१) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी। दे०—मकड़ा। (२) लोहे का छोटा गोल बरतन, जिसमें तरकारी आदि पकाई जाती है। [कड़ाह +ई< *कटाह]।

कड़ी—(स०) (१) हेंगा का लंबा चौरस काष्ठ-फलक (गया)। दे०—पल्ला। [< *कटक] (२) मोट में लगी हुई टेढ़ी लकड़िया (घोरानी) के दोनों छोरों को बाँधने के लिए लगी हुई लोहे की कड़ी। पर्या०—वाला। [कड़ा+ई <कटक (संस्कृ०)>कडअ (प्रा०)>कड़ा]

कढ़ौर—(स०) अन्न के बीज पर दिया जाने-वाला सूद। दे०—बाढ़ी। [कढ़+और< *कर्ष (संस्कृ०) >कड्ढ (प्रा०)]

कतकी—(स०) वह धान जो कातिक महीने में होता है (पट० १)। पर्या०—कतिका (चपा)। [कतक+ई< कातिक< *कार्त्तिकीय]

कतकी ऊख—(स०) वह ऊख जो कातिक मास में रोपा जाता है (रो०)। [कतकी+ऊख, कतकी< *कार्त्तिकीय, ऊख< *इक्षु]

कतरपार—(सं०) ऊख को कतरकर को काटने वाला (पट०, गया)। दे०—अँगढोहा। (कतर +पा< केनारा + पार <०रान्तार+पार।

कठखुरपी—(सं०)-(१) काठ की बनी हुई चम्मच जैसी चीज जिससे कड़ाह से रस निकाला जाता है। (२) दे०-कठही। (३) कड़ाह की पेंदी में चीनी बैठने से बचाने के लिए उसे खुरचनेवाला औजार (द०-पू० म०)। दे०-खुरपी। [कठ+खुरपी<काष्ठ क्षुरप्र (?)]

कठजामुन—(सं०) एक प्रकार का जामुन। यह छोटा होता है तथा इसका बीज बड़ा-बड़ा होता है (शाहा० १, चपा०, पट० ४)। [कठ+जामुन<काष्ठ+जम्बू (?)]

कठडुम्मर—(सं०) एक प्रकार का जंगली वृक्ष। इसके फल की तरकारी होती है (पट० १)। [कठ+डुम्मर<काष्ठ (वा कट)+उदुम्बर]

कठनही—(सं०)-(१) कुएँ से पानी निकालने का काठ का बना हुआ एक प्रकार का पात्र (गया)। (२) काठ का बना हुआ तश्तरी की तरह का बरतन, जिसमें चटनी आदि जैसी चीजें रखी जाती हैं (मग० ५)। [कठ+नही (सम०)<काष्ठ+नद्धी यथा पनही<पनद्धी]

कटपिरी—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर० १)। [मिला०—कटभी, "कटभी स्वादुपुष्पश्च मधुरेणु कटम्भरा"—(भा० प्र०)]

कठफनेल—(सं०) छोटा-छोटा जामुन। यह बरसात में फलता है और इसका बीज बड़ा बड़ा होता है (पू० १)। [कठ+फनेल<काष्ठ (वा कट)+फनेला (देशी)]

कठबधन—(सं०) लकड़ी का खंभा, जिसमें हाथी बाँधा जाता है। [कठ+बधन<*काष्ठ बधन]

कठबाँस—(सं०) पतला और ठोस बाँस (शाहा० १)। [कठ+बाँस<काष्ठ+वंश]

कठबाँसी-(सं०) एक प्रकार का बाँस, जिसकी गाँठें घनी होती हैं और बाँस छोटा एवं पतला होता है (चपा० १)। [कठबाँसी<काष्ठ+वंश (?)]

कठरजनी-(सं०)-(मुंगा मु० १)। [कंटकारजनी]

कठरा—(सं०)-(१) लकड़ी का बना हुआ एक प्रकार का पात्र। यह मवेशियों को दाना खिलाने के काम में आता है। (२) लकड़ी का बना गोल बरतन, जिसमें आटा गूँथा जाता है, अथवा घर का दूसरा काम होता है। (३) स्लेट, चित्र आदि में लगा चौखट तथा ढोलक, ढंक आदि का बिना मढ़ा हुआ लकड़ी का बना ढाँचा (पट० ४)। (४) अनाज रखने के लिए काठ का बरतन (पट०, गया०)। पर्या०—कठौती (गं० द०)। [कठ+रा (प्र०) अथवा <काष्ठमत्र <काष्ठपात्र]

कठरा

कठौता

कठरेंगनी—(सं०) खाली जमीन पर फैलनेवाली गोखुर की जाति की एक काँटेदार घास, जिसके पत्ते और डाँटों में काँटे होते हैं। इसके फूल बैगनी तथा फल पीले रंग के होते हैं (पू०, मु० १, मग० ५)। दे०—रेंगनी। [कण्टकारिन्]

कठला—(सं०) दे०—कठरा। [कठ+ला (प्र०), मिला०—काष्ठमत्र, काष्ठपात्र]

कठली—(सं०) कुएँ से पानी निकालने के लिए काठ का बना हुआ एक प्रकार का पात्र (मु० १)। दे०-कठनहा। [कठ+ली (प्र०), मिला०—काष्ठमत्र, काष्ठपात्र]

कठवत—(सं०)-(१) कुआँ खोदने के समय मिट्टी को भीतर से बाहर निकालने का पात्र (कठौती) (द० पू० म०, शाहा०, मग० ५)। दे०—कठला। (२) पानी के रस को ठंढा करनेवाला लकड़ी का पात्र (सा०)। दे०—कठौत। (३) काठ का बना हुआ नावाकार बड़ा पात्र। [कठ+वत <काष्ठमत्र, काष्ठपात्र]

कठही—(सं०) कड़ाह से रस निकालनेवाली चम्मच-जैसी वस्तु। दे०—कठखुरपी। पर्या०—सैंक या सैंका (पू०, शाहा०), सपं या सफैया (ग०-द०) डोहरा (द०-प० शाहा०) डपटी या डब्बू (द० भाग०)। [कठ+ही (वि० प्र०), मिला०—कठदर्वि=एक प्रकार की कलछी (मा० वि० दि०)]

कठा—(सं०)-(१) कृषि के औजारों की मरम्मत आदि करने के बदले में बढ़ई लोहार आदि को मिलनेवाली मजदूरी (सा०)। पर्या०—चौरा (चपा०) पाल (म०), कमाई (शाहा०, पू० म०), माँगर (द० पू० मं०), कमौनी (द०

मुं०)। (२) कठ्ठा। जमीन नापने की पाँच हाथ की लग्गी।[सम०-<*काष्ठा वा *कृष्टि]

कठाघर—(सं०) खेतों को नापनेवाला ग्रामीण। [कठा+घर<*काष्ठाघर]

कठार—(सं०) एक प्रकार का कद, जिसकी तरकारी बनती है (द०-प०)। दे०—रतार। [मिला०—काष्ठालुक]

कठुअी—(सं०) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी को बाहर निकालने का पात्र (छोटी कठौती)। दे०—चल्ना। [कठ+उल+ई (प्र०) <*काष्ठ]

कठेस—(वि०) वह फल, जो ठीक से पका न हो और कड़ा हो (चंपा० १)। [मिला०—कठर, कठिन]

कठौआ—(सं०) लकड़ी का फावड़े जैसे फलक वाला औजार, जो खेत में पानी पटाने के काम में आता है (द० मुं०)। दे०—हथा। [कठ+औआ। मिला०—काष्ठामत्र, काष्ठ कुदाल]

कठौत—(सं०)-(पू०)। दे०—कठवत, कठौता। [काष्ठामत्र, काष्ठपात्र]

कठौता—(सं०) लकड़ी का कड़ाह जो रस ठंढा करने के काम में आता है। पर्या०—कठौती, कठौत (पू०), कठवत (सा०), नाद या ओसौनी (सा०, चंपा०)। [काष्ठामत्र]

कठौती—(सं०)—(१) चीनी में रस को ठंढा करने के काम में आनेवाला काठ का कड़ाह (पू०)। दे०—कठौता। (२) अन्न रखने का काठ का बरतन (ग० द०)। दे०—कठरा। [कठ+औत+ई, <काष्ठामत्र]

कड़हा—(सं०)—(ग० उ०)। दे० कहड़ा।

कड़रू—(सं०) भैंस का बच्चा (स० प०)। पर्या०—पड़रू (चंपा०)।

कड़वार—(सं०)—(१) गड़, बड़ी बड़ी घास जो घर छाने के काम में आती है। काँस की जाति की एक घास। (२) धान के बोझों की राशि (चंपा० १)। [<कट्, कड (=तृण पुआल आदि)+वार (=समूह), मिला०—कडंगर=धान का डंठल। कड़प्, कड़बा। (मरा०) कडब (ग०)]

कड़ाँव—(सं०)—(चंपा०)। दे०—कड़ाम।

कड़ा—(सं०) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी (सा०, मग० ५)। दे०—मेंड़रा। [*कटक (संस्कृ०) >*कडअ (प्रा०) >कड़ा]

कड़ाम—(सं०) दौनी में बैलों को सिलसिलेवार बाँधने की लंबी डोरी (मुं० १)। पर्या०—कड़ाँव (चंपा०)। [मिला०—कलम्बिक= गर्दन के पीछे का भाग, कण्ठमाल]

कड़ाह—(सं०) (१) ऊख के रस को उबालने के लिए लोहे का बड़ा गोल बरतन। (२) लोहे की बनी बड़ी गोल और गहरी कड़ाही (बिहा०, आज०)। दे०—कराह [<*कटाह]

कड़ाह (१)

कड़ाह (२)

कड़ाही—(सं०)—(१) मोट की गर्दन के चारों ओर लगी हुई लोहे की कड़ी। दे०—मेड़रा। (२) लोहे का छोटा गोल बरतन, जिसमें तरकारी आदि पकाई जाती है। [कड़ाह +ई<*कटाह]।

कड़ी—(सं०) (१) हेंगा का लंबा चौरस काष्ठ फलक (गया)। दे०—पल्ला। [<*कटक] (२) मोट में लगी हुई टेढ़ी लकड़िया (घोरानी) के दोनों छोरों को बाँधने के लिए लगी हुई लोहे की कड़ी। पर्या०—बाला। [कड़ा+ई <कटक (संस्कृ०) >कडअ (प्रा०) >कड़ा]

कढ़ौर—(सं०) अन्न के बीज पर लिया जाने- वाला सूद। दे०—आधी। [कढ़+और<* कर्ष (संस्कृ०) >कड्ढ (प्रा०)]

कतकी—(सं०) वह धान जो कात्तिक महीने में होता है (पट० १)। पर्या०—कतिका (चंपा)। [कतार+ई<कातिक<*कार्त्तिकीय]

कतकी ऊख—(सं०) वह ऊख जो कात्तिक मास में रोपा जाता है (रो०)। [कतकी+ऊख, कतकी<*कार्त्तिकीय, ऊख<*इक्षु]

कतरपार—(सं०) ऊख की सतों/फसल को काटने वाला (पट०, गया)। दे०—अँगढोहा। [कतर +पार<कैतारी + पार <*कान्तार+पार।

पार=अन्त। पारयति (=समाप्त करता है), पाट (=चत पाट)]

कतरपारा (स०)-(द० मुं०)। दे०—अँगेहीहा, कतरपार।

कतरवहा—(स०) दे०—कतरवाह।

कतरवाह—(स०) ऊख के कोल्हू में बैल को हाँकने वाला। पर्या०—कतरिवाह, कतरवाहा, कतरवहा (द० भाग०), हँकवा (द०-प० शाहा० म०), हँकवाहा (पट० ४) हँकवाह (म० २)। [कतर+वाह। कतरी=कोल्हू में लगा एक पटरा जिसपर बैठकर बैल को हाँका जाता है। <कतरा <*कर्तरी(=चक्र—हि० श० सा०)+वाह अथवा कर्त (=गत)+री]

करतवाहा—(स०) दे०—कतरवाह।

कतरा—(स०)-(१) एक पशु-खाद्य घास (सा० म०, दर०-१, म० २)। पर्या०—कारमूर (पट० ४)। [मिला०—कत्तृण (=एक सुगंधित घास, रोहिस। कर्तरीय=एक प्रकार का विषैला पौधा (मो० वि० डि०)] (२) पके हुए धान के बँधे हुए पुल्ले से बाल काट लेने के बाद का बचा हुआ टटरा (मु० १, म० २)। [<०कर्त्य=काटने योग्य, <*कृत्त, <*कर्तित <√कृती 'छेदन']

कतरिवाह-(सं०) दे०—कतरवाह। [कतरि+वाह< कान्तारक+वाह, कतरी=कोल्हू में लगा एक पटरा, जिस पर बैठकर बैल को हाँका जाता है, कतरि+वाह<*कर्तरा(=चक्र-हि०श०सा०) +वाह अथवा कर्त (=गत)+री>कतरी]

कतरी—(सं०)-(१) ऊख के कोल्हू का वह तख्ता, जिसमें बैल जुड़ा रहता है। पर्या०—कातरी या कातर (शाहा०, द०, पू० म०, द० भाग०)। (२) कोल्हू से लगा हुआ वह चौड़ा तख्ता जो बैल के पीछे रहता है और जिसपर बैठ कर बैलों को हाँकता है। (३) दे०—कातरी। [<*कर्तरी=(चक्र—हि० श० सा०) <*कृन्ति<√कृती 'छेदने' अथवा कत=गत+री (वि० प्र०)। (४) धान के पौधे का एक रोग (द०-प० शाहा० म० २)। मिला०—कर्तरीय=एक प्रकार की विषैली घास (मो० वि० डि०)]। (५) फलों के कटे हुए छोटे-छोटे टुकड़े (चपा० १, म० २, भाग० १) [*कृत्त]

कतिका—(सं०)-(१) वह ऊख, जो कातिक में फलता है (ग०उ०, म० २, पट० ४) दे०—... (२) कातिक में होनेवाला महीन दाने का एक सफेद धान। इसका चावल सफेद होता है (सा० १, चंपा० १, म० २, पट० ४)। [कातिक + आ <कातिक <०कार्तिक <०कृत्तिका <√कृत्ती ('छेदने')+अच्] (३) एक प्रकार का धान, जो छींटकर (बाबग) बोया जाता है और कातिक में काटा जाता है (गया, म० २, चपा०, पट० ४)।

कतिकी—(सं०)-(१) कातिक में बोई जानेवाली नील (द०भाग०)। (२) कातिक में होनेवाली फसल। मिला०—फलगुनी—फाल्गुन में बोई जानेवाली नील। [कातिक + ई <कातिक <०कार्तिका <*कृत्तिका (नक्षत्र <√कृती 'छेदन')+अण्]

कत्ता—(सं०) डोम जाति द्वारा बाँस काटने तथा बाँस की चीजें बनाने के काम में आनेवाला लोहे का बना एक कृषि यंत्र विशेष (प्राय सर्वत्र)। [<कर्त्तृ < कृत्+तृच, कर्तरी]

कथ—(सं०) खैर के पेड़ से निकाल कर बनाया गया मसाला, जो पान में खाया जाता है। पर्या०—कत्था (म० २, पट० ४, चंपा० तथा सर्वत्र)। [<*क्वाथ (हि० श० सा०) <क्वाथ <*क्वथित <कदर, खदिर (=खैर)+उत्थ (=उत्पन्न) <उत्+√स्था]

कथई—(सं०) कत्थ जैसा रंग।

कदइ—(स०)-(१) दे०—[illegible]। पर्या०—[illegible] (म० २)। (२) बाढ़ लगने के बाद नदी द्वारा छोड़ी हुई नीचे मिट्टी। पर्या०—[illegible] (म० २)। (३) मिट्टी का [illegible] गिलावा, जिसमें धान तैयार करने में [illegible] जाती है (मग० ५)। [<कर्दम]

कदवा करना—(मग०) धान का गाछा के लिए खेत को तैयार करना (दर० १, मुं० २)।

दे०—कादो करल। कदवा+करल ∠ *कर्दम (ई) + √कृ]

कदम—(स०)—(१) एक प्रसिद्ध फल, जो गोल और केसरयुक्त होता है (दर०, पूर्णि०-१, म० २, पट० ४) [कदम्ब] (२) घोड़े की एक चाल। (३) चलने में दोनों पगों के बीच का अंतर। [ कदम (अ०) ]

कदराह-(वि०)—(पट० ४, मग० ५)। दे०-काछल।

कदवा—(स०) पानी भर जाने के बाद धान पात के नाश के लिए धान के खेत की जुताई (उ० पू० म०, चपा०, म० २)। दे०—लेव। [< *कर्दमकृ]

कदीमा—(सं०)—(पू०-म०, दर० १, म० २)। दे०—काहड़ा। [ (देशी), मिला०—कद्दू, कदू (फा०) ]

कदीमा

कदीमी—(स०) वह काश्तकार, जिसे अधिकृत भूमि प्राप्त है। (प्राचीन प्रयोग)। दे०—मौरूसी। [कदीम=पुराना (फा०)]

कदुआ—(स०)लता में होनेवाला एक प्रकार का लंबा या गोल फल, जिसकी तरकारी होती है। पर्या०—कद्दू, कद्दू (द० भाग०), लौका (गया, द० मु०, चपा०, प , प० ४), लौआ (पट० १), सजिवन (पू० म०), कदुआ, लौकी (पट० १)। [कदुइया (देशी), कद्दु तुम्बी, अलाबुक (सस्कृ०) लाउ लाउ (ब०), दुध्या, भोपल (मरा०), दुधियुँ, दुधलु, आलर्डी (गु०), कदु उन्मलकाई, घडडवलकायि (क०), तोय, तुखडी काया (ते०), कद्दू, कदू (फा०) ]

कदुआ

कदोइ—(सं०)—(१) दे०—कर्दई कादो। (२) कीचड़। दे० —कादो। [< *कर्दम] (३) वह खेत, जिसका कीचड़ कभी नहीं सूखता और बिना जोते हुए ही जिसमें खेती की जाती है। दे०—पहल। [< *कर्दमिन् ]

कद्दू—(स०)— द० भाग०)। दे०—कदुआ।

कधोर – (वि०)कीचड़ मिला हुआ पानी (मु० १) पर्या०-किधोर (चपा०, द० भाग०), किनोर (चपा०), किदोइ, किदौडा (पट० ४), कदवइल (चंपा०) [कच+ओर <*कर्द (= कदम)+पूर वा< *कर्द+उदक]

कन—(सं०)—(१) बँटवारे के लिए खेत की फसल का मोटा मोटी मूल्य निर्धारण। पर्या०—कूत, कनकूत, कनकुत्ती। [सम०- *कण ]

टि०—जब किसान के खेत में फसल तैयार हो जाती है तब काटने के समय जमींदार अपने अमीन और सालिस को खेत पर भेजता है। वहाँ किसान, पटवारी-गुमाश्ता के कठाधर से जमीन नपवाता है और सालिस खेत के चारों तरफ घूमकर फसल की देखरेख करके तथा अमीन और पटवारी से परामर्श करके खेत की फसल का आनुमानिक परिमाण निर्धारित करता है। यदि यह आनुमानिक परिमाण किसान को स्वीकृत होता है तो खसरा वहीं पर चढ़ा दिया जाता है। बात वहीं समाप्त हो जाती है। किंतु यदि यह अनुमान किसान को मंजूर नहीं होता है तब दूसरे किसान मध्यस्थता के लिए बुलाए जाते हैं और वे परिमाण निर्धारित करते हैं। यदि उनका निर्णय किसी एक दल को भी अमान्य होता है तो पुनः यह मामला जाँच-पड़ताल के लिए चला जाता है। इसमें खेत की अच्छी फसल के एक हिस्से को जमींदार की ओर से और उसके बराबर ही घटिया फसल को किसान की ओर से काटकर दौनी करके अनाज अलग अलग तौला जाता है। फिर दोनों को मिलाकर उसका मूल्य-निर्धारण किया जाता है और खसरा वहीं पर चढ़ाया जाता है। उसके बाद शेष भाग को किसान काटकर तैयार करके अनाज घर पर ले जाने के लिए स्वतंत्र रहता है। किसान को जमींदार की ओर से फसल को कम उपज होने तथा काटने, दौनी करने और तैयार करने के बदले प्रतिमन दो सेर की छूट या छट्टी दी जाती है। इसके बाद अनाज का परिमाण करके दोनों में अलग अलग भागों में बाँट दिया जाता है किंतु अनाज किसान के घर रह जाता है और हिसाब लिख लिया जाता है। यदि किसान उस अनाज को

एक घास (गया)। पर्या०—काना (म०, पट०, पू०, चपा०, म० २), कना (उ० पू०म०), केना (प० मं०), कक्ना (पट० ४)। [काण्ड]

कनवा—(स०)-(उ० पू० म०) दे०—कनवह। [<*काण्डवह, +<*कोण्डवह]

कनवाहा—(स०)—(चपा०) दे०—कनवह।

कनसन—(सं०) फसल को पूर्णत हानि पहुँचाने वाली एक घास (सा०)। पर्या०—काँसी (प० म०, पट० गया, द० पू०), कास (शाहा०, उ० वि०) [देशी]

कनसी—(स०)-(१) ऊख का अंकुर (द० मु०)। दे०—आँख। (२) भूमि पर उगा हुआ पहला अंकुर (द० मुं०)। दे०—डिभी। (३) पेड की टहनी से निकला हुआ नया पल्लव (पट० ४ मग० ५)। दे-कल्ल, कनी। [<*कर्णाश <*कण्ड]।

कनसुप—(स०)—म० २)। दे०—कोलसुप।

कना—(सं०)-ऊख का एक रोग विशेष, जिससे ऊख के अंदर के रेशे लाल हो जाते हैं और उतनी दूर का रस और मिठास कम हो जाती है (मग० ५ पट० ४, म० उ० वि०)। [कना>कान<*काण्ड]

कनाइल—(वि०)—(१) कीडा लगा हुआ (चपा० १)। [कन+आइल (वि० प्र०) <*काण्ड](२) कीडा लगा हुआ ऊख का पौधा (ग० उ०)। दे०—सीना। पर्या०—रताइल (पट० ४)। [कन+आइल (वि० प्र०) <*काण्ड]

कनाई—(स०) दे०—कना। [कना+ई (प्र०) <कान <*काण्ड]। लोको०—'ऊख कनाई काहे से, स्वाती पानी पाये से'—घाघ (=स्वाती का पानी पाने से ऊख काना हो जाता है।)

कनाठ—(स०) बाँस का वह टुकडा, जिसके दोनों किनारों पर आँटी के जोडे बाँधकर एक जगह से दूसरी जगह ढोये जाते हैं (प०)। दे०—बिहन-ढोवा। [देशी, मिला०—स्कन्ध= तरुस्कन्ध, शाखा]

कनाठा—(स०) एक प्रकार का कीडा, जो दलहन कपास और तम्बाकू के पौधों में लगता है (द० भाग०)। पर्या०—कन्ही (द० मुं०), छीरी (द०-प०), छेड़ी (उ० प०, म०), छीरा (चपा०)। [देशी, मिला०—स्कन्ध+स्थ]

कनाह—(स०) कीडे लगा ऊख का पौधा (म०, चपा० द० प० शाहा म० २)। दे०—सीना। [काना+ह <*काण्ड]

कनाहा—(स०)—(द० मु०)। दे०—कनाह [<*काण्ड]।

कनिक—(स०) गहूँ या जौ का मोटा आटा (चपा०, म० २ भोज०)। द०-आँटा। [<*कणिक, <*कण]

कनियाएल—(क्रि०) बोए हुए बीज के अंकुर से पहले पहल पत्ता निकलना (पट०, गया)। (वि०) पहले पहल निकले हुए पत्तोंवाला अंकुर। दे०—पतिआएल। [कनिआ+आएल (क्रि० प्र०) <*कण <*कणिश]

कनियाल-(स०) एकप्रकार का धान। [मिला०—कर्णिकार]

कनिल—(स०) परती जमीन जोतने के दो वर्ष बाद का खेत (द० भाग०)। दे०—खील। [मिला०-कर्णि=टुकडा करने या काटने की प्रक्रिया (मो० वि० डि०)]

कनेटी—(स०) कूड की किल्ली से बाँधनेवाली रस्सी (उ०-प०)। पर्या०—कुँडियाठी (ग० उ०), चोरकिल्ली (चपा०, उ०-प० म०)। [कन+एटी, कन <*कर्ण एटी <ऐंठल (क्रि०) <*आवेष्टन]

कनल—(स०)—(१) बैलगाडी के जुए में लगी काठ लोहे या पीतल की बनी किल्ली, जो बैल के कंधे का बहकना स रोकती है (मु०-१)। [कन+एल ∠*कर्णकील, मिला०—कणोर] (२) एक प्रकार का फूल, जो लाल, पीला, सफेद और अन्य रंगों का भी होता है (दर० १, पूर्णि १)। [<*कर्णिकार, <*कणेर]। (३)—(दर० १, पूर्णि० १) द —कनल।

कनैल—(स) (१) तम्बाकू या किसी पौधे के ऊपर का भाग काट लेने के बाद उसमें से निकला अंकुर या नई पत्ती (द०म०)। दे०—दोंजी। (२) जुए के दोनों पल्लों को जोडने के लिए बने कप के

कनल

कपास फूटल—(मुहा०) कपास का फूटना, फली का खिलना (प०)। पर्या०—बौंगा फूटल (म०), बौंगो फूटल (द० भाग०), फोटा (द० मु०)। [कपास+फूटल <*कार्पास +*स्फुट<√स्फुट]

कपुरिया—(स०) एक प्रकार का नीबू, जिससे कपूर जैसी गंध आती है (चपा०, म०-२)। [कपुर+इया (स्वा० प्र०) <*कर्पूर]

कपुसार—(स०) एक प्रकार का अगहनी धान जो पीलापन लिए उजला होता है और जिसकी जड़ और फुनगी काली सूँड़दार तथा चावल उजला एवं महीन होता है (म० २)। [<*कपिश+शालि]

कपूरनि—(स०) एक लत्ती विशेष (चपा० १)। [देशी मिला०—कर्पूर]

कपूरनी—(स०) एक प्रकार की लता (दर० १, पूर्णि० १)। [देशी, मिला०—कर्पूर]

कपूरसाह—(स०) कपूर की तरह गंधवाला आम (पट० १)। [कपूर+साह< *कर्पूर]

कपूरी—(स०) पान का एक उत्तम भेद जिसका पत्ता बड़ा कोमल होता है। यह कम कड़ुआ और खाने में स्वाद युक्त होता है (म० २ मग० ५)। [<*कर्पूर]

कफ्फा—(स०) नई अफीम से बहा हुआ रस जो चिथड़े आदि पर इकट्ठा कर गाढ़ा किया जाता है (सा०, द०-मुं०)। दे०—कफा। [कप्पा (=चिथड़ा) <*कर्पट]

कफा—(स०) दे०—कफ्फा। पर्या०—काफा (शाहा०), कफ्फा (सा०, द० मुं०)। [कप्पा (=चिथड़ा)<*कर्पट]

कबज—(स०) किराया या मालगुजारी देने के प्रमाण में लिखा हुआ पत्र। दे०—रसीद। पर्या०—फारिज (मग० ५)। [<*कब्ज (फ०)=अधिकार]

कबजाना—(स०) मालगुजारी की रसीद लेने के लिए प्रति रुपया एक पैसा पटवारी के द्वारा निर्धारित देय (पू० म०)। दे०—रसिदाना। [कब्जा (उर्दू), <*कब्ज (फ०)]

कबरा—(वि०) दो रंगों का बैल आदि मवेशी, जिसका आधा देह उजली और आधी काली हो। (पट० १, चंपा० पट० ४, मग० ५)। पर्या०—चितकबरा (पट०-४, चपा०, मग० ५)। [कबरा<*कर्बुर]।

कबरिया—(स०) धान के बिड़ार से बौआ उखाड़ने वाला मनुष्य। (मग० ५) पर्या० - कबरिहा (सा०), मोरकबरा (द०-मुं०, मग० ५)। [<कबारल (=उखाड़ना—क्रि०) (देशी) मिला० √कर्ब गतौ]

कबरिहा—(सं०) बिड़ार से बीया उखाड़नेवाला मनुष्य (सा०)। दे०—कबरिया। [(देशी) दे०—कबारल (क्रि०)]

कबली—(सं०) उजले वर्ण का बड़े दानोंवाला मटर (गं० द०, मग० ५) दे०—कबिली। [काबली< काबुली]

कबाड़ल—(क्रि०) उखाड़ना, अलगाना नोंचना (मू० १, म०-२, मग०-५) [देशी]

कबारल—(क्रि०) फसल, घास आदि का उखाड़ना। दे०—कबाड़ल।

कबारी—(स०)—(१) कबाड़नेवाला (२) साग सब्जी बेचनेवाली कुंजड़ों की तरह एक जाति (मु० १, म० २, मग० ५)। [देशी]

कबाला—(स०) वह दस्तावेज, जिसके द्वारा किसी की जमीन आदि संपत्ति दूसरे के अधिकार में जाती है। दे०—बैनामा। कबाला लिखल। (मुहा०)=कबाला लिखना। कबाला लिखावल (मुहा०) = कबाला लिखाना। [कबाला (अ०)]

कबिली—(सं०)-(१) (गं० उ०) दे०—कबली। पर्या०—कबली (गं० द०), घेमली (द० पू० म०)। (२) चने का एक भेद जो बड़ा और उजला होता है (काबुली (शाहा० १)। [काबुली]

कबुरी—(सं०) दे०—कँवरी।

कबूलियत—(स०) वह दस्तावेज जिस पट्टा लेने वाले पट्टे की स्वीकृति में ठीका देनेवाले या पट्टा लिखनेवाले को लिख देते हैं। पर्या०—करारनामा (प० ४, मग०-५ सा० १)। [कबूलियत (स्त्री० उर्दू)< *कबूलियत (अ०) कबूलात, कबूलायत (मरा०)]

कमकोढ़ी—(वि०) कामचोर, आलसी । [काम+कोढ़ी < काम+कोढ़ी, काम < कर्म, कोढ़ी < कुष्ठी]

कमची—(स०) बाँस को चीरकर बनाई गई उसकी पतली फट्टी (चपा० १, म० २) । पर्या०— कमाची—(पट० ४, माग० ५) । [कम्चिरा (= बाँस की पतली डाली) । [(मो- नि० डि०)] ।

कमरकल्ला-(स०)-(१) बंधागोभी, जिसमें पत्तों का संपुट होता है, बाद में इसमें फूल हो जाता है (मुं०-१) । दे०—करमकल्ला । (२) सोनारों की एक अछूती उपजाति (माग० ५) [कमर + कल्ला < करम + कल्ला]

कमरकल्ला

कमरख—(सं०) एक प्रकार का फल । इसका वृक्ष मध्यमाकार होता है पत्ती एक डेढ़ अंगुल चौड़ी और दो अंगुल लम्बी होती है, जेठ-असाढ़ में फूलता फलता है, पका फल खट्टा मीठा होता है, फल की अचार चटनी बनती है । यह दवा के काम में भी आता है । कत्थ का रंग भी बनता है (दर० १, पूर्णि० १, पट० १ म० २, पट० ४, माग०-५)। [< *कर्मरङ्ग (संस्कृ०) < कम्मरङ्ग (प्रा०) कर्मारक ]

कमर खोलाई—(स० ) पुलिस अधिकारियों मजिस्ट्रेटों के अर्दलियों या पुलिस कांस्टेबलों द्वारा ग्राम में प्रवेश करने या शिविर कायम पर माँगा गया पुरस्कार । दे०—गल्लामी । [ कमर + खोलाई ]

कमरसायर—(सं०)-(१) लोहार के काम करने का निश्चित स्थान । पर्या०—लोहसारी (मा०, (चंपा०, प० ४, माग० ५) कमसारी, मर्दई (द० भाग०) कमरसाल ( सा० १ ) । (२) बढ़ई के काम करने की जगह । पर्या —कमरगार (मुं० १ भाग १) । [ कमर + सायर < कर्म + शाल, कर्म + शाला ]

कमरसार—(स०) कमारों या बढ़इयों का कमरा या घर (मुं० १) । [कमार + सार < ०कम्मसाल < कर्मशाला ] ।

कमरसारी—(स०) दे०-कमरसायर । [कमार + सार + ई < कर्मार + शाल, कर्मशाल]

कमरसाल—(सं०) लोहारों के काम करने का स्थान, कमसार ( सा० १ ) । [कमार + साल < *कर्मशाल < *कर्मारिशाल ] ।

कमरिया— (स०) मजदूर । पर्या०—जन (म०, द० पू० म०, चपा०, म० २) जनिहार, कमियाँ (पट०, गया, द० मु०, चपा०), चाकर (= वेतनिक नौकर)—(म०), बहिया, चरवाह (वेतनिक नौकर), रोजहा = रोज की मजदूरी पर काम करनेवाला । हाकिमहुकिम-वह मजदूर, जिससे बिना मजदूरी दिए बलात् काम कराया जाता है । बेगार (गया) । [ < *कर्मन्, < *कर्मिक ]

कमरी—(स०)-(१) कटहल के फल का छिलका (शाहा० १, म० २ पट० ४, माग० ५, सर्वत्र) । [कमर + ई (स्वार्थ प्र०), < ०कम्बर] (२) वह बैल, जिसकी कमर झुकी हो (पट० १, चंपा०, पट० ४ माग० ५), कमर + ई < कमर (फा०), मिला०—कम (संस्कृ०) = पग]

कमल—(स०) एक प्रसिद्ध फूल । यह पानी में होता है तथा करीब करीब संसार के सभी भागों में पाया जाता है । यह अधिकतर लाल, सफेद और नीले रंग का होता है । कहीं कहीं पीले रंग का भी होता है । इसका पत्ता गोल-गोल बड़ी थाली के आकार का होता है, जिसे पुरइन कहते हैं (दर० १, पूर्णि०, मुं० २, चंपा० प० ४ मा० ५, सर्वत्र भी) । [संस्कृ०]

कमल

कमलगट्टा—(सं०) कमल के फूल का बीज (पट ४, माग० ५ चंपा० सार०, अन्यत्र भी) । [कमल + गट्टा गट्टा < गट्ठा < ग्रन्थ(संस्कृ०) गंठा प्रा०)-गु- ग्रा, गंठिआ प्रा०) गट्ठा (हि०)]

कमलफट्टा—( स० ) कमल के फूल का बीज (कू०-१) । [कमल + फट्टा फट्टा (हि०)]

कमला पसाद—(सं०) राजा साहबाना एक प्रकार का धान (गया) । [ कमला + प्रसाद < ०कमला + प्रसाद (?) ]

कमाई—(सं०) ऊँची जाति के खेतिहारों के लिए मूंग देने में मुक्ति (पू० म०) । दे०—आगे ।

पर्या०—जागीर (पट० ८, चपा०, मग० ५)। [ देशी ]

कमाइल—(क्रि०)—(१) काम करना, (२) जोतना कोड़ना आदि कृषि कार्य करना, (३) कच्चे चमड़े को सिद्ध करना, (४) किसी खेत को जोत कोड़ कर तैयार करना (चंपा० १, म० २)। (वि०) कमाई हुई मिट्टी, खेत, चमड़ा, आदि। पर्या०—कमायल (भोज०, आज०)। [कमाइल कर्मन्]

कमाई—(स०)—(१) किसी तरह के काम करने के बदले बढ़ई, चमार आदि को दी जानेवाली मजदूरी। (२) नये कोल्हू बनाने के बदले बढ़ई को दी जानेवाली मजदूरी (उ०-पू० म०)। दे०—खान, भाँवर। (वि०) कमाया हुआ, अर्जित। (३) कृषि साधनों की मरम्मत करने आदि के बदले मिलनेवाली मजदूरी (शाहा० पू० म० पट० ४)। दे०—कठा। (४) अगाऊ मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (प० पट० ४)। दे०—अगवाड। [ < *कर्मन् ]

कमाउन—(स०) दे०—कमनी।

कमाची—(स०) दे०—कमची।

कमायल—(क्रि०) दे०—कमाइल।

कमार—(स०)—(१) लोहा-लकड़ी का काम करनेवाली एक जाति। दे०—लुहार। (२) लकड़ी का काम करनेवाली एक जाति। दे०—बढ़ई। [< *कर्मार]

कमाघट—(स०) खुरपी से खर पात निकालने की प्रक्रिया (दर० १ पूर्णि० १)। पर्या०—सोहनी (चपा०) निकौनी (पट० ४ म० २, मग० ५)। [ काम < *कर्मन् ]।

कमायल—(क्रि०) दे०—कमाइल।

कमासुत—( वि )—(१) काम करनेवाला, (२) अधिक परिश्रम से काम करनेवाला (चपा० १, पट० ४, मग० ५, म० २)। [कमा+सुत < कमाना (हि० क्रि०) + सुत ]

कमिअई—(स०) हलवाह को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (पट०, पट० ६ मग० ५)। [ कमाइल ( क्रि० ) < *कर्मन् ]

कमियई—(स०) अग्रिम मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (पट०, गया, द० मु० पट० ४, मग० ५)। दे०—अगवड। पर्या०—कमियाँ [ कमाइल (क्रि०) < *कर्मन् ]

कमियाँ—स०)—(१) अग्रिम मजदूरी लेकर काम करनेवाला मजदूर (पट०, गया, द०-मु०)। दे०—अगवड। (२) वह परंपरागत नौकर या दास, जो अपने जमींदार स्वामी की इच्छा के बिना न तो उस परिवार को छोड़ सकता है, या विवाह कर सकता है और नहीं कोई दूसरा काम कर सकता है (गया०, पट०, द० मुं० पट० ४, मग० ५) दे०—नफर। [< *कर्मन् ]

कमियौटी—(स०)-(१) मजदूर को दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी (गया)। (२) हलवाह को नियुक्त करते समय रुपये, अन्न या जमीन के रूप में दी जानेवाली अग्रिम मजदूरी। (गया, पट० ४, मग० ५)। दे०—हरवर। [< *कर्मन् ]

कमी—(स०) ऊँची श्रेणी के काश्तकारों को मिलनेवाली भूमि कर की छूट (पट०) दे०—माफी। [फा०]

कमीना—(स०)—(१) अधिक मेहनत से काम करनेवाला। (२) छोटी जाति के काश्तकार (शाहा०)। दे०—राड जाति। (वि०)—(३) बदमाश, बुरे आचरण का व्यक्ति। [< कमीन (फा०) ]

कमीनी—(स०) मजदूरी। [ < कमाइल (क्रि०) < * कर्मन् ]

कमुआ—(स०) एक प्रकार का चिकना कीड़ा, जो पौधों में लगता है (पट०)। दे०—कम्मा। [ देशी ]

कमेडा—(वि०) काफी काम करनेवाला मनुष्य (चपा० १)। [ < *कमठ < *कर्मन् ]

कमैनी—(स०)—(१) छिछली कोड़ाई, खुरपी, कुदाल आदि से हल्के हल्के कोड़ना (चपा०, म०, म० २ मग० ५)। दे०—खुरपियाना। (२) छिछली कोड़ाई करके अनाज के खेत की घास आदि की सफाई (म० उ०)। दे०—सोहनी। पर्या०—कमाउन (दर०-१ पूर्णि० १), कमोन (दर० १)। [कमाइल (क्रि०) < *कर्मन् ] (२) कृषि, साधनों की मरम्मत आदि करने के बदले बढ़ई को मिलनेवाली मजदूरी (द० मु०, चपा०)। दे०—बन। [कमाना (हि० क्रि०), कमाइल (बिहा०) < *कर्मन् ]।

करजखोर—(वि०) कर्ज लेकर निर्वाह करने वाला (पट०, पट० ४, मग० ५, म० २, चपा०, भाग० १)। दे०—रिनिहा करजखौक। [करज+खोर < क़र्ज (अ०) + ख़ुर (फा०)]

करजखौक—(वि०) कर्ज लेकर जीवन निर्वाह करनेवाला (पट०, म० २, पट० ४, चपा०, मग० ५)। दे०—रिनिहा। [करज+खौक, खोउ<खाना (हि०), खायल (बिहा०)]

करजवाम—(स०) दे०—करजा। [करज+वाम =कर्ज, दोनों एक ही अर्थ के वाचक हैं]

करजाँधिल—(स०)—(पट० ४, मग० ५)। दे०—करवजाँघी।

करजा—(स०)—(१) पशु खरीदने या कुआँ आदि बनाने के लिए दी जानेवाली अग्रिम द्रव्यराशि, ऋण। पर्या०—तगावी। (२) निश्चित अवधि के लिए सूद पर उधार लिया जानेवाला द्रव्य। पर्या०—करज (स०द०), करजवाम, पैंचा। [< *कर्ज—(अ०)]

करती मूरी—(स०) दूहने के समय बहलाने के निमित्त मृतवत्सा गौ या भैंस के सामने रखी गई घास या भूसे से भरी बछड़े या पाड़े की खाल (गया) दे०—लगावन। [करती+मूरी, मूरी< मूड़ < *मुड, करती< *कृत वा *कृत्त (?)]

करदुम्म—(स०) वह बैल, जिसकी देह उजली और पूछ काली हो (पट० १, पट० ४ मग० ५)। [कर्र+दुम्म< कार (बिहा०)+दुम्म (फा०)]

करवीर—(स०) एक प्रकार का पीला फूल जिसकी पत्तियाँ लंबी होती हैं और पौधा मूल से ही शाखावाली झाड़ी की तरह होता है (दर० १, पूर्णि० १) [< *करवीर]

करमकल्ला—(सं०) पत्तियों से भरी हुई गोभी या पत्ती-साग की जाति की एक तरकारी (पट० ४ मग० ५, म० २)। पर्या०—बंधाकोबी। [करम+कल्ला < करम (अ०) + कल्ला (हि०)]

करमा—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लंबा बालवाला धान। यह नीची जमीन में रोपा जाता है। (चपा०, म० २)। [मिला०—करम, कलम]

करमिया—(स०) एक प्रकार का उजला शकरकंद। दे०—देसी। [मिला०—करमी]

करमी—(स०) जल या दलदल में होनेवाली एक लता जिसके फल छोटे एवं उजले-बैगनी रंग के होते हैं इसका साग होता है तथा यह पशु खाद्य भी है (द० भाग०, पट ४, मग० ५, म० २)। पर्या०—करमीलत, करेम, (द० प० शाहा०), कर्मी (वर० १)। [< *कलम्ब < *कलम्बी]

करमीलत—(सं०) दे०—करमी। [करमी+लत < कलम्बीलता]

करमोआ—(स०) वह वस्तु, जो पूरी भींगी न हो (खासकर अन्न)—(चपा १ पट० ४ मग ५)। [कर+मोआ, मोआ< मोअल (बिहा०)= (मिगोना सं०< √मिद् (सींचना) वा< √मव (=बंधन) (?)]

करुआ—(स०) छोटे पत्तों वाला मीठा पान (प०, म० २)। [कटु (?)]

करल—(क्रि०) करना, काम करना। मुहा०—खेती करल =खेती करना।

करवानी —(स०) दे० कँड़वानी।

करसी—(स०)—(१) गोबर के स्वत सूखे हुए टुकड़े जिनका जलावन होता है (म० २, चपा० पट० ४ मग० ५ आज०)। पर्या०—अमारी (द० मुं०, भाग०, गया, मग० ५, पट० ४)। (२) (पू०)। दे०—खादर। (३) गदहे की लीद (सा १)। [< *करीष]

करहनी—(सं०)—(१) छोटे कर बोये जानेवाले ललगादिया धान का एक प्रधान भेद, जिसकी बाल काली होती है (पट०, पट० ४, मग० ५)। दे०—ललगादिया। (२) छींट कर बोया (बावग) जानेवाला काली बालों वाला उत्कृष्ट धान (द० मुं०, गया)। (३) छोटे काले दानावाले धान का एक प्रकार (द०-प० शाहा०, सा०)। [कर+हनी < *काल+धान्य]

करहनी धान—(स०) एक प्रकार का धान जो पतला, काला और महीन होता है (पट० १)। [कर+हनी + धान < कार *काल+धान्य]

करहा—(१)—(स०) बड़े जलाशय या नद से

तक तक जानवाले जल प्रवाह का भाग या नाली (पट०, सा०, शाहा०)। दे०—पन। (२) पन से निकलनेवाली नाली। [<*गर्त् = नहर, गन्दा (गड्ढा), ताल, आग। "गर्त् पुमान् अग्नीपाग्नौ स्त्रियां कुल्येऽपिखातयोः।" (मेदि०)] (३) सींचन के निमित्त बनी हुई नाली का गहरा आंतरिक भाग (प०, पट०, गया)। दे०—आरा। (४) नाली के किनारे का घेरनेवाली उठी हुई मेंड़ (शाहा०, पट० गया)। दे०—मेंड़ [<*गर्त् = नदी, नहर, ताल] (५) कोल्हू के सामने बना हुआ लोहे का परनाला, जिससे होकर ऊख का रस नीचे के बरतन में गिरता है। (द० भाग०, पट० ४, मग०-५)। दे०—नाली।

कराई, कलाई—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो हल्की रंग का छोटा और बीच में उजली सी पतली रेखा लिए होता है। इसकी पकी दाल चिकनी होती है (पू० म०)। दे०—उरिद। [<*कलाय (संस्कृ०) = मटर, कलाय = (ब) = उड़द] टि०—पूर्वी मथिली अथवा द० भाग० और द० मु० में उड़द को कराई या 'कलाई' कहते हैं तथा बंगला में भी 'कलाय' ही कहते हैं, किंतु संस्कृत में कलाय का अर्थ मटर होता है।

करास—(सं०) वह बड़ी मोटी और विशेष प्रकार की बनी रस्सी, जिसमें दौनी करने के लिए बैल बाँधे जाते हैं (पू०मं०)। दे०—मसा। पर्या०—कड़ाम (बर० १, पूर्णि० १, म० २) कड़ाँव (चंपा०)। [देशी]

करार—(स०)-(१) एक पशु-खाद्य घास (शाहा०, द०मुं०)। [मिला०—करारा = अनंत मूल, सारिवा] (२) काली मजबूत जमीन जिसमें ८१ प्रतिशत मिट्टी रहती है (पट० ४, मग० ५, म० २)। दे०—केवाल [मिला०—कारल (संस्कृ०) = केलाउ मिट्टी, कराल = काला]

करारा—(सं०) नदी का बड़ा ऊँचा किनारा। पर्या०—करारा, करार, करारि, कगाड़, कड़ाड़ा, ढाह (द०) कँगनिया (द० पू० प०)। [<*करट = ऊँचा। कट काटना (हि०)+ आर = (संस्कृ०) किनारा]-(हि० श० सा०)]

करावल—(क्रि०) करल क्रिया का प्र०। कराना, काम कराना।

कराह—(सं०) ऊख के रस को उबालने का बरतन (सब०)। पर्या०—कड़ाह, कराहा। (२) नमक बनाने अथवा मील आदि के रस उबालने के लिए प्रयुक्त लोहे का बड़ा बरतन। पर्या०—कड़ाह, कराहा, कराही। [<*कटाह]

कराह के घर—(सं०) पानी बनाने का घर। दे०—चूल्हा के घर।

कराह घर—(सं०) मील उबालने का घर। [कराह + घर <*कटाहगृह]

कराहा—(सं०)। दे०—कराह। [<*कटाह]

कराही—(सं०)—(१) (पट० ४, मग० १, म० २, चंपा०, भाग०) [कराह + ई] (२) दे०—कराह (अल्पा० स्त्री० प्र०) <कटाह]।

करिंगवाह—सं०) करीन चलानेवाला (पू०, पट० ४, मग० ५)। दे०—करीन दौनवाह। [करिंग + वाह, मिला०—करिंज (देशी) = छोटी लकड़ी, करिन = बाँस का एक पात्र विशेष वंशियो वस कण्फा, (पा० स०म०), करनिन्दा = एक पात्र विशेष—(मो० वि० डि०)]

करिअथा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (बर०, पूर्णि० १, पट० ४, मग०-५, म० २)। [करि + अथा < करि < कारि <*काल, अथ <*आम्र]

करिआवामोद—(सं०) एक अगहनी तथा काला धान जिसके दाने महीन और चावल तक्कर तथा सुगंधयुक्त होते हैं (शा १)। [करिआ + आमोद, करिया <*कालक]

करिकथा—(वि०)—(शाहा०)। दे०—करकथा। [करि + कथा <*काल + कन्थ, नस्मरु.....]

करिस्सा—(सं०) कालिख। करिस्साइ होंड़ी करिस्साइ हँड़िया = दुष्ट आँखों से फसल को बचाने के लिए खेत में रखी जानेवाली हाँड़ी। पर्या०—करखा, करखी (शाहा०) कारिख (गया), करखाँ (द० भाग०)। [कर्दिख्या देशी), कालिख (हि०) कज्जल (संस्कृ०)]

करिदवाह—(सं०) दे०—करीनवाह।

करिनवाह—(सं०)—(पू० पट० ४, चंपा०, मग० ५)।

करियवा—(वि०)—(१) काले वर्ण का पशु। दे०—कारी। (२) काले रंग का आम। [करिय+वा (वि० प्र०) वा <वान् <मान् <मतुप् वा <वर्ण, करिय< कारी< काली]

करिया—(वि०) दे०—कारी। [करिया< कारी <काली]

करिया, कारी—(सं०) काली उड़द (शाहा०, द० पू० म०)। दे०—डगा। [करिया< कारी <काला]

करिलत—(सं०) एक प्रकार की लता (दर० १)। [देशी]

करींग, करीन—(सं०) लकड़ी टिन या लोहे की बना हुई एक नलिका जो बीच में गहरी ऊपर खुली हुई तथा लंबी होती है और जिससे सिंचाई का काम होता है। इसकी लंबाई सात से लेकर नौ हाथ तक तथा चौड़ाई करीब एक डेढ़ फुट होती है (पू०, चंपा०, उ० विहा०, मग० ५ पट० ४, म० २, द०मु० १)। दे०—दोन।

करींग

करीनवाह—करीन चलानेवाला। [मिला०—कलिंज (देशी)= छोटी लकड़ी, कलिंज= बाँस का पात्र विशेष "कलिंजो वंशकर्परी (पा० स० म०) कालिंगी (संस्कृत)=एक पात्र विशेष (मो० वि० डि०)]

करीङ—(सं०) दे०—करीग।

करीन, करींग—(सं०)—(पू०, दर० १)। दे०—करींग।

करींगवाह—करींग चलानेवाला।

करुअइनी—(सं०) (१)—एक प्रकार का कीड़ा (चंपा० १)। [(देशी), मिला०—कलुकीट, एक प्रकार का मच्छड़ (मो० वि० डि०)]। (२) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष जिसकी दातून अच्छी मानी जाती है फली तीखी होती है और नजर आदि से बचाने के लिए बच्चों के गले में ताबीज की तरह पहनाई जाती है। [<*करंज (संस्कृ०), करंज, करंजवा, कारेनी, डिठौरी (हि०), डहर करंज (बं०) कर जाचे (मग०) करणमी (गु०), कज (ते०) पंग (त०) पोन्नम (मल०)]

करुआ—(वि०)-(द० भाग०)। दे०—कारी। [करु+उआ (वि० प्र०)< काल, कालक]

करुआ तेलिया—(सं०) वह बैल जिसकी पूँछ काली और अन्य अंग दूसरे किसी रंग के हों (पट० १, मग० ५, पट० ४) [करुआ+तेलिया]

करुआर—(सं०) फाल को गिरने से बचाने के लिए हल में ठोका गया टेढ़ा पतला लोहा। (चंपा० १, पट० ४, मग० ५ म० २)। पर्या० करुआरा (प०) करुआरी (पट०, चंपा०, प० (म०), खूरा (द० प० शाहा०), जोंक (पट०) जाका, चोभी (द० पू० म०), गाँसी (उ० पू० म०), करुवार (भाज०)। [(देशी), मिला०—कटकर्क(=तराजू के डंडे के दोनों ओर की मुड़ी किनारी, मुड़े हुए हाथ की मुद्रा, करवार (हि०, देशी०)]

करुआर

करुआरा—(सं०)—(प०)। दे०—करुआर।

करुआरी—(सं०)—(पट०, चंपा, प०-म०)। दे०—करुआर।

करुना—(सं०) एक प्रकार का खट्टा फल, जिससे चटनी, अचार आदि बनाये जाते हैं (दर० १)। दे०—करौना। [<*कर्मर्द]

करुवा—(सं०) वह बैल, जिसके पुट्ठ, गर्दन और पूँछ चमकदार हो (पट० १)। [करु+वा (प्र०) <कार <*काल]

करेयवा सीम—(सं०) तरकारी के काम में आने वाली मटर की छीमी की तरह फलनेवाली सेम (पट० १)। [करेयवा+सीम, करेय+वा (प्र०) करिय+वा< करिय+वा< कालिक, सीम< शिम्बि]

करेल-(सं०)-(दर० १, पूर्णि० १)। दे०—करला।

करैल—(सं०)—(१) (उ० पू० म०)। दे०—करला [<*कारवेल्ल] (२) कुछ नीली काली मिट्टी (प०)। [मिला०—कामार(= बेकाल मिट्टी, कराल (=) बड़ा ऊँचा)]

करैला—(सं०) लता में होनेवाली एक प्रकार की कड़वी तरकारी। इस लता की पत्तियाँ गोल

अथवा निकालने के लिए पीतल, तांबा मिट्टी आदि का बना बरतन। पर्या०—कलसा, कलसी। (३) यज्ञ, पूजा आदि पर प्रयुक्त कलश, जिसकी मंत्रों से प्रतिष्ठा करके उसी पर देवता की पूजा होती है। [कलश (संस्कृ०) कलस (पा०, प्रा०) कलस, कलसा (हिं०, भो०) कलस (असा०), कलहोटा (ल०) कलसियो (गु०) कलसा (मरा०)]

कलसा—(सं०) दे०—कलस—२।

कलसी—(सं०) दे०—कलस—२।

कलाई—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो मटमैले रंग का छोटा और बीच में उजली सी पतली रेखा लिये होता है, इसकी पकी हुई दाल चिकनी होती है (पू० म०)। दे०—उरिद। पर्या०—कलाय (दर० १)। [<*कलाय (संस्कृ०) = मटर कलाय (बं०) = उड़द]

कलाएल—(क्रि०) फसल की बाढ़ का दब होना (द० पू०)। दे०—हुबसाएल। पर्या०—अइला गल (पट० ४, चपा०, मग० ५)। [कल्य (संस्कृ०), कड़ा (हिं०)]

कलेउ—(सं०) दे०—कलेवा। [<*कल्यवर्त्त]

कलेवा—(सं०) मध्याह्न का भोजन। पर्या०—कलेऊ, कलौ (म०), खाय (पट०) खैया (गया), खाईक (द० मु०), कलौआ (द० भाग०)। टि०—कलउ 'कलउआ 'कलऊ', 'कलो', 'कलेवा और 'कलौआ शब्द 'कल्य' से सम्बद्ध हैं जिसका अर्थ है—प्रातःकालीन प्रकाश अरुण प्रकाश अथवा प्रात काल। [<*कल्यवर्त्त=प्रातःकालीन भोजन]

कलोर—(सं०)—(१) प्राप्त-यौवना बाछी (प०, शाज०)। (२) पहल पहल आसन्नप्रसवा गाय (शाहा० १, प० चपा० १)। दे०—आसर। [<*कल्या]

कलौंजी—(सं०) एक सफेद अगहनी धान, जिसका दाना गठीला और चावल लम्बा होता है (शाहा०, मग० ५)। [मिला० कलन्जु=एक प्रकार का पौधा (मो० वि० डि०)]

कलौ—(सं०)—दे०—कलेवा। [<*कल्यवर्त]

कलौआ, कलौवा—(सं०)—(द० भाग०, मु० १)। दे०—कलेवा। [<*कल्यवर्त]

कवछुआ सेम—(सं०)—(उ० बिहा०)। दे०—कवाछ।

कवाछ—(सं०)—(१) सेम की जाति की एक फली। पर्या०—केंवाछ, भूपसेम (गया), कवछुआ सेम (उ० बिहा०) कवाँछ (पट० ६)। (२) एक प्रकार का जंगली पौधा। इसमें फल लगता है। इस फल के रोआँ के शरीर में स्पर्श करने से जोरों की खजलाहट पैदा होती है तथा उस स्थान पर खजलाकर उस उंगली से शरीर के दूसरे अंग का स्पर्श करने पर वहाँ भी खजलाहट मालूम होने लगती है। [कपिकच्छु (संस्कृ०) कवाछ कवाच केंच, क्रौंच, केंछ, केवाछ, किवांछ, किवांच (हिं०), आलकुशी, आलकुशी, शूकशिम्बी (बं०), कुहिली, खाज कुहिली, कोट खये खाज, कपाच कुहिरी, खाज कुहिली (मरा०) नसु कुगरा नसुकुगरी (क०), चुरुटी पल्ला अडुगु, टलगुंडा (ते०) कवचा, काचा, कठचो, कनुचु (ग०) पुनाक्क वाली, पूनक्ककाली (ता०), केंच, कान्च (न०), जुना (प०)]

कवाछु—(सं०)—(शाहा० १)। दे०—कवाछ। [<*कपिकच्छु]

कवाछल—(क्रि०) तंग होना (मग० ५)।

कसइलिया—(सं०) कसैली की तरह छोटा दाना वाला आम (पट० १, पट० ४, मग० ५)। [कसइली + आ (प्र०) < कसइली < कषायित]

कसमिरा—(सं०) एक प्रकार का पौधा, जिससे रस्सी आदि बनाने के लिए रेशे-जैसी चीज निकाली जाती है (उ० पू० म०, मग० ५)। दे०—सन। [देश०, मिला०—काश्मीरक]

कसर—(सं०) तौल या माप पूर्ण रूप में अनिश्चित (कमी की पूर्ति में) अंजलि या हाथ से दिया हुआ अनाज (प०, म० २)। दे०—परछा। [कसर (अ०)=टोटा, घाटा, हानि]

कसाई—(सं०) पशुओं का वध करनेवाला मनुष्य। टि०—किसान लोग काम में ढिलाई करनेवाले पशुओं को यों ही गाली देते हैं—'जाह कसया खूँटा'—(तुम कसाई के खूँटे

कोंढ़ा, कोंढ़—(सं०)—(१)-(चपा०, गया)। दे०—मक्षा, मांडा। (२) मूँज का डंठल, जो घर छाने और टट्टी बांधने के काम में आता है (चपा० १, पट० ४, मग० ५, म० २)। (३) धान के पके हुए पौधों का पुंज या टाल (मुं० १) (४) गोड़ाई। पैर का एक आभूषण (चपा० १, पट० ४, मग० ५)। [< *कण्ड, < *कटक]।

कोंढ़ी—(सं०)—(१) पशुओं को दवा आदि पिलाने के लिए बनी बांस की नली (चपा०, शाहा०, पट०-४, मग० ५, म० २, भाग० १)। पर्या०—ढरका (प० चपा०, शाहा०)। [कोंड + ई (अल्पा० स्त्री० प्र०)। [< *काण्ड < *वंशकाण्ड] (२) लकड़ी का वह गहरा बरतन, जिसमें ढेंकी के मूसल से धान कूटा जाता है- (द०-प० शाहा०, भाज०)। दे०—ओखरी। (३) चूहे के बिल का मुख्य द्वार के अतिरिक्त एक गुप्त द्वार, जिससे होकर, कभी मौका पड़ने पर, निकल भागे (चपा०)। (४) हाथी के पैर का एक रोग। इसमें हाथी के पैर में छेद हो जाता है (चपा०)। [काण्ड, मिला०—काण्डाल (= बेंत या सींक की डाली)]

कोंधी—(सं०) कोल्हू में बैल के कुबड़ (ककुद) पर का टाट का गद्दा (पट० ४)। [कन्धा, कन्ध, स्कन्ध]

कोंनी—(सं०) दे०—काढ़ी।

कोंसी—(सं०) फसल को पूर्णतः हानि पहुंचाने वाली एक प्रकार की घास (प० म०, पट०, गया, द० पू०, पट० ४, मग० ५)। दे०—कसन। [कॉस + ई (स्या० प्र०) < *काश]

काउन—(सं०)—दे० काऊन।

काउर—(सं०) धान की दौनी में पुआल निकाल लेने के बाद बचा हुआ उसका महीन अंश (चपा०-१)। [देशी]

काऊन—(सं०) बाजरे की जाति का, सूक्ष्म दानों वाला एक अनाज (द० मुं०)। दे०—टॅगुनी। पर्या०—काधन (दर०, पूर्णि० १), कौंधनी (दर०, पूर्णि० १)। [कङ्गु]

काकुट—(सं०) चारा काटने का एक औजार (पट० २, पट० ४, मग० ५)। [देशी]

कागजी—(सं०) एक प्रकार का नींबू, जिसका छिलका पतला होता है (दर०, पूर्णि० १, चपा० १, पट० ४, मग० ५, म० २)। पर्या०—कागजी-लेम्बो (पट०-१)। [कागज + ई (प्र०)]

कागजी लेम्बो—(सं०) (पट० १)। दे०—कागजी। [कागजी + लेम्बो]

काग बदन—(सं०) वह बैल जिसका मुंह काला और शरीर उजला हो (पट० १, पट० ४) [काग + वदन < काक + वदन]

काछ—(सं०) दलदल जमीन (सा०, मग ५)। दे०—चाल। पर्या०—कछुई माटी (पट ४, मग० ५) [< *कच्छ]

काछल—(क्रि०)-(१) पोस्ते की फली में से अफीम का उठाना या संग्रह करना (उ० प०, उ० प० म०)। दे०—उठायल। (२) किसी तरल पदार्थ को किसी पात्र से, हाथ से या किसी पतली वस्तु से निकालना। [कषण]

काछल—(वि०) वह मवेशी, जो काम करते करते रुक जाता है या बैठ जाता है। सुस्त होता है तथा काम से जी चुराता है (चपा० १)। पर्या०—कोढ़िया, कदराह (पट०-४, मग० ५)। [< *कद]

काटल—(क्रि०)—(१) तंबाकू या किसी पौधे के ऊपर का पत्ता काटना। दे०—पत्तातूरल। (२) किसी वस्तु को किसी तेज हथियार से काटना। (३) फसल काटना। पर्या०—लौनी करल (द० प० शाहा०), छोलल (क्रि०) = ऊख काटना (उ० प०), गेंडा करल (प०, पट०, गया, चपा०, द० मुं०), घूर काटल (द० भाग०), पतौर पारल—ऊख काटने की प्रक्रिया (द० भाग०) कटनी, कटिया, लौनी —फसल की कटाई। कटनी = फसल के कटने का समय। [काटना (हिं०) < √कृन्ती (छेदने)]

काड़ा—(सं०) भैंस का नर-बच्चा (पट० ४, मग० ५, भाग० १)। पर्या०—काड़ी (स्त्री०) (पट० ४, मग० ५, भाग० १)। दे०—पाड़ा। [< *कण्ट, "कण्टः कूर्मकर्परे। जायमान विषाणाग्रमहिषीशावकेऽपि च।"—(मेदि०)]

काढ़ी—(सं०) भैंस का मादा बच्चा। दे०—काड़ा। [काड़ा + ई (प्र०), काण्ट < *कण्टाद]

क्याल—(स०) अनाज की तौल-जोख करने वाला (मु० १)। [मिला०-किराट (रा० त०) =बनिया। मिला०-काकिनी—"काकिनी पणपादेऽपि मानपादे वराटके"—(मेदि०)]

क्याली—(सं०)—(१) गाड़ीवानों द्वारा प्रति रुदनी जमींदारों को दिया जानेवाला यात्रा यात शुल्क (उ० पू० म०)। (२) अनाज आदि तौलने का काम या उसकी मजदूरी (द० मुं० १)। (३) अन्न विक्रेता की तौल पर निर्धारित कर। पर्या०—केयाली, परदाना (पट०)। टि०—कभी कभी गाड़ीवान गाड़ी लेकर जहाँ रात बिताते थे, वहाँ भी यह शुल्क लिया जाता था। [(देशी०), मिला०—किराट (रा० त०) =बनिया, काकिनी—"काकिनी पणपादेऽपि मानपादे वराटके"—(मेदि०)]

किराइल—(वि०) कीड़ा लगा हुआ (सा० १)। पर्या०—खराब, पिलुआइल, घुनाइल। [किर+आइल (प्र०) <*कीट]

किराइल—(क्रि०)—(१) कीड़ा लगना (चंपा० १)। [किरा+इल (प्र०) <कीट]

किराना—(स०) पसरहट्ट की वस्तुएँ, फुटकर विक्रय-पदार्थ (चपा० १, पट० ४, मग० ५)। [∠*कीर्ण]

किराया—(स०)—(१) जमींदार की ओर से अन्नविक्रेता की नाप पर निर्धारित कर (गया)। दे०—पोटी। (२) किसी वस्तु या मकान आदि का भाड़ा। [अ०]

किरौना—(स०) एक उड़नशाला दुर्गन्धयुक्त कीड़ा जो फूल होने के पहले ही ज्वार आदि पर प्रहार करता है (द० प० शाहा०)। दे०—गाँधी या गंधी। [किर+औना (प्र०, देशी) <*कीट]

किरीयाँ—(सं०) एक प्रकार का अन्न (दर०, पूर्नि०-१)। [देशी]

किर्री—(स०) मकई, मटर आदि का अधफूटा पकना। पर्या०—खमही (मुं० १, मग०-५, भाग०-१), दुर्री, ठोरी (पट०-४ मग०-५, चपा०, म० २)। [(देशी), मिला०—स्फिल (संस्कृ०)]

किल्ला—(स०)—(१) (द०-प० म०)। दे०—अखौता। (२) पानी पटाने के काम में आने वाले लाठे के पिछले भाग के अंत में लगी कील, जिसके सहारे मिट्टी आदि का भार बाँधा जाता है (पट०, द० पू० पट० ४, मग० ५)। (३) मवेशियों को बाँधने के लिए लकड़ी या बाँस का बना छोटा स्तंभ (खूँटा), जो जमीन में गड़ा रहता है। दे०—खूँटा। (४) जाँता के दोनों पाटों के बीच के छेद में लगा खूँटा। (५) कुम्हारों के चाक की धुरी (प०, पट०-४, चपा०, मग० ५)। दे०—कीला। [∠*कील, ∠*कीलक (सस्कृ०), कील (पा०, प्रा०), कील, किल्ली (हिं०), किलो (नें०), कील (ब०), कीला (ओ०), कीलिबा (ओ० क्रि०) =कील ठोकना, कीर कीरो, कीरी (सि०), कीँल्ला, कीँल्ली (प०), किल्ल, किल्ली (ल०), कीली (गु०), किल्ली, कील (मरा०), क्युलु (कास्म०), किलो (रोमा०)]

किल्ला

किल्ली—(सं०)—(१) लकड़ी की कील या खूँटी, जिससे मोट रस्सी में बाँधा जाता है। पर्या०—गुल्ली। [कील, कीलक] (२) कूँड़ में आर पार लगी हुई फट्ठी, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है। पर्या०—गुल्ली, रनकिल्ली, पुल्ली (द० भाग०)। (३) एक पच्चड़, जो अपनी जगह पर 'कढ़हड़ी' को कसे रहता है। दे०—परकिल्ला। [कील, कीलक, खील]

किसन अरपन—(स०) कृष्ण की पूजा के निमित्त अर्पित कर मुक्त भूमि। दे०—सावल्प। [किसन+अरपन< ०कृष्णार्पण]

किसमिस—(सं०) एक प्रकार का सूखा और मीठा मेवा, जो अंगूर को सुखाकर बनाया जाता है। यह कश्मीर, बलूचिस्तान, पाकिस्तान के पश्चिमी सीमांत प्रदेश और अफगानिस्तान के इलाके में होता है। [किशमिश (फा०)]

किसमिसिया—(स०) एक बैल, जिसका रंग किशमिश की तरह हो (पट० १)। [किसमिस+इया (प्र०)<किशमिश]

कुँड़िआ चास (१) (सं०)—कुएँ से पटाई जाने वाली भूमि (द० भाग०) पर्या०—मोटवाही (प०)। [कुँड़िया+चास, कुँड़िया< *कुंड, चास (देशी)]

कुँड़ियाठी—(सं०) (ग० उ०)। दे०—कनेठी। [कुँड़िया+ठी, आठी (प्र०), यथा-भुजनाठी= भूँजन की सींकों का बंडल अथवा लुकाठी। अथवा ठी, आठी< *आवेष्ट ग्रंथि]

कुँड़ी—(सं०)—दे० कूँड़।

कुंडी—(सं०) (१)—ढेंकुल (लाठा) में लगा हुआ, पानी निकालने के लिए मिट्टी या लोहे का पात्र। दे०—कूँड़। (२) हेंगा खींचने के लिए रस्सी की जगह पर काम में लाई जानेवाली बाँस की लग्गी (व० मुं०)। पर्या०—बँसजोती (द० भाग०), अरौआ। (३) किवाड़ के दोनों पटटों को बंद करने के लिए सिकड़ी लगाने के निमित्त चौखट में जड़ी कील। [(देशी) मिला०—कुंडी (हि०), < *कुण्ड]

कुंद—(सं०) चंपा की जाति का एक फूल, कुमुद (दर० १, मग० ५)। [< *कुन्द]

कुंदरी—(सं०) तरकारी के काम में आनेवाली एक फली (मुं० १ पट० १, पट० ४ मग० ५, म० २, चपा० भाग० १)। [कुन्दुरु]

कुआँ—(सं०) गहरा खोदा हुआ गोलाकार (कच्चा या पक्का) गढ़ा, जिससे पानी निकाला जाता है। (विहा०, आज०)। दे०—कुँआँ। [कूप]

कुआर—(सं०) आश्विन, भारतीय वर्ष का सातवाँ तथा शरद ऋतु का पहला महीना। (अधिकतर सितम्बर के अंत और अक्टूबर के आदि के प्रायः १५ दिन)। दे०—आसिन। [कुमार (?)]

कुआरी—(सं०) आश्विन में काटा जानेवाला एक धान। पर्या०—असनी (पट ४, मग० ५)। [कुआर+ई (प्र०)< कुमार (?)]

कुइयाँ—(सं०) दे०—बच्चा। [कु+इयाँ (अल्पा० स्त्री०) <कुआँ+इयाँ< *कूप]।

कुकरौंधा—(सं०)—(१) एक पशुखाद्य घास। दवा में भी प्रयोग होता है (पट० ४, मग० ५ म० २)। [कुकुर+औंधा< *कुक्कुरद्रु]

कुकाठ—(सं०) लकड़ी का वह कुंदा, जिसपर कुछ काटा जाता है (पट०)। दे०—निसुहा। पर्या०—कुकाठी (पट० ४)। [कु+काठ <काष्ठ]

कुकाठी—(सं०)—(पट० ४)। दे०—कुकाठ। [कुकाठ+ई (प्र०)-(देशी) या< कुकाष्ठ (?)]

कुकुढी—(सं०) कपास में लगनेवाला एक प्रकार का कीड़ा (सा०, म०)। [(देशी), मिला०—कुरूरु= एक प्रकार का कीड़ा (मो० वि० डि०)]

कुकुरौना—(सं०) एक प्रकार की घास (चपा० १)। दे०—कुकरौंधा [कुकुरौना< कुकुरौंधा< *कुक्कुरद्रु]

कुकुसा—(सं०) एक पशुखाद्य घास (द० प० शाहा०)। [(देशी), कु+कुसा<कुश (?)]

कुकुही—(सं०) हेमंतऋतु के अनाज को नष्ट करने वाला एक कीड़ा (उ०-प०)। [< *कुक्कुभी]

कुचा—(सं०) कच्चे आम को कूँच कर बनाया हुआ अँचार या खटाई (पट० १ पट० ४, मग० ५, चपा०, द० भाग०)। [कूचल (विहा०), कूचना (हि०) < √कुट्ट (?)]

कुटकटना—(सं०) लकड़ी का कुंदा, जिसपर गँड़ासी से चारा काटा जाता है (मग० ५)। दे०—ठेहा। [कुट+ कटना < कुट< कुट्टी, कटना< काटल (विहा०) <काटना (हि०)]

कुटका-(सं०)—(१) शारदीय फसल (मकई आदि) का डंठल (ग० उ०)। दे०—डाँठ। (२) विभिन्न जड़ी-बूटियाँ, जिनसे प्रसूता के लिए पौष्टिक औषधि बनाई जाती है। (दर०)। [कुटक= डंठल, कायड—(मो० वि० डि०)]

कुटकी—(सं०) अन्न के पौधे की डाँठ का छोटा छोटा टुकड़ा (चंपा० १, म० २)। [कुटक+ई (अल्पा० स्त्री० प्र०) <कुटक]

कुटकुर— (सं०) सूखी हुई जमीन (शाहा० १)। [देशी]

कुटरी—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—कुट्टी। [√कुट्ट या< *कृत्त< √कृती (छेदने)]

कुटिया—(सं०)-(१) घास, फसल की डंठल आदि का कटा हुआ पशुओं का महीन खाद्य (द० भाग०)। दे०—कुटटी। [कुट्टी < कुट्टित< √कुट्ट, कट्, या< *कृत्त< √कृती (छेदने)] (२) घास पात की बनी झोपड़ी, साधुओं का मठ। [कुट+इया (प्र०) <कुटी]

कुटियावल—(क्रि०) घास पात काटकर कुटटी

कोदाल (ब०, मस० ), कोदाल ( ओ० ), कोदारि ( सि० ), कोदालो ( गु० ) कुदाल, कुदाला ( पं० ), कुदल ( मरा० ), कोडालि (द्रा०) <कुठार (१), कुडि (सता०)] (२)सन के रेशों में बचा रह गया छोटा छोटा डठल (व०-पू० मं०) । दे०—गुदरी । [ देशी ]

कुदाल, कुदार —( सं० ) दे०—कुदारी । [ <*कुदाल, <*कुदालक ]

कुदाली—( सं० )—( ग० द० ) । दे०—कुदारी ।

कुदुरुम—( सं० ) —( शाहा० १ ) । दे०—कुदरुम । [ देशी ]

कुद्दी—( स० ) अन्न का छोटा ढर ( ब० मुं०, पट० ४, मग० ५)।—लगावल (मुहा०)= छोटा-छोटा हिस्सा लगाना, भिन्न भिन्न व्यक्तियों में किसी चीज को बाँटना । [ मिला०—कूट= राशि, कुद्य=कुड्य=दीवाल ]

कुनरी—(स०) एक प्रकार का पौधा, जिसका फल व्यंजन में प्रयुक्त होता है । [<*कुन्दुरु]

कुन्बी—(सं०) (१)—(व० भाग०) । दे०—कम्बी । ( २ ) निष्फल बीज (द० माग०) मिला०—सुग्गी । [ कु+ब्बी<कुबीज ]

कुमुदनी—(स०) एक प्रसिद्ध जलीय फूल, कुमुद (दर० १,पट० ४, मग० ५)। [कमुद कुमुदिनी]

कुमुदसार—(सं०) महीन धान का एक भेद (मुं० १) । [ <*कुमुदशालि ]

कुम्हड़—(स०) कोंहड़े की जाति का एक श्वेताभ फल, जिसका उपयोग मिठाई, मुरब्बा आदि के बनाने में होता है (प०) । दे०—भतुआ । पर्या०-सजकुम्हड़ (म० २), सीसकोंहड़ा (चपा०, भाग १) । [ <*कुष्मांड ]

कुम्हिलाइल—(क्रि०) किसी फल फूल का धूप में पड़ने या पेड़ से टूटने के बाद कुछ-कुछ सूखने लगना (चपा० १) । [कुम्हिल+आइल (प्र०) <कुम्हिल कुम्हलाना (हि०) < कुम्हलान ( हि० श० सा० ),<*कुम्लित= एक प्रकार का विपरीत, मिला०-कूष्मांड = बच्चों का एक रोग जो कूष्मांड प्रेतों के कारण होता है और जिसमें बच्चे सूख जाते हैं । कुम्लाउनु (ने०), कुम्मण (देशी०), कुमावणु (ल०), कुमाइजाणु, कूमातिजाणु (सि०), कोमये (मरा०) ]

कुम्हेस—(स०)—(द० पू० म०) । द० —कूहा । [ मिला०—कुहेला, नेटेडिका, कुहेडा ]

कुरकुट—(स०) पुआल का भूसा ( चपा० १ ) । [ <*कुकूल ]

कुरखेत—(सं०) (१) जोता हुआ वह खेत, जिसमें कुछ दिनो से हल नहीं चलाया गया हो (चपा०)। (२) मवीवारी । [ कुर+खेत< *कृष्टक्षेत्र <*कृष्य क्षेत्र <* कृत क्षेत्र ]

कुरताली—(सं०)—(१) किसान और दूसर छोटे किसान के बीच बटाई पर की गई खेती की फसल का निश्चित परिमाण में विभाजन (ब० भाग०, मुं० १) । [ कुरत+आली<कृत +अर्घ<*कृतार्घ अथवा * कृतार्धिक या कृष्टार्ध, कृष्टार्धिक ] (२) फसल के आधा-आधे या ९/७ के बँटवारे की बात पर जमीन जोतना । अधबँटये पर जमीन को उपजाने के लिए लेना (मुं० १) ।

कुरताली करल—(मुहा०) कुरताली की बात पर दूसर किसान का खेत लेकर खेती करना ।

कुरथी—(स०) एक प्रकार का दलहन, जो थोड़ा लाल होता है और बड़ा कड़ा होता है । [ <*कुलत्थ, <*कुलत्थिका (सस्कृ०), कुलत्थ कुलत्था (पा०, प्रा०), कुरथी, कुलथी (हि०), कुर्थि(न०), कुलत्था (व०)=जगली कुर्थी । कुरथ (प०), कुल्थी (प०, सि०) ]

कुरथौली—(सं०) साधारण काश्तकारो के नीच एक छोटा रयत । दे०—शिकमी । [ दे०—कुरताली ]

कुरदन - (स०)—(१) (पट०) । दे०—झाँझरी । (२) मिट्टी का बना सागर (पट०-४ मग० ५) । [(देशी), मिला —कुण्ड, कुटकंठ= घड़ा—जैसा पात्र । कुटक=कोटर (पा० स० म०), कूट=पात्र, छिपी वस्तु ।

कुराय—(सं०) वह परती जमीन जो पहली बार जोती जाती है (ब०-पू०) । दे०—नास ।

लाल रंग। ११—सोनहुला=सुनहला पीला रंग। यद्यपि पूर्वोक्त रंग केवल कुसुम से नहीं बनते हैं, किंतु इसका आधार अवश्य रहता है। गाढ़ रंग के बनाने में नील का सम्मिश्रण रहता है। कुसुम के विषय में एक पहेली नीचे दी जाती है—"बाप रहल पेटे, पूत गल बरिआत"। (जब कि बाप (कसुम का बीज) पेट (बीज कोष) में रह रहा था, उसी समय पूत (कुसुम फूल,) कपड़ों के रंग के रूप में, बारात चला गया [कुसुम, कुसुम्भ (संस्कृ०), कुसुभ (पा०, प्रा०), कुसुम, (असं०), कुसुंभ, कुसुम, कुसुंब (हिं०), कुसुंभ, कुसुमा (प०), कुसुंबो (सिं०) कुसुंबो (गु०) कुसुंब, कुसुंबा (मरा०)]

कुहरा—(सं०) ओस, कुहेसा (चपा० १)। पर्या०—कुहा (पट० ४)। [कुहेडा या कुहेला]

कुहस्सा—(सं०) सबेरे का कुहरा (नीहार)—(द० भाग०)। दे०—कूहा। [कुहेला, कुहेडा, मिला०—कुहाशय या कुहेशय<कुह (कुहर)+आशय, शय]

कुहा—(सं०)—(पट० ४)। दे०—कुहरा।

कुहेस—(सं०)-(प०, उ०-पू०, म०, द०-पू० म०, म० २)। दे०—कूहा। [कुहेला, कुहेडा, मिला०—कुहाशय, कुहेशय<कुहा+आशय, शय]

कुहेसा—(सं०)-(प०, पट० ४)। दे०—कूहा।

कूँचा—(सं०)-(१) खलिहान में अन्न बुहारने के लिए व्यवहृत ताड़ या खजूर के डंठल की जड़ को कूँचकर बनाई गई झाड़ू या कूँची। दे०—सिरहप। (२) नारियल की सींक, खजूर के डंठल और पत्तियों एवं ताड़ की पत्तियों की सींकों आदि से बनी झाड़ू। (३) दे०—कुच्चा। [कूर्च, कूर्चक (संस्कृ०), कुच्च (प्रा०), कूचा (हिं०), कूर्चो (नें०), कुची कूची (बं०), कच्च (प०), कुचिए (ल०), कचो, कूची (सिं०), कचो, कुचडो (गु०), कूचा (मरा०), कोस्सा (सिंहा०), कुच (रोमा०)=दाढ़ी]

कूँची—(सं०) छोटा कूँचा (द० प० शाहा०)। दे०—सिरहप और कूचा। [कूँचा+ई (प्रत्या० स्त्री० प्र०)]

कूँड़—(सं०)—(१) भोजन और अन्न रखने का मिट्टी का बड़ा बर्तन (प०, पट०)। (२) कुएँ से पानी निकालने के लिए लोहे का बना गोल बर्तन। दे०—ढोल। (३)*ऊख पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पेरा जाता है (पू०)। दे०—खान। टि०—पहले कोल्हू लकड़ी या पत्थर का होता था, किंतु आजकल तो लोहे का होता है। इसलिए, वैसा खोखला भाग नहीं होता है। (४) ढेंकुल में लगा हुआ पानी निकालने के लिए मिट्टी या लोहे का पात्र (विहा०, भाज०)। पर्या०-कूँड़ी, कुंडी। [कुंड, कुंडक, कुंडी, कुंडिका (संस्कृ०) कुंडिका, कुंड पा०, प्रा०) कुडोक, (दर०) कोंडु (कश्म०)=हंडा, कुंडी (बं०), कुंडी (ओ०), कुंडी (हिं०), कुन्नी (प०, ल०), कुंडो (नें०), कुंडी (गु०, मरा०), कडिया, कुलो, कुन्यु (सिंहा०)]

कूँड़ा—(सं०) (१) अन्न रखने के काम में आनेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बर्तन (ग०ज०)। पर्या०—कूंड़ी (द० भाग०)। (२) दही मथने का मिट्टी का बर्तन जो हाँडी में मिट्टी लगाकर बनाया जाता है (चपा०)। [कुंड, कुंडक]।

कूँड़ी—(सं०)—(१) उबाले हुए रस को रखने का बर्तन (द० भाग०)। दे०—मट्की। (२)—(द० भा०)। दे०—पूँड़ा। [कूँड+ई (प्रत्या० स्त्री० प्र०) <*कुंड] (३) ढर—(चपा० १)। [कूट (संस्कृ०) कूड (प्रा०)] (४) दे०—पूँड। [<कुंड]

कूआँ—(सं०) भगर्भस्थ जल निकालने के लिए खोदा गया बहुत गहरा और साधारणतः गोल कच्चा गड्ढा, जो ईंट पत्थर के बिना ही बनाया जाता है। [कूप, (संस्कृ०), कूप(पा०), कुवा, कुआ(प्रा०), कूँआ (हिं०), कूआ (ब०) कूआ (ओ०), खूआ, खूह (प०), कुवा (नें०), कुवो (गु०), कुवा (मरा०), अड़ (दर०)। प० खूह, (पं० बं०) खुह (कश्म०), खूहा (प० दरा०), खूँह (सिं०) शब्दों का मूल संभवतः खसेर खसुषु (रोमा०) है जिसका अर्थ है—छेद गड्ढा। इसी प्रकार खोह (हिं०, पं०, बिहा०) खो (गु०) भी है।

केआली—(सं० —(१) अन्न तौलनेवाले पुरुष का शुल्क ( प्रति मन सेर भर )—(द० पू०) । दे०—हटवाई । (२)-(उ० पू० म०) । दे०—किआली । [केआल+ई ( दे०—किआली, केआली)]

केओट सं०) मल्लाहों की एक शाखा (गं० उ०)।

केओटीन—(स) (१) एक प्रकार की घास (दर० १)। (२) मठों में नाचनेवाली देवदासी (चपा०)। ( ) केवट (जाति विशेष) की स्त्री। [मिला०— कैवर्त, कैवर्ति मुस्तक=एक घास ( मो० वि० डि०) ]

केकुरल-(क्रि०)-(१)जाड़ा आदि के कारण मवेशी या किसी व्यक्ति का सिकुड़ जाना (चपा० १)। (२) पाला और एक रोग विशेष के कारण पौधा का सिकुड़ना।

(वि०)सिकुड़ा हुआ। पर्या०-चेंकुरल केंकुरल। [केकुर+ल (क्रि०प्र०)<केकुर<*कक्रु टक]

केड़वारी-(स०) फलों का नया बागीचा (शाहा०)। दे०—गछली। [केड+वारि, केड़<केतकी, कदली अथवा केदार+वाटिका>वारि ]

केतकारि (स०) आश्विन, कार्तिक और अगहन का महीना (दर० १)। [(देशी), मिला०-कार्त्ति कादि (?) ]

केतकी-(सं०)-(१) एक प्रकारका धान (दर० १)। (२) केवड़ा का फूल। [केतकी ]

केतरपार—(सं०) ऊख की खड़ी फसल को काटने वाला ( पट०, गया ) । दे०—अगेहीहा । [केतर+पार<केतारी+पार<कान्तार+पार। पार=अंत, पारयति=समाप्त करता है, पार ( =ठत् पाट) ]

केतार—(सं०) एक प्रकार का ऊख जो पतला और लंबा हुआ करता है तथा कात्तिक में पोख्ता होता है ( गया, द०-पू०, मग० ५ )। पर्या०—केतारा (पट०) केवाली (सा०), केवाही (शाहा०), रौंदा (द०मुं०)। [कान्तार]

केतारा—(स०)—(पट०) । दे०—केतार।

केतारी—(सं०)- (म० पट०, गया, द०-पू० बिहा०, पट० ४ मग० ५, भाग० १) । दे०—ऊख। [केतार+ई <कान्तार ]।

केतारी

केन डेहरी—(स०) धनरोपनी के अंत में खेत के एक कोने में विशेष रीति के साथ एक मुट्ठी मोरी (धान्य पौध) के रोपने की एक रीति, पर्या०—पचाटी ( पट० ४, मग० ५ ), गत्र लगावल ( चपा० )। [ देशी, केन+डेहरी <कोण+देहली ]

केनगाड—(सं०) चीनी मिल की ओर से ट्रक पर लादकर लाये जानेवाले ऊख पर बैठा हुआ वह कर्मचारी, जो रास्ते में उस ऊख की रखवाली करता है, ताकि कोई उसमें से ऊख ले न ले। [ केन+गाड<केन+गार्ड (अं०) ]

केना—(स०)—(१) अनाज के खेत में होनेवाला एक पशु खाद्य घास ( प० गया, पट० ४ मग० ५, म २ ) । दे०—कनवा। [देशी, मिला०—कणा]

केना—(सं०) (प०-म०, प०) । दे०—कनवा। [ देशी, मिला०—कणा ]।

केनौला—(स०) एक झाड़, जिसके फल की चटनी बनती है। पर्या०—करौंदा (मु १, मग० ५) । [ कुन्दुरु ]

केमाम—(सं०) शुद्ध (ताजा) अफीम (कफा) के रस को उबालकर गाढ़ा करके बनाया गया पदार्थ ( गया )। दे० —मदक। [ क़िमाम <क़िवाम (अ०) ]

केरवा—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर० १, पट० ४, गया० ५)। [ केरा+वा <केला<कदली ]

केरवी—(सं०) गुण के अनुसार आम का एक भेद (दर० १)। [ केरवी<केला<कदली ]

केरा—(स०)-(१) लोहार, बढ़ई, नाई और धोबी को किसान की ओर से मिलनेवाली धान्य की एक छोटी राशि [जितनी दोनों भुजाओं (पाँजा) के बीच में आती है]। दे०-करवन। [(देशी), मिला०—कर+( माल) यथा-अक्रमाल> अक्रमार अथवा कोल, क्रोड (=पाँजा) ]

केरा—(स०) केला एक प्रसिद्ध फल। (बिहा०, आज०)। [कदली] संस्क०) कयली, कयलि (प्रा०), केरो केरा (नं०), केलो (कुमा०), कला (बं०, असा०), केला ( हि०, प० ) केल्हो —केला, केलिरो=पौधा (सि०), केल (गु०)=केले का पौधा, केलु (ग०)= केला, केल, केला, केल ( मरा० ), केमेल, केदेल ( सि० ) ]

केसी—(स०) भुट्टे के ऊपर के केशों का गुच्छा। दे०—मूछा। [ <केशिक ]

केसौर—(स०)—(१) लम्बे दानोंवाले धान का एक उत्तम प्रकार (मुं० १, म० २)। (२) शकरकन्द की जाति का एक मीठा कंद, जो कच्चा खाया जाता है। (३) चौर में होनेवाला एक छोटा कंद, जो मोथ की तरह होता है और कच्चा ही खाया जाता है।

केसौर

[के+सौर<केतकी+शालि वा केसर+शालि]

केहुनी—(सं०)-(१) दोनों भुजाओं के अंदर भर पर आनेवाली फसल का परिमाण (पू० मुं०)। दे०—पाँजा। (२) कोहनी हाथ और बाँह के बीच की संधि। [<कफोणि=केहुनी]

कैंत—(सं०) छोटे बेल जैसा एक प्रकार का खट्टा फल (शाहा० १, पट० ४)। [कपित्थ (सस्कृ०) कइत्थ (प्रा०)]

कैंत—(स०) एक प्रकार का साँप-जैसा श्वेत धारी वाला लंबा फल, जिसकी तर कारी बनती है (सा०)। दे०—चिचिरा। [सम०—<*श्वेता <श्वेतराजि (सस्कृ०), कैता झिंगा (संता०)]

कैता—(सं०)-(पू०म०,मुं० १) दे०—कैंत और चिचिरा।

कैता

कैदक—(स०) जमींदारों और किसानों के बीच का एक प्रकार का हिसाब, जो कागज की एक चिट पर लिखकर बंडल में रख लिया जाता है। यह बही में नहीं लिखा जाता है। दे०—तयलक [ देशी,—सम० <कायदा<क़ायद (अ०)]

कैरियार—(सं०)—(शाहा०)। दे०—कोरार। [केरि+यार <केआर+वाट, कदली+वाट, कन्दली+वाट]

कैरी—(स०) कटहल के कोय का ऊपरी भाग, जिसमें कोया छिपा रहता है (प० १)। पर्या० —भोथी (स०प०) [देशी सम०- <*कवरी]

कैल—(वि०) पीताभ-भूरा रंग (दर० १, पूर्णि० १, म० २)। पर्या०—कैला कइल (चपा)। [कपिल (सस्कृ०), कयिल (प्रा०)]

कैला—(वि०)—दे०—कल।

कैलाएल—(क्रि०)— फसल की बाल को दृढ़ (अन्न के रूप में) होने की अवस्था को प्राप्त करना। (वि०) पकती हुई फसल। दे०—हवसाएल। [कैला+एल (क्रि० प्र०) <*कपिल]

कैला गैल— (वि०)—(पट०, पट० ४ मग० ५)। दे०-कलाएल और हवसाएल। [ कैला+गैल <कपिल, गैल<गएल <गयल<√गम]।

कैलिया—(सं०)दे०—कोइली। [ सम०<कपिल]

कोंकडउल—(स०)(१) केंकड़ का बिल (चपा० १) (२) केकड़ के बिल के ऊपर की मिट्टी। [कोंकड+उल<*कर्कट+कुल]

कोंकड़ा—(सं०) केंकड़ा, एक जलीय जन्तु, जिसके आठ पैर और दो पंजे होते हैं। यह आगे पीछे समान गति से चल सकता है। यह धान के खेत से लेकर समुद्र तक में पाया जाता है। [<कर्कटक]

कोंकड़ियाइल—(क्रि०) रोग या पाले से किसी पौधे के पत्ते का सिकुड़ना या संकुचित हो जाना (चपा० १, मग० ५ म० २)। पर्या० —केंकुरियाएल (पट० ४)। [कोंकड़िया+ आइल<*कोंकड़ा <*कर्कटक]

कोंच—(स०) महुआ के फूल का छत्ता (पट०-४, मग०-५, चपा० १)। दे०—छत्ता। [<कच्छ कुच्छ, गुच्छ]

कोंढ़िला—(स०)-(१) एक पशुखाद्य घास (चपा०, उ० म०)। (२) चौर में होनेवाला एक जलीय पौधा, जिसके डंठल से विवाह का मौर बनाया जाता है। [(देशी), मिला०—कुष्ठ (संस्कृ०), कूठ (हिं०)]

कोंपड़—(सं०)-(१) पशुओं का एक रोग जिसमें सींग की जड़ में पत्त उसड़ती है। दे०—गाड़ा। (२) बाँस की जड़ से निकला हुआ नया कोमल अंकुर (चपा० १, म० २)। [कोंपड़ <कोंपल <कोमल—( हि० न० सा० ) <कुड्मल ( सस्कृ० ) <कुपल (प्रा०), कोंपाल (हि०) कोंपलो (गु०), कोंपिला (नें०) कोम्ब या कोम्ब (मरा०)]

कोंपल—(स०)बाँस की जड़ का नया अंकुर(सा० १,

मग० ५, पट० ४)। [कोंपल < कोमल—(हिं० श० सा०), < कुड्मल (संस्कृ०) ]

कोंहड़ा—(सं०) कद्दू की जाति का एक गोल फल, जो रंग में हरा या पीला होता है तथा जिसकी तरकारी मीठी होती है। पर्या०—कोम्हड़ा (उ० म०), कदीमा (पू० मुं० म० २)। [< कूष्माण्डक, (संस्कृ०), कुम्भाण्ड (प्रा०), कुमिण्डो (सिं०), कुमड़ा (बं०) कुम्हड़ा (हिं०), कामड (सिंह०)(ड़ < ण्ड)। कूहण्ड कोहण्ड, (प्रा०) कोहली (दर्गी)-मिला०—कुम्भफला (संस्कृ०) कोंहड़ा कोंहर (हिं०) कोहलु(गु०), कोवहाला (मरा०), कोहोलें कोहालें कोहलें (मरा०)]

कोंहरघट्टी—(सं०) कुम्हार द्वारा काम में लाई जानेवाली मिट्टी (सा० १)। [कोंहर+घट्टी < कुम्हार (हिं०) + मिट्टी < *कुम्भकार+मृत्ति]

कोआ—(सं०) (१) कटहल के फल का बीज कोष, जिसे लोग खाते हैं (चंपा० १, पट० १, पट० ४, मग० ५)। (२) रेशम के कीड़े का घर (चंपा०-१) (३) आँख का डेला (ढला)—(चंपा० १)। (४) ताड़ के फल के बीज-कोष से निकलनेवाला एक स्वाद पदार्थ। [कोशक < बीजकोशक (संस्कृ०) कोआ, कोया (हिं०)]

कोइन—(सं०)—(१) महुए की गिरी (बीज), जिससे तेल निकाला जाता है (म० उ०, द०, चंपा०, १ पट० ६, मग० ५)। (२) महुए का फल। पर्या०—गढ़ुआ (म० २), कोइनी (द० पू० मुं०, भाग०), कोइन्दा (द० प० शाहा), कोयन कोहन (मुं० १), कोयँड (सा० प०) कोइना (भाग०)। [को+इन < *कोशिन्]

कोइनी—(सं०)—(द० पू० मुं० भाग०)। दे०—कोइन। [को+इनी < *कोशिन्]

कोइन्दा—(सं०)—(द० प० शाहा०)। दे०—कोइन। [को+इंदा < कोआ+इन्द < कोशिन्]

कोइया—(सं०) अनाज के भंडार को भीषण हानि पहुँचानेवाला एक प्रकार का पतंगा, काला कीड़ा। [देशी]

कोइरी—(सं०) हिंदुओं की एक जाति, जो साग पात की खेती करके अपनी जीविका चलाती है। पर्या०—कोयरि (दर० १)। [कोइर+ई, कोयर (हिं०) = साग पात, < कोंपल < *कुड्मल]

कोइल—(सं०)—(१) आम के बीज का गूदा या गिरी, जिसकी रोटी भी कहीं कहीं पकाई जाती है। (मुं० १)। [देशी]
(२) अनाज की वह बाल, जिसमें पाला या मारा रोग लग गया हो (पट०, गया)। दे०—मराएल। [कपिल] (३) एक पक्षीविशेष, जिसका रंग काला होता है तथा बोली बड़ी मीठी होती है। पर्या०-कोयल (चंपा०)। [कोकिल]

कोइलखो—(सं०) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाला काँटेदार एक घास। पर्या०—गोखुला (प० म० चंपा०, पट०, गया, द० मुं०, पट० ४, मग० ५, म० २), गोखुल (प०), मोथी (भाग०)। [(देशी), समा०—कोकिलाक्ष]

कोइलपत—(सं०) चोट लगने के कारण दाग लगा हुआ आम (पट० १ पट० ४, मग० ५, म० २, चंपा० १)। [कोइल+पत < कोकिल+पद (= चिह्न)—(?)]

कोइला—(सं०)-(१) फसल के पुष्ट होने की अवस्था। (२) लकड़ी अथवा पत्थर का कोयला, जो जलाने के काम आता है। [कोइल+आ < *कोकिलक कपिलक]

कोइलाइल—(क्रि०) किसी अन्न या फल का पुष्ट होना (शाहा० १)। [कोइल+आइल (प्र०) < कोइल, कयल < कपिल]

कोइला माता—(सं०) फूस का सुरक्षित रखने वाली कल्पित देवी। [कोइला+माता। साम—< कमला माता ऋतिका (देवी)—(मो० वि० हि०)]

कोइली—(सं०) धान में लगनेवाला विभिन्न प्रकार का कीड़ा। पर्या०—पाँड़िया, कैलिया। [(देशी) समा०—< कपिल ]

कोकटि—(सं०) एक प्रकार की कपास, जो भादों में पकती है। इसकी रुई सिरहुट में होती है तथा इसके सूत बड़े महीन और सुन्दर होते हैं। पर्या०—भदैया। [देशी]

कोकड़ा—(सं०)—(शाहा०)। दे०—काकड़ा। [कोकड़ा<कोकड़ा<*कर्कटक]

कोचला—(स०) लता में होनेवाला एक प्रकार का कड़वा फल। इसका फल हरा होता है, किंतु पकने पर लाल हो जाता है। पर्या०—तिलकोच (भाग० १)।

कोचला के साग—(स०) एक प्रकार का साग। [कोचला के+साग]

कोचिआइल—(क्रि०)-(१) महुए के पेड में फूल के गुच्छों का होना (चपा० १, पट० ४, मग० ५)।

कोचिआवल—(क्रि०) साड़ी या धोती को चुनना (चंपा० १, पट० ४, मग० ५, म० २)। [कोचि+आवल (प्र०)<कोचि<*कुच्छ, कुच्छी<√कुच्]

कोठला—(स०) दे०—कोठिला, कोठी।

कोठिया ईंटा—(स०) कुएँ आदि की गोल परिधि बनाने के लिए अर्धवृत्ताकार इंट (द० पू० म०)। दे०—चकौ। [कोठिया+ईंटा<कोष्ठ+इष्टक]

कोठियारी—(सं०) गाँव में रहनेवाले शिल्पियों और दुकानदारों आदि से जमींदार के द्वारा भूमि कर के रूप में लिया जानेवाला शुल्क (चंपा०, म०)। दे०—मोतरफा। [कोठिया<कोठी<(सम०) *कोष्ठ]

कोठियौ—(स०) वर्षा से बचाने के लिए बाल सहित कटी हुई फसल का लगाया हुआ ढेर (सा०) पर्या०—पूँज, पुँजौर (उ० प० पट०, गया, द०-पू०)। [कोठियौ<कोठिया<कोठी<कोष्ठक]

कोठिला—(स०)-(१) बाँस की फट्ठी आदि से बने गोल ढाँचे (कोठी) से सुरक्षित कुआँ (प०)। पर्या०—गाड़ौआँ (पट०)। [कोठि+ला (प्र०<कोठी<कोष्ठ] (२) दे०—कोठी। [कोठि+ला (अल्पा० प्र०)<*कोष्ठ]

कोठिली—(सं०)—दे०—कोठी। [कोठी+ली (अल्पा० प्र०)<*कष्ठ]

कोठी—(स०)-(१) कुएँ की दीवार को गिरने से बचाने के लिए कभी कभी प्रयुक्त बाँस की फट्ठियों या वृक्ष की टहनियों से बनाया गया गोल ढाँचा (उ० प०, आज०)। पर्या०—ढोल (उ० प०, मग० ५), धींढ़ (उ० प०, पट०, शाहा०), दोल (द० पू०), घिढी (कहीं कहीं द०)। (२) मिट्टी या ईंट का बना हुआ एक प्रकार का गोल या चौकोर घरा जिसमें अन्न रखा जाता है। (बिहा०, आज०)। पर्या०—कोठिला, कोठिली। (३) अन्न, भूसा आदि के रखने के लिए खुली हवा में पुआल, फट्ठी, या खढ का बना हुआ एक प्रकार का घेरा। दे०—बखार। (४) बाँस के पौधों का एक समूह (चपा०, आज०)। [कोठ+ई(प्र०)<*कोष्ठ]

कोड़ देल—(मुहा०)—खुरपी आदि से गहरी कोड़ाई करके घास आदि निकालना (उ०-प०, उ०-प० म० म० २)। दे०—भर खुरपी सोहल। [कोड+देल<कोडल (बिहा०) कोडना (हिं०)<√कट् (छदने), अथवा √कुड् (थकल्पे)। (सभ०)<कु+दार<√दृ (अवदारण) से नामधातु प्रत्यय के साथ व्युत्पन्न होकर बना हो।]

कोड़न—(स०)-(१)—(द० भाग०, म० २)। दे०—कोड़नी। (२) एक फुट ऊँचे जनेर, बाजरे टेंगुनी आदि की घास या कुदाल आदि से की गई कोड़नी (गया, चपा०, म० २)। दे०—बिराह।

कोड़नी—(सं०)-(१) कोड़ाई कोड़न की प्रक्रिया। दे०—कोड़ल। (२) अनाज के खेत की छिछली कोड़ाई करके की गई घास आदि की सफाई। (३) मकई आदि के पौधों के उग आने पर, जड़ के आसपास की मिट्टी को धीरे धीरे कुदाल से कोड़ कर हल्की कर देने की प्रक्रिया (मु० १, म० २)। पर्या०—समनी (चपा०, म०), निकौनी (पट० गया द० पु०) छेउनी (द०-प० शाह०), कोड़न, रगड़ (द० भाग०)। (४) एक फुट ऊँचे जनेर, बाजड़े टेंगुनी आदि की कुदाल से की गई कोड़ाई।

कोड़ल—(क्रि०) मारना, खोदना (दर० १, पट०-४, मग० ५, म० २) पर्या०—पारल, तामल (चपा०, म०), छुजल (द०-प० शाहा०),

[ कोडल (प्र०), कोड़ना (हि०), मिला०—√कुट् (छदन) √कुड् (वस्त्ये)। (सभ०)— कु+टार< √द (अवदारण) से ना० धा० प्र० लगाकर बना हो)]

कोड़ल—(वि०) कुदाल से खोदी हुई जमीन (चपा० १)। [कोड़+ल (वि० प्र०)]

कोड़ा—(सं०)-(१) ऊख की दूसरी गोड़ाई (पट०) पर्या०—दासर पटावन (म०प०), दासरो पटावन (व० भाग०)। कोड़नी (पट० ४, मग० ५)। [देशी (सभ०)<कोड़ल (बिहा०), कोड़ना (हि०)] (२) (चपा०-१) दे०—कोरा। [कवर=बालों का गुच्छा]। (३) आग तापने के लिए बने पूर का ढेर (चपा० १)। पर्या०—घूर (म० २, चपा०), घुरौरा (पट० ४, मग० ५)।

कोड़ार—(सं०)-(१) वह खेत, जिसमें साग भाजी बोई जाती है (चपा० शाहा० १)। दे०-कोरार। (२) वह खेत, जो बार बार कुदाल से कोड़ा जाता है (शाहा० १)। (३) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि। (४) वह जमीन, जिसमें फूल बारी में लगाये जानेवाले पौधे पैदा होते हैं (पट०, प०)। पर्या० कोरियार (पट०, गया), कोरौंट (व० म०), कैरियार (शाहा०), बारी (म०), लतिहानी (द० मु०)। [कोड़ा+आर, कोड़ा<कोरा अथवा कोड़ल (बिहा०), आर (हि०) अथवा<केदार वा करालमृद्, गौरमृद् अथवा (सभ०)<कटार (=पीला) ?]

कोड़ी—(सं०) दे०—कोरी।

कोढ़-(सं०)-(१) सामा (श्यामाक) के चावल को दूध में पकाकर बनाया गया एक प्रकार का भोज्य पदार्थ (दर० १)। पर्या०-कोंढ़ा (म० २)। (२) एक प्रकार का भीषण चर्मरोग। [मिला० कुष्ठ]

कोढ़ा—(सं०)—(१) मकई या बड़ी बाल (मुं०-१)। (२) सोना चाँदी के आभूषण का गूँथने के लिए उसके ऊपर बना हुआ छेद (मुं०-१, पट०-४, मग०-५, म०-२)। [मिला०—कुण्डल]

कोढ़ि—(सं०)-(१) हल या गाड़ी में चलनेवाला मोटा और आलसी बैल जो कार्य करते समय अधिकतर बैठ जाया करता है। पर्या०-पटथा। लोको०—'कोढ़ि बरद के फफरि बहुत'= कोढ़िया बैल ज्यादा हाँफता और उछलता लगता है। (२) कोढ़ रोग ग्रस्त [कोढ़ि<कोढ़ी<कुष्ठिन्]

कोढ़िआइल—(वि०) वह पौधा, जिसमें कल्ला आ गई हो (चंपा० १)। (क्रि०)—किसी पौधे में कली लगना (चपा० १, मग० ५, पट०-४)। [मिला०—कुष्ठ=डाली आदि का अग्र भाग। कोरक< (वि०)-कोरकित, कुड्मल ]

कोढ़िया—(सं०) दे०—कोढ़ली। [मिला०—कोल=एक प्रकार का घुन। कुष्ठ=एक प्रकार का रंग ]

कोढ़िला -(सं०) धान के खेत में उगनेवाला एक घास (उ० म०, दर०-१)। इस घास के डंठल से विवाह के लिए मौर और इसी प्रकार की दूसरी चीजें बनाई जाती हैं। दे०—... [(सभ०)—<*कुष्ठ, कुण्डल अथवा कट]

कोढ़ी—(सं०)-(१) ताल का वह पेड़, जिससे रस निकाला जाता है (उ० पू० मुं०, म०-२)। पर्या०-यहिरा (द० पू० मुं०), धमी सिसवा (द० प० मु०), अनाहु (द० प० मुं०)। (२) वह हलकी जमीन जो अपनी उर्वराशक्ति खो चुकी हो। दे०—मूड़। (३) (द० प०) दे०—टहना, कादि। (४) कली। [कोढ़ा (हि०) कुष्ठिन् (ला० प्रयो०) ]

कोतनयना—(सं०) वह बैल जिसकी आँखें लाल और भीतर कोटर में धँसी हुई हों (पट० १)। [कोत+नयन+आ (प्र०), कोत<कोट<कोटर+नयन ]

कोदई—(सं०) (शाहा० चपा०)। दे० कोदो। [कोदो+ई (प्रत्य० स्त्री० प्र०)<कोद्रव]

कोदवा धान—(सं०) कोदो की तरह होनेवाला एक छोटा धान (च० १, मग० ५, पट० ४)। [कोदवा+धान<कोद्रवक+धान्य ]।

कोदार—(सं०)-(१) फावड़ा कुदाल। मिट्टी खोदने का लोहे का बना एक औजार (द० भाग०, चपा०, द०मुं०)। दे०—कोरा। [कुद्दाल, कुद्दाल, कुदाल] (२) (चपा०) दे०—कुदारी।

कोदारि—(सं०)—(म० ४) दे०—कुदारी।

कोदारी—(सं०)—दे०—कुदारी।

कोदो—(सं०)—(१) सामा की जाति का एक

कम्प्न इस अन्न की विशेपता यह ह कि भूसी सहित रखन पर यह पचासों वप तक सुरक्षित रहता ह। पर्या०—कोदई=छोटा कोदो (शाहा०)। (२) एक प्रकार की भदई फसल (पट०-४)। [कोद्रव (सस्क०), कोद्दव, कुद्दव (प्रा०), कोदो (हि०, कुमा०, ब०), कोदो, कोदा, कोद्रा (प०), कोडीरी (सि०), कोद्री (गु०), कोद्रु (मरा०), कोदुरु (कश्म०)]

कोन –(स० – ब० मु०, प्राज०)। द०–कोनिया जोत। [कोण (स्रा०) (?)]

कोनसिया—(स०)–(१) (चपा० ब० प० म)। दे०–कोनिया जोत। [कोन+सिया<*कोणश <*कोणसीत्य (<सीता=जोत की रेखा)] (२)—दे०—कोनिया घर।

कोनसी—(सं०)– (द० मुं०)। दे०—कोनिया जोत। [दे०—कोनसिया]

कोनाकोनी—(स०,—(प०)। दे०—कोनिया जोत। [कोना+कोना (सभ०) <*कोणा कोण, (यथा-कर्णाकर्णि, मुष्टी-मुष्टि आदि)]

कोनासी—(सं०)—(शाहा०)। दे० - कोला। [कोना+सी (प्र०) अथवा (संभ०) कोणसीत्य]

कोनाह—(वि) दे०–कोनाहा। [कोना+ह (प्र०) <कोना<*कोण]

कोनाहा—(वि०) वह वस्तु, जिसमें कोना निकला हो कोना बना हुआ (मु० १, पट० ४, मग०-५ म०-२, चपा०, भाग० १)। पर्या०–कोनाह। [कोना+हा (प्र०) <कोण]

कोनिया—(स०) बाँस की फट्ठी की सीकों का बना फटक्न या साधन जिसक तीन ओर गोल मेंड बनी होती है। (उ० पू० म० बर० १)। दे०–मडरा। (वि०)—कोनवाला कोन की ओर (मुं० १)। [कोन+इया (प्र०) <कोण कोणिक]

कोनिया घर—(सं०) वह घर, जो किसी कोने में स्थित हो। [कोन+इया (प्र०)+घर< कोण, <*कोणिक घर<गृह]

कोनिया जोत—(सं०) एक कोन स दूसरे कोन तक की जुताई की रीति। पर्या०- कोन, कोनसी (ब० मु०) कोनसिया (चपा०, ब० पु० म०), कोनी (गया) कोना कानी (प०)। [कोनिया+जोत कोनिया<*कोण, जोत<जोतल (बिहा०) जोतना (हिं०)< योजन∠ √युज् (योगे)]

कोनी— (सं०)—(गया)। दे०—कोनिया जोत। [कोन+ई (प्र०) <कोण कोणिक]

कोपड़—(स०)-(चपा)। दे०—कोपड। [कोमल (?), कुड्मल]

कोबी—(सं०)-(१) एक प्रकार की तरकारी का छोटा पौधा, जिसके बीच में बड़ा पसरा हुआ फूल होता ह। (२) औषध के लिए प्रयुक्त एक वनस्पति विशेष। [कोबी<गो<गोजिह्वा (सस्कृ०) कोबी, गोभी (हि०), दाडिशाक, दाडशाक गोजिया (बं०), पाथरी, भुइपथरी (मरा०) भोपाथरी, भुइपात्रा, जिभी (गु०), येदुनालुक चेट्टु, भरिलिक चेट्टु (तें०) घाउन (कों०), यलुना गले (क०) कलम स्मी (फा०, भारोप०–कैवेज अं०), पुर्त०-कोउवे।]

कोम्हड़—(स०)—(उ० म०)। दे०—कोहडा। [कुष्माड]

कोयन—(स०)—(द० मुं०)। दे०—कोइन।

कोयरि—(स०) —(दर० १)। दे०—कोइरी।

कोयला—(सं०) चूल्हे या इजन में जलाया जानवाला लकडी का बनाया या खान से निकला इधन-विशेष। [कोकिलक (संस्कृ०) कोल (अं०)]

कोयला फर्नेस—(स०) कोयले से जलाया जाने-वाला बड़ा चूल्हा जो बड़ी-बड़ी मिलों और फक्टरियों में रहता ह। एसे चूल्हों का उपयोग भाप्प शक्ति तयार करने के निमित्त बड़ बड़े पीपों को गम करने क लिए होता ह (बिह०)। [कोयला+फर्नेस<कोयला (हिं०)+फर्नेस (अं०), कोयला <कोकिलक]

कोरजा—(स०)-(१) वह मजदूर जिसे मज दूरी में प्रधानत नकद रुपय ही दिये जात हैं (उ० पू०)। (२) भोज भडारे में कही पूड़ा पूड़ी आदि का पक्का भोजन। इसक विपरीत कच्च भोजन को 'भतभान' कहत ह। [(देशी), मिला०—कोरंजा<कौर+अनाज=वह अन्न जो मजदूरी में दिया जाय (हिं० शा० सा०)]

कोरई—(सं०)-(१)-(शाहा०)। दे०—कोरो। (२) (चपा)—द०—कोरो-३

कोरट—(स०) वह स्टेट, जिसका दखभाल का

काम सरकार की ओर से होता है (सा० १, पट० ८ चपा०, मग० ५)। [कोर्ट, कोर्ट आफ वार्ड्स (अं०)]

कोरवास—(स०) पान की पत्तियों के आधार स्तम्भ के बीच का अवकाश (उ० पु० म०) [कोर+वास, मिला०—कोर (हि०)=पंक्ति, श्रेणी, कतार। कोर=पोर, अंगों का संधि]।

कोरौंट—(सं०) (१) (द० म०)। दे०—कोरार [(देशी) (सम० ) केदार+मृद्, अथवा काल+मृद्, गोर+मृद्]। (२) काँटे आदि के गड़ जाने से पैर के तलवे में हो गया घट्ठा। पर्या०—कोरौंटी।

कोरौंटी—(स०)—दे०—कोरौंट (२)।

कोरा—(स०) घोड़ा हाँकने का चाबुक। पर्या०—कोड़ा, चाबुक। [कुर्रा (संस्कृ०)=बालों का गुच्छा]।

कोराइ—(स०)-(१) अनाज के कूटने-पीसने के बाद चालकर निकाला गया निष्फल मोटा अंश (पट० म० प०)। विशेषकर दलहन दलने के बाद निकली ऊपर की भूसी (पट०)। दे०—चोकर। (२) चावल या चिउरा कूटने पर उससे निकली वह महीन भूसी, जिसमें अन्न के ऊपर का महीन अंश मिला रहता है (चपा०-२)। [(देशी)-मिला०—कडंगर, कंडूय < √कड् (भेदने), कोंडा (मरा०)]

कोराई—(स०) दे०—कोराइ।

कोराना—(स०) वेतन के बदले नौकर को दिया जानेवाला अनाज (प० मुं०)। दे०—मनी। [कोर+आना—कोरा + अनाज (हि० श० सा०)]

कोरावाल—(स०) काफी पानी जमा हो जाने के कारण बेकार जमीन (सा०)। पर्या०—चलान (द० प० मं०)। [कोरा+वाल < कोरा+वाल् < कोरा < केवल ]

कोराय—(सं०) दलहन का छिलका (भूसी), जो पशुओं का पुष्ट भोजन है (पू०-१)। पर्या०—कोराइ (पट०, भगा०, मग०-५, मोम०)। [(देशी) मिला०—कडंगर, कण्डूय < √कण्ड् (भक्षण)]

कोरार—(स०)-(१) दे०—कोड़ार, गाड़ह बाड़। [कोर+आर, कार < कोष्ठ; आर (हि०)

अथवा केदार (संस्कृ०) या काल+मृद्, गोर +मृद् > गोरट, गोरौंट ]

कोरियार—(स०)-(पट०, गया)। दे०—कोरार। [मिला०—कैदार्य अथवा कैदारिक ]

कोरी, कोड़ी—(सं०) पान की २० पत्तियों अथवा किसी भी दूसरी वस्तु की एक राशि। बीस का समूह (गं० व०, पट०-४, मग०-५, चपा०, म०-२)। पान के पत्तों के कुछ परिमाण निम्न लिखित हैं—चौठैया—पान की पचास पत्तियों की एक राशि (गं० व०)। आधा ढाली—पान की १०० पत्तियों की एक राशि। एक ढाली—पान की २०० पत्तियों की एक राशि।

गं० व० और शाहा० में निम्नांकित परिमाण हैं—

७ ढाली=१ कनवा।
१४ ढोली=१ अधवा।
२८ ढाली=१ पौआ या पाया।
४ पौआ=१ लहा।
१०८ढोली=१ लहो (गं० व०)।

[(देशी), मिला० कपर्दिन् (संस्कृ०), स्कोर (अं०)]

कोरीकरन—(मुहा०) पशुओं द्वारा खाई वस्तु का पुनः चबाना, रोमन्थ (पागुर) करना (पट०, गया)। दे०—पगुरी करन। [कोरी+करन, कोरी < कवल ( < कवली + √कृ ) ]

कोरो (स०)-(१) पान की पत्तियों का प्रधान अवलंब (सं०, चंपा०, मग० १)। पर्या०—कोरइ (शाहा०), इकरा (द०, पू०, सा०)। (२) पान के बाग में ऊपर दिए गए छप्पर का आधार स्तम्भ। पर्या०—खम्भा (पट०, गया), खाम्हा। (द० मुं०)। (३) घर में लगे छप्पर का आधार स्तम्भ। यह लकड़ी या बाँस का होता है तथा धरन के रूप में काम में आता है (बिहा०, भाग०)। [देशज, मिला०—कुड्य, कुट्य ]

कोलटारा—(सं०) धानका टालने या उछालने का लोहे की छड़ जिसका एक छोर टेढ़ा और दूसरा छोर हाथ में पकड़ने लायक बना होता है। (बिह०)। दे०—अँकुड़ा। पर्या०—अँकुड़ा (हरि०)। [फाला (अं०) या कोल्हा (हि०)+टाग ( < टारना हि० ) ]

कोसवामी—(स०) (१) आम का धारदार टिकोला (चंपा० १)। (२) आम के फाके की कामन फुटकी (भगा०-१ पट० ४, मग० ५)

(३) वह आम, जो चोट खाकर काला पड़ गया हो (शाहा० १)। [कोल+वाँसी< *कल्माष, < *कल्माष]

कोलवा—(वि०) कोन वाला तंग जगह में पड़ने वाला (मुं० १) पर्या०—कोलक घर= कोनिया घर (मुं० १), कोला (मग० ५) [कोल+वा (प्र०)<कोण]

कोलवाइ—(स०) जमीन का छोटा टुकड़ा, जो घर के पास हो (उ० प०)। दे०—कोला। [कोल+वाइ (प्र०)<कोण]

कोलसार—(स०)-(१) दे०—गुड़ौर। (२) (पट०, गया, पू०)। दे०—कोल्हुआर। [कोल+सार, कोल<कोल्हू<कूलहडक (=तोड़नेवाला, आवर्त की तरह घूमनेवाला +सार<शाला]

कोलसार, कोल्हसार—(सं०) वह स्थान, जहाँ ऊख पेरकर गुड़ बनाने के लिए कोल्हू बैठाया जाता है (मु० १, पट० ४, मग ५)। [कोल+सार<कोल्हू+सार<शाला; कोल्हू-मिला०-कूलहडक =तोड़नेवाला, आवर्त की तरह घूमनेवाला]

कोलसुप—(सं०)-(१) अनेक प्रकार के अनों को फटकने, पछने और चालन के लिए प्रयुक्त एक साधन जो बाँस की कमाचियों या मूंज की सींकों का बना होता है। दे०—सूप। (२) अनाज फटकने के लिए प्रयुक्त एक साधन। पर्या०—डगरा (उ० प० म०, चपा०), सूप। [कोल+सुप, कोल (देशी) वा कोल<क्रोड, सुप<शूर्प]

कोलसुप

कोलहकद—(स०) ऊख के कोल्हू को ठीक (दुरुस्त) रखने के लिए किसान की ओर से बढ़ई का मिलनेवाला पुरस्कार (पट०)। दे०—पचरावन। [कोलह+कद<कोल्हू+कद<कादल (बिहा०) <कर्ष<√कृष्]

कोलह पचरानी—(सं०)-(द० भाग०)। दे०—कोल्हू कद और पचरावन। [कोलह+पचरानी, कोलह<कोल्हू, पचरानी<पचर (बिहा०), (हिं०) <पर्यानरा (संस्कृ०)=हल का एक भाग, टुकड़ा]

कोलासी—(स०) दे०—कोलवासी।

कोला—(सं०)-(१) जमीन का वह छोटा अंश, जो घर के पास हो तथा शाक भाजी उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त होता हो (शाहा० द० पू०, पट० ४, मग० ५)। पर्या०-कोली, कोलवाइ (उ-प०), बारी (चपा०, म०), खड, खँड़ (सा० पट०) (वस्तुत इसका अर्थ है ध्वस्त घर), घेवारी (गया), गल्ली (चक० नाम द० भाग०), कोनासी (चक० शाहा०)। (२) दे०-कोलवा। (३) चारों ओर डरेर (मेड़) से घेरकर बनाया गया खेत (चपा०-१)। [कोल=गली, तंग रास्ता, तंग जमीन का एक टुकड़ा]

कोलिऐती असामी— (स०) साधारण काश्तकारों के स्तर से नीचे का एक छोटा रयत (पू० म०)। दे०—सिकमी। [कोलिएती+असामी]

कोलिया—(स०) चारो ओर मेंड़ से घिरा हुआ खेत का छोटा टुकड़ा (शाहा० १, चपा०, म० २)। [कोल]

कोली—(स०)-(उ० प०)। दे०—कोला।

कोल्ह—(सं०) ऊख या तेल पेरने का यंत्र (बिहा०, श्राज०)। पर्या०—कोल्हू कल। दे०—कोल्हू। [<कूलहडक]

कोल्हकर—(स०)-(द० मुं०)। दे०—कोल्हकद और पचरावन। [कोल्ह+कर<कोल्हू+कर]

कोल्हुआड़—(स०) वह स्थान, जहाँ कोल्हू गाड़ा जाता है (चंपा० १, पट० ४ मग० ५, भाग० १)। [कोल्हु+आड़ <कोल्हू+वाट <कूलहडक+वाट]

कोल्हुआर—(स०)-(१) ऊख पेरने तथा गुड़ बनाने का स्थान। पर्या०—गोलौर (द० प० शाहा०), कोलसार (पट० गया, पू०) कोल्हुआड़ (चंपा० १)। (२) दे०—गुड़ौर। [कोल्हु+आर <कोल्हू+आड़<कूलहडक+वाट]

कोल्हू—(सं०)-(१) ऊख पेरने की कल जो आज कल लोहे की बनी होती है और इसमें तीन बेलन लगे रहते हैं। पहले यह लकड़ी अथवा पत्थर का, आधकल के तेल के कोल्हू की तरह बना होता था और इसमें ऊख काटकर दिया जाता था।

कोल्हू

होता था। इससे बच्चों का भूषण बनाया जाता है और बच्चे इससे खेलते हैं। [कोडी<*कपर्द (सस्क०), कवड्डु (प्रा०), कौडी (हिं०), कौडी (बं०, ओ० कुमा०), कौड, कौडा (प०), कोडी (ल० प०), कोड्, (सि०), कार्डी, कोड, कोडी (गु०), कवडा, कवडी (मरा०)]

कौनी—(स०) बाजरे की जाति का सूक्ष्म दानों का एक अनाज (मं० २, पट० ४, मग०-५, भाग० १, चंपा०-१, दर० १, मु० १)। [कङ्गु (सस्कृ०), कुगुनी, कांकुनी, कौनी, टॅगुनी (हिं०), कौंगुनी, कानी घान (ब०), धाँग (मरा०), काँग (गु०), नवणे (कन्न०), प्रेकण्ण पुचेट्टु (तेल०), गल अरजुन (फा०), दुखुन (अ०)।]

कौर—(सं०)-(१) भूमि को खोद कर बनाया गया छोटा गड्ढा, जिसमें लकडी, घास, सूखा गोबर आदि जलाकर जाडे की रात में ग्रामीण लोग तापते हैं (प०)। दे०—धूर। (२) पीसने के समय जाँता में एक बार दिया जानेवाला अन्न परिमाण। दे०—झींक। (३) खाने के समय मुँह में एक बार आनेवाला भोजन का परिमाण। [कुंड]

कौराकाढ़ल—(मुहा०) श्राद्धकर्म में भोजन के पहले कौए आदि तिर्यग्योनि के निमित्त उडद की दाल और भात का कौर का निकाला जाना।

कौर जाएल—(मुहा०) बीज का मर जाना या नहीं उगना (उ०-पू० म०)। दे०—बिजमार। [कौर+जाएल, कौर (देशी०), कौरना (हिं०) = थोड़ा भूनना, सेंकना। मिला०—√कुडि (दाह) = जलाना]

कौरीकरल—(महा०) पशुओं द्वारा खाई हुई वस्तु का पुन चबाना, रोमन्थ (पागुर) करना (पट०, गया चपा०)। दे०—पगुरी करल। [कौरी +करल। कौर<कवर<कवाल(कवलो+√कृ)]

कौवा—(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध काला पक्षी, काक, (२) एक प्रकार की मछली, जो अगरी के समान गोल और लबी होती है एव जिसका मुँह कौवे की चोंच के समान होता है (चपा०)। पर्या०—कौवा ठोठी। [कौवा < √*काकोल]

कौवा भपान (स०) दे०—कौआ सपान।

कौवा ठोठी—(सं०)-(१) (म० २)। दे०—कौवा (२)। (२) एक लता, जिसके फूल सफेद और नीले रंग के तथा कौवे की चोंच की तरह लब होते हैं। [<*काकतुण्डी]

कौवा लुकान—(सं०)-(चंपा० १)। दे०—कौआलुकान।

कौवा हाँकल—(महा०) दे०—कौआ हाँकल।

क्रित्तिका—(सं०) तीसरा नक्षत्र, कृत्तिका। छह तारों का यह नक्षत्र होता है। [कृत्तिका<कृत्ति <√कृत]

क्वाढ—(स०) चीनी मिल में ऊख के रस को गाढ़ा करनेवाला एक चौकोर यंत्र (बिहू०)। [क्वाड<क्वाड वा क्वाड्ट (अं०) = वर्गाकार]

क्वाढ मैन—(स०) चीनी मिल में क्वाढ पर काम करनेवाला कर्मचारी (बिह०)। [क्वाड+ मैन (अं०)]

क्वार—(स०) आश्विन मास, कुआर। दे०—आसिन कुआर। [क्वार<कुआर<कुमार(?)]

## ख

खँखड़—(स०) कुआँ बनाने के लिए खोदा गया गड्ढा (शाहा०-१)। दे०—खाँखड़। [देशी]

खँखड़ा—(सं०)—(१) अन्न का वह ढाँचा, जिसमें केवल भूसा ही हो अन्न का अंश न हो (चपा० १)। पर्या०—खँखरी (शाहा०)। (२) एक पौधा विशेष, जिसके डंठल से मोर बनता है। कभी कभी औरतें अपने कान के छेद को बढ़ाने के लिए भी इसका उपयोग करती है। [(देशी), मिला०—कंकाल = हड्डियों का ढाँचा मात्र खंखर, खंक्खर (सस्कृ०) = छिद्रवाला खक्खट = कठोर, घना]

खँखड़ी—(सं०)-(१) अन्न के पौधों में लगने वाला एक रोग, जिससे बाल में दाना नहीं होता। (२) वह अन्न कोष जिसके अन्दर अन्न उत्पन्न ही न हुआ हो। खँखड़ा का स्त्रीलिंग। [(देशी), मिला०—कंकाल (संस्कृ०) =

हड्डियों का ढाँचा । खखर, खक्खर (संस्कृ०)= छिद्रवाला, खक्खट (संस्कृ०)=कठोर, घना (मो० वि० वि०), खक=कंक=छूछा, खाली (हिं० श० सा०), कर्कट (संस्कृ०)=कवच, ऊपरी आवरण ]

खँखरी—(स०) (शाहा०) दे०—मँखड़ा ।

खँगड़ीवा—(सं०) छोटी पत्तीवाला एक प्रकार का तवाकू (पू० बिहा०) । दे०—पनउठिया । [ (देशी), मिला०—खगी<खगना(<√क्षि-क्षये)=छीजना, घटना, खगी+ड़ीवा (< मंडीर ?) ]

खँगरा—(सं०)-(१) ताड़ (ताल) का नया पेड़ (पट० ४, मग०-५, चंपा० ) । (२) ताड़ का डंठल-सहित पत्ता (चंपा०, पट० ४, मग० ५) । पर्या०—खगरा, खगरी (पट ४, मग० ५, म० २, चंपा०) । [ (देशी), मिला०—खमाड=एक प्रकार की बेंत ]

खँचड़ा—(सं०)—(१) पंकिल, दलदली जमीन या धारा के साथ बहकर जमी हुई मिट्टी (द० प० शाहा०) । दे०—भाथ । (२) बदमाश, वर्ण संकर । [खँच+ड़ा (प्र०)<कच्छ,<खच्चर]

खँजदाह—(स०) वह अन्न, जिसमें कई अन्नों की मिलावट हो ( चंपा० १ ) । पर्या०—सतजा (पट० ४, म० २, मग०-५ चंपा०) । [खँज+दाह, मिला०—खजकारि=खजारी, मिला०—√खज् (मन्थे), √पच् (समवाय=मिलना) ]

खँड़—(सं०) (१) (सा०, पट०, मग० ४, मग० ५)। दे०—कोल्ह । [ खड ] (२) (द० भाग०) । दे०—कोइल, कोड़नी । [ खँड़<√खडि ]

खँड़घर—(सं०)-(द० शाहा०)। दे०—खरकोटी । [ खँड़+घर, खँड़<खड । घर<घँडी= (बिहा०)=बवण्डर, स्तम्भ ]

खँड़मोड़ा—(सं०) हाथ (लकड़ी का फावड़ा-जैसा बना औजार) से पानी छिड़ककर खेत को सींचनेवाला पुरुष (पट०, गया) । दे०—हथ वाहा । [ खँड़+मोड़ा<खड (=जमीन का टुकड़ा, क्यारी )+मोड़ा<मोल्ल (बिहा०), मोड़ना (हि०) ]

खँड़वाट—(स०)—(पट०) । दे०—खड़मोड़ा और हथवाहा । [खँड़+वाट<खड (=जमीन का टुकड़ा, क्यारी )+वाह ( प्र० ) या वाह <√वह ]

खँड़वाहा—(स०) सींचने के समय खेत में पानी को इधर उधर बिखरानेवाला मनुष्य (पट०)। दे०—पनमोरा । [ खँड+वाहा<खडवाह ]

खँड़सारी—(सं०) खाँड़ (चीनी) तैयार करने का स्थान (म० द०, पट० ४, मग० ५) । दे०— चीनी के कारखाना । [खँड़+सारी<खंड+शाला, खाँड़ (हि०) ]

खँड़हुल—(सं०)-(१) खड़ का जंगल ( चंपा०, मं० २ ) । दे०—खड़ोर । (२) दे०—खड़हू (पट० ४, मग० ५)

खँड़हू—(स०) पानी के वेग से बाँध का कट जाना या फट जाना ( गया ) । पर्या०—खधिया (म० २), खँड़हुल (पट० ४, मग० ५) [ खँड+हू<खंड ]

खँड़ा—(सं०)-(१) गृहस्थी के काम में आनेवाला लकड़ी आदि काटने का एक औजार (मुं० १) । (२) घर या खेती की सामग्री (पट० ४) । [ <खड, खड्ग ]

खँड़् आर—(सं०)-(१) (गया)। दे०—खँड़वाहा और पनमोरा । (२) बाँध के धार टूटकर बना गड्ढा (मग० ५) । [खँड़ + आर<खड]

खँड़ौरा—(सं०)-(द० प० शाहा०) । दे०—खुद्दी । [ खँ+औरा । खँड़<खंड, औरा<चौरा चाउर<चावल (हि०) <तंडुल (संस्कृ०) । मिला०—खँडौरा (हि०) =मिसरी का लड्डू, ओला, खँड़ौरी (हि०)=चावल का टुकड़ा । खंडउलि (सं०), खुद्दी<खंड—(नेपा०) ]

खड़ा—(स०) परती जमीन, जहाँ तरकारी वगैरह बोई जाती है (पट० २) । [ (देशी) मिला०— खचा (मग०)=गड्ढा ]

खंतर—(वि०) को नेवाला (मं० १) । [ खनित्र (संस्कृ०), खणत्ते, खते ( मरा० )<खनित्रक (संस्कृ०) ]

खंता—(स०) (१) पानी के भीतर का बना हुआ गड्ढा (मुं० १) । (२) नदी-नाले के पास खोदा हुआ गड्ढा । (३) भट्ठी में जलती हुई आग को उकसाने के लिए प्रयुक्त लोहे की छड़ । (४) खोदने के लिए लोहे का बना एक लंबा औजार । (५) (द० भाग०) दे०—खई ।

(६) काटी हुई भूमि और कुएं की गहराई की नाप के लिए प्रयुक्त एक हाथ का परिमाण (द० प० शाहा०, द०-प० म०)। दे०—खनित, तरहा। [ खात, खनित्रक< √खन् ]

खंती—(सं०) जमीन खोदने के लिए लोहे का बना एक औजार (मुं० १, पट० ४, मग० ५, म० २)। [खनित्र, खनित्रिका (संस्कृ०), खनित्ती (प्रा०), खनित्त (प्रा०) खंती (हिं०), खन्ति (न०) खति (असं०) खता (बं०), खणती, खणता (ओ०), खणतें (मरा०) ]

खंती

खंध—(सं०) खेती की हुई भूमि का एक बड़ा भाग। (खंध के खेतों की खाता संख्या एक होती है, किन्तु प्लाट-सं० अलग अलग होती है पट० ४, मग० ५)। पर्या०—खंधा, कित्ता, किता (पट०, गया)। [खंध< स्कंध=समूह (खेतों का समूह) ]

खंधा—(सं०)—(पट०, गया, पट० ४, मग० ५) दे०—खंध। [ खंध< स्कन्ध=समूह (खेतों का समूह) ]

खंधोट—(सं०) खेती की हुई भूमि में एक बड़े भाग का उपभाग, जो और भी कई टुकड़ों में बँटा रहता है। दे०—खंध। [खँध+ओट, खंध< स्कन्ध=समूह (खेत-समूह), ओट< अपट, आवर्त्त ]

खंभा—(सं०)-(१) कुएँ की जगत पर गाड़ा हुआ दो नोकोंवाला खंभा, जिसपर घिरनी नाचती है (पट०, चंपा०, द०-पू०, पट० ४, मग० ५, म० २)। दे०—घुरही। (२) दो कानियोंवाला ऊँचा लंबा स्तम्भ जिसपर लाठा लटकता रहता है। पर्या०—घुरैया (पट०, शाहा०), घुरई (प०)। (३) ढेंकी का वह स्तम्भ, जिसपर ढेंकी टिकी रहती है (द० प० शाहा०)। दे०—जंघा। (४) (प०, गया)। दे०—थोरो। (५) किसी वस्तु के अवलंबन के लिए जमीन में गाड़ा हुआ स्तम्भ। पर्या०—खम्हा, खम्हिआ (बिहा०, आज०)। [ स्कम्भ (संस्कृ०), खंभा (हिं०), खम्बा (नें०) ]

खंभार—(सं०) दे०—खम्हार।

खई—(सं०)-(१) गड्ढे का किनारा, मेड़। पर्या०—खाई, खत्ता, खावाँ, खता (द० भाग०), डोभरा=छोटे गड्ढे की मेड़ (गया)। (२) गहरा खत (चंपा०, म० २)। [ खई< खेय (=परिखा) ]

खउरा—(सं०) दे०—खौरा।

खउवा—(सं०)-(१) ताड़ की छाल (पट० १)। (२) ताड़ के पत्ते के काटने पर बचा हुआ सूखकर गिर जानेवाला पत्ते का मूल भाग (पट० ४, मग० ५)। [< खोलक]

खखड़ी—(सं०)—(मुं० १, मं०-२)। दे०—खखड़ी।

खखरा—(सं०)-(१) अनाज के ऊपर का छिलका। धान या किसी भी अनाज का बिना दाने का निष्फल छिलका (द० भाग०, द० मुं०, मग० ५)। दे०—भूसा। (२) खलिहान में पड़ा हुआ निष्फल अनाज (प०, उ०, मग० ५ पट० ४ मग० १)। दे०—पटपर। [ मिला०—खँखड़ा ]

खखसी—(सं०)-कठल नाम की एक तरकारी। यह महीन काँटेदार तथा गोल आकार की होती है। पर्या०—खेखसा (मुं० १, पट० १, पट० ४)। [देशी]

खखोड़नी—(सं०)—(दर० १)। दे०—खखोरनी।

खखोरन—(सं०)-(१) अफीम के बरतन से खुरचकर निकाली गई अफीम (गया, द०-प० शाहा०, मुं० १)। (२) खुरचकर निकाली गई वस्तु। दे०—खुरचन। [ अनु० ]

खखोरनी—(सं०) वर्षा या सिंचाई के बाद धूप लगने से खेत की मिट्टी कड़ी हो जाने पर उसे मुलायम करने के लिए, लोहे के काँटों का बना हुआ हल (म०, चंपा०-१, म० २)। दे०—कटा। पर्या०—खखोड़नी (दर० १)। [ अनु०, या (देशी) खखोरल (बिहा०), मिला०—अनु०—खटखटायते (संस्कृ०), खडहड (प्रा०), खखोरना, खटखटाना (हिं०),

पर्या०—खट्मास, खरमास (चपा०, मं० २)। [ खड+मास< खर+मास ]

खड़हा—(सं०)—(१)(व०-पू० म०)। दे०—खेढ़ा। (२) एक जंगली जानवर, जो बिल्ली की तरह और तेज दौड़नेवाला एवं उजला या चितकबरा होता है—खरहा। [ खड+हा< खड, खात ]

खड़ही—(सं०) एक प्रकार की घास, जिससे घर छाया जाता है ( दर० १, म० २)। [ (देशी), मिला०—खर्, खड ]

खड़ा—(सं०)—(१) बिना हेंगा दिये जुता हुआ खेत। (२) फसल का खेत में लगा रहना। (वि०) (३) खड़ा हुआ। [ देशी ]

खड़ा टाल—(सं०)-(१) अनाज निकालने के पहले मकई, रहर आदि का, कटी फसल को सुखाने के लिए उसके ऊपरले भाग को ऊपर करके रखा हुआ, ढेर (ग०-उ०)। (२) टाल की सूखी जमीन, जिसमें वर्षा के अभाव से नमी न हो (मग० ५) [ खड़ा+टाल, मिला०—अट्टाल=ऊँचा भवन ]

खड़ारा—(सं०) दे०—खड़ार।

खड़ुआ—(सं०) धान का खड़ा पुआल (मुं० १), कतरा। [ खड़ा+उआ ]

खड़ुका—(सं०) अफीम या किसी फसल के खेत में उगनेवाली एक घास ( उ०-पू० म० शाहा० )। आजकल यहाँ अफीम की खेती नहीं होती है। पर्या०—खरथुआ (पट०, गया), बथुआ, मोचहि (सारा०)। [देशी]

खड़ो, खोंड़—(सं०) पानी बहने के लिए मेंड़ काटकर बनाई गई नाली ( मु० १ )। [ देशी, मिला०—खंड ]।

खड्ढा—(सं०)—(१) हेंगा या चौकी से निचले भाग में ढेलों को चूर्ण करने के लिए बनाया गया गड्ढा (कहीं-कहीं)। दे०—घघरी। (२) गड्ढा। [< ०खात,< *कर्ष]

खड्ढी—(सं०)—( द०-प० शाहा० )। दे०—खोड़ी।

खढ़—(सं०) खर घास। एक विशेष घास जिससे छप्पर छाया जाता है ( भाग० १ चपा० )। पर्या०—खर, खड़ [खढ़< खर, कट]

खढ़ार खढ़ारा—(सं०) धान के खेत की पहली जुताई (मुं० १)। [ देशी, मिला०—खड़ा ]

खढ़िआवल—(क्रि०) खेत को जोतकर बिना हेंगा दिये छोड़ देना (चपा० १)। [< खड़ा, < खड़]

खढ़ौर—(सं०) वह जमीन, जहाँ छप्पर छाने के काम में आनेवाली घास पैदा होती है। पर्या०—खढौल, खरहुर (ग० द०, चपा०)। [ खढ़+और< *खर+अवट, कट+अवट ]

खढ़ौल—(सं०) दे०—खढ़ौर। [खढ़+औल< खट्, कट+अवट ]

खतहवा झिंगनी—(सं०) एक प्रकार की तरकारी। बड़ी आकृति की झिंगनी ( पट० १ )। [ खतहवा+झिंगनी (देशी) ]

खतियान—(सं०) वह सरकारी रजिस्टर, जिसमें जमीन का पूरा ब्योरा लिखा रहता है (शाहा० १, पट० ४, मग० ५, म० २, चपा०, भाग० १ )। [ संभ०—खत्, खाता< क्षत्रम् (संस्कृ०), खत्तम् (पा०, प्रा०), खाते (मरा०), खात् (गु०, नेपा०)]

खतिऔनी—(सं०) वह बही जिसमें मालगुजारी का आय-व्यय या हिसाब किताब अलग-अलग लिखा जाता है ( शाहा० १, पट०-४, मग० ५, चपा०, म० २)। [देशी, संभ०-< खत (फा०)]

खत्ता—(सं०) (१) दे०—खई। (२) (ग०-द०)। दे०—खाद्। [ देशी, मिला०—खात ]

खदगोर—(सं०) (शाहा०)। दे०—खदौड़ खेत। [खद+गोर, खद< खाद< खाद्य, गोर< गोबर (?)< गोमल (?), मिला०—गो+मल]

खदहा—(सं०)—(१) हेंगा या चौकी से निचले भाग में ढेलों को चूर्ण करने के लिए बनाया गया लंबा गड्ढा। (द० मु०)। दे०—घघरी। (२) गड्ढा। [खद< हा (प्र०)< खात]

खदियाओल—(क्रि०) सिंचाई किये बिना ही अन्न बोने पर उसके बीज पर सड़ी पत्ती, घास आदि की खाद देना (द० प० म०)। पर्या०—गोआ पटारल ( मुहा० ) ( उ० प० म० )। [खदिया+आओल (क्रि० प्र०)< ०खात ]

खदैया—(सं०) खाद रखने की छोटी गड्ढी (मु० १)। [खद+ऐया (प्र०)< खाद< ०खात]

खदौड़—( सं० ) ( ग० उ० )। दे०—खाद।[ खद+औड (प्र०)< ०खाद]

खदौड़ खेत (सं०) वह खेत, जिसमें बहुत ज्यादा

पर्या०—गड़रा ( गया, सा०, म०, चपा०, पट० ४, मग०-५) । (२) वेल, नारियल आदि का ऊपरला मोटा छिलका । (३) कछुए के शरीर के ऊपर का भाग । [ मिला०—खर्पर ]

खपरा—(स०) दे०—खपड़ा । [खर्पर, कर्पर ]

खपरा छाअल-(मुहा०) खपड़े से घर का छाना । [ खपरा+छाअल, खर्पर+छादन ]

खपरा फेरल—(मुहा०) खपड़ा फेरना या खपड़े की छावनी की मरम्मत करना ।

खपड़ा बदलल—(मुहा०) दे०—खपरा फेरल ।

खपावल—(क्रि०) खपाना, समाप्त करना, आँख बचाकर किसी का माल उड़ाना । [ <क्षप् ]

खपियार—( स० ) पानी में फेंककर मछली मारने का एक प्रकार का जाल । [क्षपित्र (?)]

खभड़ल - (वि०) खोदने या खिसकने के कारण बना गड्ढा । पर्या०—खभरल ।

खभरल—(वि०) दे० खभड़ल ।

खभार -( स० )-(१) इंट आदि से बाँधने के पहले खोदा गया कुएँ का बड़ा गोल ढाँचा (गया) । दे०—दवह । (२) गड्ढा । (३) सूअरों के रहने की जगह । पर्या०—खोमार (चपा०) । [मिला०-स्काम्, कपाट (सस्कृ०), खपाच (हिं०)]

खभारल—( क्रि० )-( १ ) जमीन को हलके-हलके कोड़कर मिट्टी को ऊपर-नीचे करना (शाहा० १) । (२) नदी की लहरों से जमीन का धीरे धीरे कटना । [ खभरना (हिं०) ]

खमहरुआ—(सं०) एक लता जिसके कद और फल दोनों की तरकारी बनती है (मुं० १) । दे०—खम्हरुआ । [ देशी, मिला०—क्षमारूह (?) ]

खम्हल—(क्रि०)-(१) पशुओं का दुबर होना (पट० ४) । (२) दे०—खामल-३ ।

खम्हरुआ—(सं० ) एक प्रकार का कद, जिसकी तरकारी बनती है (पू० म० २) । दे०—ख्वार । [(देशी), मिला०—क्षमारूह (?), वाराही कद ( सस्कृ० ), वाराह कद, गेंठी ( हिं० ), चामार आलु, चामालु, चुपड़ि आलु ( बं० ), डुक्कर कद, वाराहीकद (मरा०) सुअरिआ, सालिवणा वेल्य (गु०) ]

खम्हा—(सं०)-(उ० प०, द० मु, पट०, चंपा०, द०-पू०, पट० ४, मग० ५, म० २, भाग० १, भाज०) । दे०-खमा और धुरही [<*स्काम ]

खम्हार—( सं० )—( द०-पू० म० ) । दे०—गाँज । [ खम्हा + र (प्र०)<*स्काम ]

खम्हार, खँभार—(स०)-(१) फसल तैयार करने की जगह, खलिहान ( मु० १, घर०-१) । दे०-खरिहान । (२) (द०-पू० म० ) । दे०—गाँज । [ खम्हा+र (प्र०) <*स्काम ]

खम्हिआ-(सं०)-(चपा०, भाज०) । दे०-खमा ।

खयरा—(सं०) वह बल, जिसका रग खैर की तरह थोड़ा लाल हो । (पट० १) । पर्या०—खैरा । [ खयर + आ ( प्र० ), खैर <*खदिरक ( सस्कृ० ), खइर ( प्रा० ), खइर ( कश्म० ) खैरो (न०), खैरा (हिं०, प०), खैरो (गु०), खैरा (मरा०) ]

खरहरा—(सं०)-(१) खलिहान के अन्न को बुहारने की झाड़ू (द० भाग०) । दे०—सिरहथ । (२) बथान आदि बुहारने के लिए रहेठे आदि की बनी झाड़ । [ खर+हरा <खर, खड= घास, तृण, अथवा <खल=खलिहान, हरा<√हृ ]

खर—(सं)-(१) खढ़, एक प्रकार की विशेष घास, जो घर छाने के काम में आती है (चंपा०-१) । पर्या०-खड़, खढ़, खरह (चंपा०) । (२) एक प्रकार की घास । [ ( देशी ), मिला०—कट्, कुट = घास, तण, खड, खट (सस्कृ०), खडो (प्रा०), खर (हिं०, प०), खर् (नें०), खड (गु०, मरा०), खोरु (कश्म०), खड़ा (ओ०), खड्ड (सि०)=खल्ली (नेपा०)]

खरई—(सं०)-(१) एक प्रकार की घास । (२) रब्बी या भैंती फसल का, विशेषकर रहर का, अनाज निकालने के बाद बचा हुआ डंठल (पट०, मग० ५) । दे०—खरेठा । (३) पान की लता के ऊपर की बनी झाड़ी । पर्या०—खरचा (द० प० शाहा०), फधुआ (द० मु०) । [ (देशी) मिला०—कट्, कुट्, खड, खट ]

खरकल—(क्रि०)-(१) बाढ़ के पानी का हट

जाना, खत्म होना (मुं० १)। (२) छिन्न भिन्न होना (मुं० १), खिसकना (चंपा०)। (३) चूपके माग खड़ा होना (मु० १)। [खरक+ल (प्र०) < *खरक < √खर। मिला०—सरकनु (सं० )=इकट्ठा होना। सरकतुँ (गु०)= व्यवस्था करना, गोजना ]

खरकायल—(क्रि०) सरकल क्रिया का प्रेरणार्थक, खरकाना।

खरकोटी—(सं०) मरिका रखने के लिए दीवार में बना छिद्र (गया, द०-प० बिहा०)। [खरक+ओटी < खरिका+ओटी, संभ०— < *खडक+खनट ]

खरचराइ—(सं०) (ग० उ०, गया)। दे०—खर चरी। [खर+चर+आई (प्र०)। खर (घेरा) अथवा < कट+चराई < √चर ]

खरचरी—(सं०) चरागाह के मालिक को दिया जानेवाला शुल्क (गं० उ०)। पर्या०—खरच राइ (गं० उ०, गया) चरदिया (शाहा०), घास चराई (म०, पट० पू०), घास चराई (म०, पट०, पू०), देना (म० पट०, पू०) भैंसौंधा (म० पट०, पू०), चरदाना (म० पट० पू०) भैना (द० पू०)। यह शुल्क कहीं कहीं केवल भैंसों के चराने के लिए ही लिया जाता है, अतएव 'भैंसौंधा' कहा जाता है। [खर+चर+ई (प्र०), मिला०—खरचराई]

खरचल—(क्रि०)-(१) पात्र आदि में लगी किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से खरोंचना। (२)व्यय करना।

खरचा—(सं०)-(१) (द०-प० शाहा०)। दे०— खरई। [देशा, मिला०—खरई ] (२) खेती आदि का व्यय। [खर्च (फा०)] (३) धोबी या लोहार का यथा खरचन का छोर नापन (द० भाग०)। [ < खरचन (बिहा०) ]

खरचाह—(सं०)-(द० भाग०)। दे०—खर चौकी। [खर+चाह, खर < खड़, चाह < चौकी (बिहा०)]

खरचौकी—(सं० -(पट०, गया)। दे०—खेर-चौकी। [खर+चौकी। मिला०—खरचाह]

खरभुआ—(सं०)-, पट०, गया भाग० ५)। दे०—खरबा। [खर+भुआ। < खर कर या (देशी) ]

खरपटाइ—(सं०) खेत में ही, कट हुए अनाज के बोझों को बाँटने की प्रक्रिया (चंपा द० पू० म०)। द०—काम बटाई। [खर+कट+आइ (प्र०) खर < कट, < खड, < खर+बटाइ < बटाइ < वंटन]

खरपिरया—(सं०) वह औषध, जो वनस्पति से प्राप्त होता है (चंपा० १)। [खर+पिरया। खर < कट, खड़, खड़, पिरया < बीज < वीर्य]

खरबुजा—(सं०) तरबूज की तरह का एक फल, जिसमें पानी नहीं होता तथा स्वाद में अपार मिठास होती है। पर्या०—लालमी (प० म०, पू०, प०), फूँट (द०-पू०)। [(देशी), खर+बूजा, बूजा < बीज (?)। खर्बुज (संक्षे०— मा० प्र० नि०), खरबुजा, खरमुज (ब०), खर्बुज, खरबूज (मरा०), तेलिया, धुसमेट्टी, तलिया भामड़ा (गु०), खरबूज (ते०) सडजमाते, पडभुजा (क०), खर्बुज (फा०) खरपुजह (अ०) ]

खरवन—(सं०) फसल काटने के समय लोहार, बढ़ई, नाई और धोबी को किसान की ओर से मिलनेवाला एक बोझा धान या कोई दूसरी फसल (उ०-प० शाहा०)। पर्या०—फेरा, पुरी, पालपसेरी (प० मं०)। [खर+वन्, खर < *कट, अथवा < खाटल (बिहा०), काटना (हि०) < √कृत। वन < √वन् (मांगने) (?), अथवा खर+वन्, खर (=डंठल-सहित पयाल) का मिलनेवाला भत (मजदूरी) ]

खरवाँस—(सं०) पूस और चैत का महीना, जो हिन्दू रीति के अनुसार अशुभ माना जाता है और जिसमें शादी-ब्याह आदि शुभ कार्य नहीं होते। (शाहा०-१ चंपा०)। [खर+वाँस < *खर+मास]

खरवा—(सं०) वह जमीन, जिसमें चूना और गंधक का अंश अधिक मात्रा में हो (द० भाग०)। दे०—खारा। [खार+वा (प्र०, स्वार्थक) < खार ]

खरवाह—(सं०) समय से पहले सूखी जमीन में घास की जोताई। दे०—खरहर काबल। [खर+वाह। < खर, < कट या < खाग (हि०) वाह (प्र०) अथवा < √वह (?) ]

खरवाहा—(स०)–(१) सिंचाई करनेवाला पुरुष (द० प० म०)। दे०—पनछन्ना । (२) सींचने के समय खेत में पानी को इधर उधर बिखेरनवाला मनुष्य (सा०)। दे०—पनमोरा । [खर + वाहा । खर< खड अथवा कर्ष । वाहा (प्र०) वा< √वह ]

खरवे, खरवेह—(स०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानवाली धान की बोआई (गया)। दे०—खरहर बावग। [खर+वे। खर< *कट, < *कर्ष अथवा खडा ( हिं० )। वे < वाप (=वपन) (?) < √वप ]।

खरवेह—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानवाली धान की बोआई (गया)। दे–० खरहर बावग। [खर+वेट, मिला०-खरवे]

खरसान—(स०) तम्बाकू का टूटा असार डंठल और पत्ता ( द०-पू० म० )। दे०—झाला। [देशी, वा खर+सान। खर< कट (=घास) +सान <समान ( सन-बिहा० =सामान, यथा-ऐसन यसन, तसन आदि)। मिला –खर सन (संता०)=बिना तयार किया हुआ तम्बाकू

खरहर बावग—(सं०) सूखी जमीन में समय के पहले की जानेवाली धान की बोआई। पर्या०– घुरिया बावग ( गं०उ० ) ठर्रा (शाहा०, पट०), खरवाह, खरवेह खरवे (गया), बीपा (पट०) घुरधूसा(द० मुं०), खरहरिया बावग ( म० २, पट० ४, मग० ५)। [ खर+हर+ बावग। खर< कट कर्ष अथवा खडा (सूखी भूमि के लिए प्रयुक्त) +हर< √हृ अथवा खर (∠खड़ा) + हर < हल। बावग < वाप (+क) < √वप् ]

खरहरल—(कि०) खरहर से जमीन को झाड़ना। (वि०) खरहरे से झाड़ी गई जमीन आदि।

खरहरा—(स०) खलिहान में अन्न बुहारने अथवा बथान बुहारने के लिए प्रयुक्त झाड़ू (चपा०)। द०—खिरहथ। [खर+हरा। खर< कट अथवा खल (= खलिहान ) हरा <√हृ वा झाड़ा < झाड़ल (बिहा०) < उद्+ < हृ। खराट (मरा०)< खर+यष्टि (सस्कृ०)—(म० व्यु०)]

खरहरिया बावग—(स०)—(म० २, प० ४, मग० ५)। दे०—खरहरा बावग।

खरहरा—(स०)—(द० भाग०)। दे०–खरहरा।

खरहा—(स०)। द०—खडहा।

खरही—(स०)—(१) पान की लता के आधारा स्तम्भ, जो प्रत्यक कोरो के बीच में छ छ पड़ते हैं। [ (देशी)—सभ० <खर वा खड ] (२) बड़ा खड़ (चपा० १)। [खर+ही (प्र०) < खर, मिला०-कट। खरही (हिं०)=घास वा अन्न का ढर ]

खरहुल—(सं०)—(ग० द०)। दे०—खढ़ोर। [खर+हुल (प्र०) अथवा< भू]

खरिकौता—(स०) खरिका (दतखोदनी) रखन के लिए दीवार म बना छिद्र या ताखा (उ०-पू० म०)। पर्या०—मुक्का (पट० ४) खरफोटी, मुड़की (गया, द०-प० बिहा०)। [ खरिका+ औता । खरिका<खर ( हिं० )+इका (प्रत्य० प्र०), औता <अवट (सस्कृ०)= खात, छिद्र]

खरित—(स०)—( शाहा० )। खदोड खेत। [ देशी ]

खरिदगी—(स०)–(१) खरीद कर अधिकृत की गई करमुक्त भूमि। पर्या०-इनाम, इनामात, खैरात (शाहा०), खुसबक्स (द० भाग०) = प्रसन्नता या सौहार्द के कारण मिली हुई अधिकृत करमुक्त भूमि। (२) खरीद कर जमीन पर अधिकार करनवाला, न कि मौरूसी हकवाला (शाहा०)। (वस्तुत शब्दार्थ— खरीद की हुई है) दे०—गरमौरुसी। [खरिद+गी(प्र०)< खरीद (फा०), मिला०— क्रीत, क्रीति < √क्री ]

खरिदार—(वि०) खरीदी हुई सम्पत्ति का धन स्वामी। पर्या०—पैदार। [खरिद+दार (प्र०) < खरीद (फा०)]

खरिहान—(स०) फसल की दौनी के लिए बनी हुई जगह (बिहा०, भाज०) पर्या० — खरिहानी (प०, दर०-१)। [खरि +हान < *खलधान, < * खलाधान, < * खले+धानी—(नेपा०)] खलिहान (हिं०), खरियान, खरिहान, खरी

खरिहान

खलखलाएल—(क्रि०)—(१) मछली का पानी में इस तरह घूमना कि पानी ऊपर तक उछल पड़ ( भोज० )। (२) पानी का खौलना। [अनु०]

खलचोइया—(सं०) भुट्टे के ऊपर की पत्तियाँ (चपा०)। दे०—खोइया। [ खल+चोइया =चोइँटा ( बिहा० ), चोंई ( हि० )<चोंच (संस्क०)=छिलका। खल=क्षाल, क्षालित। मिला०—खलकोइया]

खलड़ी—(सं०) चमड़ा। त्वचा। दे०—चाम। [खल+डी<*खल्ल,<खाल]

खलवा—(सं०) गहरी जमीन जिसमें पानी नहीं हो। दे०—खाल। [खल+वा ( प्र० )<खात (?) अथवा खल (=खलिहान) >खल्य। मिला०—खल्ल=नीची भूमि ( = खल्लो वस्त्रभेदे स्याद् गर्ते चमणि चातके'—मवि०]

खलसी—(सं०) एक प्रकार की मछली। [देशी]

खलार—(सं०)—(१) वह गहरी जमीन, जिसमें पानी न हो (उ०-पू० चपा०, भाज०)। दे०—खाल। (२) नीची जमीन। (३) खाल, चमड़ा। [खल+आर ( =हरा<धरा), <खात (?) अथवा खल (=खलिहान)∠खल्य। खल्ल-धरा। खातधरा वा खलधरा ]

खलिहानी—(सं०) किसान द्वारा अधिकार जता कर लिया गया भत्ता जो विशेषतः खलिहान की रक्षा आदि के नाम पर लिया जाता है (पट०)। पर्या०—भौंधर (शाहा०) मँगनी माँगन (पू० म० पट० ४)। [खलि+हान+ई (प्र०)<खलेधानी] टि०—खलिहान में तयार अन्न के बटवारे की पद्धति में फसल की कटनी जमींदार और किसान दोनों की देख रेख में होती है और वह फसल एक संयुक्त खलिहान में एकत्र की जाती है। उसकी देख रेख दोनों दलों की ओर से सावधानी से होती है। जबतक गाँव की अधिकृत सब फसल खलिहान में आ नहीं जाती है, दौनी नहीं होती। जब तक दौनी, ओसाई और बँटवारा नहीं हो जाता, तबतक उस अन्न में से कोई कुछ भी नहीं उठा सकता है। किसान कटनी के बाद खेत में से गिरे हुए अनाज की बाल को लोढ़ ( चुन ) कर ले सकता है। हाँ, फसल का एक विशेष परिमाण भी उसे मिलता है, जिसे वह मजदूरी में काटनेवालों को देता है। संयुक्त फसल में से ही गाँव के बढ़ई, कुम्हार, लोहार, चमार, मुंशी आदि कारीगर या पौनीवाले अपना अपना भाग ले जाते हैं, क्योंकि वे वर्ष भर किसान और जमींदार का काम करते रहते हैं। बँटवारे के लिए तयार अनाज की राशि से इधर-उधर खसरा आदि में साथ उड़ा हुआ अन्न किसान का ही होता है। 'विसुनपिरित' भी सम्मिलित राशि से निकलता है। इन सब के बाद बची हुई राशि में जमींदार अपना भाग लेता है। धूलि आदि के साथ मिला हुआ अन्न किसान का होता है। इस प्रकार के बँटवारे में पुआल, भूसा आदि किसान का ही होता है। यह पद्धति जमींदारी प्रथा के समय की है।

खल्ली—(सं०) तेलहन का वह भाग, जो तेल निकाल लेने के बाद कोल्हू में बचा रहता है और जिसका प्रयोग पशुओं के खाने या खाद में होता है। दे०—खरी। (२) जमीन या बोर्ड पर लिखने का उजली मिट्टी का एक साधन, खड़ी, चक। [ खटी, खली, कल्क (संस्क०), खली (प्रा०), खली (हि०), खलि (नें०, ब०, ओ०), खल (पं०, ल०), खल (मरा०)]

खल्हर—(सं०)—( उ० प० )। दे०—खाड़। [खल्+हर ( <धरा ) <खल्ल + धरा, खात + धरा वा खल+धरा। खल्हड़ (नें०) खलड़ा (हि०)]

खवुरा—(सं०) दे०—खोरा।

खसकल—(क्रि०) गिरना, अपने स्थान से हटना। [ मिला०—खस्ल ] ( वि० ) गिरा हुआ। [खसई (प्रा०), खहिबा (असं०), खसा (ब०), खसिबा (ओ०), खसना (हि०), खस्नु (नें०), खसनु ( गु० ) खसणें ( मरा० )—टनर के अनुसार ये सभी रूप खसुन (कश्मी०)=उठना)-की एकरूपता में है। यद्यपि अयमद हैं। ये *खस्स (म० भा०) में प्रविष्ट हैं। मिला०—√कष, √क्लम ( =जाना, घूमना ), √खश <चोट करना ]

खसरा—(सं०) पटवारी की खत बही, जिसमें

खाँनल-(वि०) लात से कुचला हुआ, कुचला हुआ (चंपा० १)। (क्रि०)—लात से कुचलना, कुच लना। [ खोंन+ल (वि० प्र०) < खुन्हल (व० भा०) < √क्षुदिर (=सपेषणे=पीसना)

खाँजाँ—(स०)—दो चढ़ावों या जलाशयों के बीच में उठाया गया किनारा या मेंड (द० प० शाहा०) पर्या०—मेंड़ ( शाहा० शेष भाग ), पींड (गया) अलग (प०), आहर(व० मु०), बांध, बान्ह (अन्यत्र)। [ (देशी) अथवा-खों+वाँ <खेयबन्ध (?) या खात+बन्ध ]

खाँवाँ, खावा—( स० ) तालाब या तलाई के चारों ओर का बाँध (पट० पट० ४, मग० ५) दे०—मीड। [< खात+बन्ध]

खाई—(स०)—दे०—खई। [< खेय]

खाजा—(स०)—(१) ताड के फल के भीतर का वह हिस्सा, जो कटहल के कोए के आकार का होता है तथा खाया जाता ह (चपा० १)। (२)—एक प्रकार की मिठाई, जो लम्बी और और परतदार होती ह। [ खाद्य, खाद्यक (सस्कृ०), खज्ज, खज्जक (प्रा०), खज्जय (प्रा०), खाजा (हिं०), खाज्जा (प०, खाजा (ने०)=हल्का भोजन, जलपान। खाजे (कुमा०)=भात। खाजु, खाज (सिं०), खाजे (मरा०)=किराना ]

खाढ़ी— स०) (१) (म०) : दे०—गढ़ा। (२) दे०—खाँडी। [< खात, कुट]

खात—(सं०)—(व० भाग०)। दे०—खाँढ़ी। [< खात]

खाता—(सं०)-(१)-(चपा०)। दे०—खेढा। (२) कोल्हू का परनाला, जिससे होकर ऊख का रस बहता ह ( सा० )। दे०—नाली। (३) ( चपा० )। दे०—खाद। (४) ( गं० व० )। दे०—खाद। [ खात ]। (५) पटवा रिया की खत-संबंधी बही। (६) खतों का चकला। [मिला०—खत (फा०) कत (फा०)]

खातिर—(सं०) जमीदार की ओर से पट्टदार को ऋण के चुकते में की गई छूट (पट० गया)। दे०—दहिहकी। [खातिर (अ०)]

खाद-(सं०)-(१) अन्न रखने के लिए जमीन खोद कर बनाया हुआ गड्ढा। पर्या०—खत्ता या खाता ((ग० व०), चौर (द० पू० म०), माट (गया), खाध या खाधा (द० भाग०)। [< खात] (२) भूमि की उवरता के लिए खतों में डाली जानेवाली गोबर, कूड़ा करकट अथवा रासायनिक मिश्रण से बनी चीज (बिहा०, आज०)। (यौ०)-खाद के गड्हा =खाद बनाने का गड्ढा। [ < खाद्य ] (३) उख रोपने के पहले बीज रखने का गड्ढा (सा०)। पर्या०—खाता (चपा०), गाड़ा (शाहा०), गँड़सा (गया), वलसार (पट०), टोनखाद, टोनखाधा (उ० पू० म०)। [< खात] (४) किसी अन्न में निम्न प्रकार की चीजों की मिलावट (चपा० १)। किसी चीज में बाहर से मिलाई गई या मिली हुई विजातीय चीज (चपा०-१)। [ खाद ( हि बिहा० ) =गोबर आदि की खाद। अपवित्र या निम्न स्तर की वस्तु। खाद्य अथवा अ+खाद्य ]

खाद के गड़हा—(स०) गोबर, कूड़ा-करकट आदि की खाद बनान का गढ़ा। दे०—घूर। [खाद के+गड्हा (यौ०)]

खादर—(सं०)-(१) गोबर, मूत्र, कूड़ा करकट आदि की बनी खाद ( ग० उ०, सा० १ ) पर्या०—खदौड़, खद्धी (ग० उ०), गोंदौरा (पू०) गोआ (पू०), करसी (पू०), घूर (गं० व० प०), गनौरा (पू०, सा०, पट० ४, मग० ५), गदौरा (पू० सा०), कूड़ा(पू०, सा०), कूड़ा-कुरकुट (पू०, सा०), बहारन (पू०, सा०), गोनरौर, गोनौड़ (द०-पू० म०)—(इसका अथ, कूड़ा-करकट या बहारकर इकट्ठी की गई गन्दगी भी है।) [<खाद्य, सभ०—खात्रम (सस्कृ०)=गढ़ा खातर (पु०)] (२) घास पात जलाकर बनाई हुई खाद (उ० प०)। पर्या०—गोआ ( उ०-पू०, म० ), अलाह ( पट० गया ), डाही ( प०, गया ), टूरा (व० मु०, छारी (व० भाग०)। ,खाद+र (स्वा० प्र०)< खाद्य ]

खादर के गड्हा (स०) दे०—खाद के गड्हा।

खाध—(स०) अन्न रखने क लिए जमीन खोद कर बनाया हुआ गड्ढा (व० भाग०)। दे०—खाद। [< खात ]

खाहिन—(स०) मोटे दानों का एक प्रकार का धान (द० प० शाहा०)। [देशी]

खिचड़ी—(स०)-(१) दाल चावल मिलाकर बनाया गया भोजन। पर्या०-पु गल (पट० ४) (२) मकर-संक्रान्ति का पर्व, जिसमें नये चावल की खिचड़ी खाई जाती ह (भोज०)। दे०-संकराँत।

खिचड़ी—(स०) दे०-खिचड़ी। कहा०-'कोठिला चढ़ि बोल जई, खिचड़ी खाय क्यों नहीं बोई (—घाघ) = छोटी कोठी पर चढ़कर जई कहती है कि उसे खिचड़ी खाकर, अर्थात् मकर-सक्रांति के बाद क्या नहीं बोया?

खिचा—(स०)-(१) फसल (मकई आदि) की न पकी हुई (दुधिया) बाल (म०, भाग० १)। दे०-दुदघा। (वि०) (२) वह फल, जो अभी पुष्ट तथा पोख्ता न हो कोमल हो (चपा०, म० २, मग०-५)। [< *कच्यक< √कच (विकसन)]

खिजल—(क्रि०) धान का झड़ना (दर० १) पर्या०—छिजल। [< √छि (क्षये), अथवा < सीद् √< √पद्लृ (विशरणगत्यवसादनषु)]

खिजाया—(स०) पहली बार कूटा गया चावल, जिसमें धान और चावल मिले रहते हैं (उ० पू० म०)। दे०—मुहचुर। पर्या०—अँकड़ा (मग०-५), अखरा (म० २), धोकड़ा (चपा०) [(देशी), मिला०—√छि (क्षये) अथवा √छिद् (=छोड़ना मुक्त करना)]

खिनहुरी—(सं०) पुराना और बिलकुल घिसा हुआ हल। (सा० १, चपा०-१)। दे०—खिनौरी [खिन+हुरी< *क्षीण+हल (?)]

खिनौरी—(सं०) पुराना तथा घिसा हुआ हल। पर्या०- ठँठी (द० पू०, उ० प० म०, चपा०) ठेँठा (उ० पू०, द० म०, चपा) मुटहरा (शाहा०), खिनहुरी (सा० १, चपा० १) मुँटहेरा (शाहा०)। [खिन+औरा< खिनहरी< *क्षीण+हल (?)] खिनौरी

खिनौरी के जोत—(स०) पुराने और छोटे हल से की जानेवाली जुताई (चपा०, सा०)। पर्या०—ठेँठा के जोत (म०, चपा०) खुँट हरा (शाहा०)। [खिनौरी के+जोत (यौ०) < खिनौरी< *क्षीणहल। जोत< *युक्त < √युज्। मिला०—√युत्, √जुत् (भासने)]

खिरदत—(सं०) छींटकर (बाबग) बोया जाने वाला एक प्रकार का धान (द० मुं०)। [खिर+दत< क्षीरदत (?)]

खिरनी—(स०) एक फल विशेष। यह पीले रंग का होता है और इसका फल छोटा तथा खट रस होता है (शाहा० १, चपा०, म० २)। [< *क्षीरिणी]

खिराज—(स०) जमीन की मालगुजारी (सा० १, चपा, म० २)। [खिराज (फ०)]

खिलकट—(सं०)-(१) वह परती जमीन जो पहली बार जोती जाती ह (म०)। दे०—खील-२। (२) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर-आबाद जमीन (द० पू०)। दे०-खिलमार। [खिल+कट< खिल (संस्कृ०)। कट (प्र०) अथवा < कटल< (बिहा०)< कटना (हिं०) < √कृत्]

खिलकट्टी—(सं०)-(१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है। दे०-खील-२। (२) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर आबाद जमीन (द० पू०)। दे०—खिलमार-२। [खिल+कट्टी। मिला०—खिलकट]

खिलमार—(स०)-(१) वह परती जमीन, जो पहली बार जोती जाती है। दे० खील-२। (२) (शाहा०)। दे०—आबाद। (३) धान बोने के लिए जोती गई नई गैर आबाद जमीन। पर्या०—नआबाद खेत (गं० उ०), नौखील (गया), खिलकट्टी, खिलकट (द० पू०)। [खिल+मार < खिल+मार < मार्त < मृत् (मिट्टी)]

खिलही—(सं०) जमीन्दार की ओर से किसान को चौथाई मालगुजारी पर या बिना मालगुजारी के परती जमीन देने की प्रणाली (चपा०, प० म०)। पर्या०—खासा घास (द०-पू० म०) खीलमारी (शाहा०)। [खिल+ही (प्र०) < *खिल]

खिल्लत—(सं०) सरकार की ओर से युद्ध आदि में की गई सेवा के बदले कम मालगुजारी

खुटिया-(स०) दे०-खुटिया।

खुटियारी—(सं०) ऊख की खट्टीवाला खेत (पट० १)। [ खुटिया+री (प्र०) <खोट ]

खुट्टा—(स०)-(१) ढेंकी का वह स्तंभ, जिसपर वह टिकी रहती है (द० भाग०, द० मुं०)। दे०--जघा। (२) मवेशियों के बाँधने का लकड़ी या बाँस का स्तम्भ, जो जमीन में गड़ा रहता है। (३) (पू० म०, ग० द०)। दे०— खूटा। [<क्षुद्र (१) <खोड (=हाथी आदि के बाँधने का खूंटा), खूँट (प्रा०)। मिला०—<√क्रुठ् (प्रतिघाते)—(म० व्यु०) खूँटा (हि०)]

खुट्टी—(स०)-(१) वह ऊख, जो पहले कट हुए ऊख की जड़ से पैदा हुआ हो (पट० १, चंपा०)। (२) कटी हुई फसल की जड़। (३) कपड़ा आदि लटकाने के लिए दीवार में गाड़ी हुई कील। [खोट, दे०—खुट्टा]

खुट्टी छोड़ल-(मुहा०) दूसरे साल के लिए कटी हुई ऊख की जड़ को छोड़ देना, ताकि फिर से उसमें पौधा उगे (पट०-१ चंपा०)। [खुट्टा+छोड़ल]

खुड़हेरल—(क्रि०) जमीन की ऊपरी सतह पर से मिट्टी या घास आदि का हटाना (चंपा० १)। [खुड़+हेर+ल (प्र०)<क्षुद्र वा खुर+हेर<हल]

खुदनी—(स०) फावड़ा चौड़े फलक की कुदाल (गया)। दे०—फौरा। [खुदनी <खोदल (विहा०), खोदना (हि०) मिला०-√क्षुद् अथवा √क्षुद् (=हिलना, डोलना, चलना (नव०—प्रयो०—मो० वि० डि०) ]

खुदनी

खुदर—(स०)—(प०, प० म०)। दे०—गुदरी [ <क्षुद्र ]

खुदराहा मालिक—(सं०) जमींदारी में कम (खुदरा) दाय रखनेवाला स्वामी (मग० ५)। दे०—खुरदिहा मालिक।

खुदरिहा मालिक—(सं०)—(चंपा०)। दे०— खुरदिहा मालिक।

खुदी—(स०) चावल का टूटा हुआ छोटा छोटा टुकड़ा (चंपा० १)। दे०—गुदी। [<*क्षुद्र (संस्कृ०), <खुद (प्रा०) ]

खुदर—(स०) ऊख की सिठ्ठी, जो जलावन या खाद के काम आती है (सा० १, म० २)। [<क्षुद्र]

खुद्दी—(सं०) चावल, दाल आदि के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े। पर्या०-खँड़ौरा (द०-प०-शाहा०), मेरखुन (द० मुं०, चंपा०)। [खुद+ई (प्र०) <*क्षुद्र]

खुन्दल—(क्रि०) लीपी पोती या बनी बनाई जमीन या किसी दूसरी वस्तु पर मनुष्य अथवा पशु द्वारा पैरों से कुचलना, जिससे उसपर पैर के चिह्न हो जाते हैं। [<*क्षोदन<√क्षुद्]

खुम-(स०) अन्न रखने के काम में आनेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बड़ा बरतन (ग० द०)। [<कुम्भ (संस्कृ०), मिला०—कुम्प, कुम्भ= गोल बरतन (लो० जर०)]

खुम

खुर—(स०) सींगवाले चौपायों के पैर की कड़ी टाप, जो फटी हुई होती है (चंपा०-१, विहा०, भाज०) [<खुर वा क्षुर। खुर (संस्कृ०), खुरो, खुर (पा०), कसुर (पु०)=खुर, खुर (स्त्री०) एड़ी (रोम०), खुर (बरबी), खुरि (पश्तो), खुर (=पैर)-(प० पहा०), खुर (कुमा०), खुरा (असo), खुर (बँ, मो०, हि०, प०), खुरा (ल०) खुरु (सिं०), खुर (गु०), खुर (मरा०), खुर् (ने०) ]

खुरकी—(सं०) अफीम या किसी अन्य फसल के साथ होनेवाली एक घास (उ०)। पर्या०— मछेती (उ०), रूआरी (सा०)—(मिला०- दमारा)। [ देशी, मिला०-खुरफ़=एक प्रकार का पौधा, खुटका (हि०) ]

खुरखून—(स०) पशुओं के द्वारा पद दलित फसल (गया द० मुं०)। दे०—पगाठ। [खुर+खून <खुन, (खुर) +खून, खूनल (विहा०), खूँदना (हि०)<√क्षुद् ]

खुरचन-(सं०)-(१) बरतन के खुरचन से निकाली हुई दाब अफीम। (२) खुरचकर निकाली गई वस्तु। पर्या०—खखोरन (गया, द० प० शाहा०, द० मुं०)। खखोरी (चंपा०, म० २)। [ <क्षरण<√क्षुर् ]

खुर्पी—(सं०) (१)-कड़ाह की पेंदी में चीनी बठन से बचाने के लिए उसे खरचनवाला औजार। पर्या०—खुरपा ( सा०, चपा० ), कठखुरपी (उ०-पू०म०), पेड़नी ( पट० ) डपुग्न (द० भाग०) । (२)दे०-खुरपा [ खुर्पा+ई (अल्पा० प्र०) <क्षुरप्र]

खुश खरीद—(स०) खेती की वह प्रणाली, जिसमें नील की खेती करने के लिए निलहे किसानों को अग्रिम मूल्य तथा उचित मूल्य पर नील का बीज देते थे, जिसका मूल्य बाद में हिसाब के अनुसार चुकता होता था। पर्या०—खुसकी (चपा०), नखिरतखानी ( उ० पू० म० )। [ खुश+खरीद (फा०) ]

खुसकी— (स०)-(चपा०) । दे०—खुशखरीद । [खुस+की<खुश (फा०) ]

खुसकी ठीका—(स०) किसी विशप निश्चित कर पर कुछ वर्षों के लिए ली गई जमींदारी। [खुसकी<खुश्‍ा या खश्की (फा० ) मिला०—शुष्क (संस्क०)+ठीका ] (हि०) ]

खुसखुस—( स० ) ऊख की मिल का एक यत्र, जिससे छनकर रस अगले यत्र में चला जाता है और सिट्ठी पुन रौलर के पास लौट आती है (रौ०, हरि०)

खुसबरी —(स०) एक प्रसिद्ध छोटी पीली फली जो स्वाद में खट मिट्ठी होती है। दे०—मकोय [ खुस+बरी<कुश्यबदरी (?), मिला० गुज बेरी (अं०) ]

खूँट—(स०)—(१) बाँस की कोठी या वह स्थान, जहाँ बाँस होता है (शाहा० चपा०, सा०)। (२) कपड़े का एक छोर (शाहा० १ चपा सा० म०)। [ मिला०— कूट]

खूँट

खूँटा—(सं०)—(१) (म०, प०) दे०—खट्टा और जंघा। (२) मवेशियों के बाँधने के लिए लकड़ी या बाँस का बना स्तम्भ जो जमीन में गड़ा रहता है । (बिहा० साम०) (३)—वह स्तम्भ जिसके सहारे ढेंकी खड़ी रहती है। पर्या०—खुट्टा (पू० म०, ग० द० , खभा (पू० म०, गं० द० ) जघा ( प० म०, सा०, चपा० ), खाम्हा (प० म०, सा०, चपा०)। (४)—ऊख के कोल्हू का सीधा खड़ा खभा (पट०, गया)। दे०—हरसा । (५)—लाठा के पिछले भाग के अंत में लगी कील, जिसपर मिट्टी आदि का भार बांधा जाता है । पर्या०—खूँटी, गेंड़मेखा- पट०, गया०), गुल्ली ( पट० ), किल्ला (पट , द०-पू०)। [<क्षोड, मिला०—खुट्ट, खुट (प्रा०), मिला०—√कुठ (प्रतिघाते)—( म० व्यु० )।

खूँटा मानल— (वि०) वह मवेशी जो बिक्री के बाद दूसरे स्वामी के यहाँ जाने पर खाना छोड़ देता है ( शाहा० १, मग० ५, पट० ४, चपा०, सा०)। [खूँटा+मान+ल (वि० प्र०) ]

खूँटी—(स०)-(१)—नील, ऊख आदि की दूसरी फसल, जो पहली फसल के काट लेने पर उसी की जड़ से पुन उगती है। पर्या० दोंजी (द० पू०म०)। (२) ऊख काट लेने के बाद उसके मूल से निकला हुआ छोटा पौधा (अकुर), जो बाद में ऊख बन जाता है (गं० उ०, बिह०) । पर्या०—खुँटिया ( उ०-पू० म० ) पनपा ( बिह ), खूँटी ऊख रौ०)। (३) द०—खूँटा । (४) ऊख या किसी पौधे की जड़ या मूल ( गया, द० भाग० )। दे०—जड़। पर्या०—खुँटिया ।(५) छोटा खूँटा या कीला [खूँटा+ई (अल्पा० प्र०) <क्षोड, क्षुद्र । <खुएट (प्रा०)—नेपा० मिला०—कुठ (प्रतिघाते) (म० व्यु०) ]

खूँटी ऊख—(स० )—दे०—खूँटी ( रौ० )। [खूँटा+ऊख]

खूआ, खोआ—(स०) खलिहान में दौवन के लिए छोंटी हुई तयार फसल ( द० भाग० )। द०—पर। [<*क्षोयक<क्षुद्रक]

खूका—(सं०)—नारियल या ताड़ की आँठी के भीतर का बहुत ही मुलायम गूदा (शाहा० १) [देशी]

खूरा—(स०)—(१) वह आधार, जिसपर अन्नागार (कोठी) अवस्थित रहता है (पट०)। द०—गोड़ा। (२) (द० प०शाहा०) दे०—कन्आर । [<स्तक, <क्षोडक]

खेती भवानी—(सं०) फसल या तरकारी काटने के समय कोइरियों द्वारा पूजित एक देवी। [खेती+भवानी < *क्षेत्र+भवानी]

खेना—(सं०) दे०—अखना। [खेना < अखेना < *अक्षाणि। दे०—अखेना]

खेप—(सं०)-(१) बोझों के ढोने या किसी और काम का क्रम या पारी। (२)—(चपा०)। दे०—खुआ। [< *क्षेप < √क्षिप]

खेपान—(सं०) ऊख के रस का उतना परिमाण, जितना एक बार में उबाला जा सके (द०-पू० म०)। दे०—ताव। [खेपान < खेप (बिहा०) (=बार, क्रम) < *क्षेप < √क्षिप्]

खेरही—(सं०) एक कदन्न, जिसके चावल की खीर अच्छी बनती है। यह कोदो की जाति का है (मुं०-१)। पर्या०—खेंढी (कहीं-कहीं)। [देशी, मिला०—कोरदूष]

खेहा—(सं०)—(चपा० १)। दे०—खड़ा। [देशी]

खेवट—(सं०)—(१) किसी जमींदार के किसी गाँव में हिस्से की तहसील (सा०-१)। (२ यह कागज, जिसमें मालिक, मुकर्रीदार या पिरितदार के हक का इंदराज रहता है (सा०-१)। [खे+वट < खेत+वट < बाँट]

खेसरा—(सं०) वह कागज, जिस पर खेत का नम्बर और क्षेत्रफल लिखा रहता है। (सा० १, चपा०, मग० ५, पट० ४, म० २)। [खसर (अ०), खसरा (हिं०) खेसो (ने०)]

खेसारि—(सं०)-(दर० १)। दे०—खेसारी।

खेसारी—(सं०) एक प्रकार का दलहन, जो छोटा, किंतु तीन ओर से थोड़ा चिपटा, ऊपर से मटमैला और भीतर पीला होता है। (चपा० १, मग० ५, पट० ४ म० २, भाग० १)। पर्या०—लतरी (शाहा०), खेसारि (दर० १)। लोको०—सुकर तारा बल खेसारी, बाभन आम, कायथ काम। —मुसलमानों को ताड़ी बैलों को खेसारी, ब्राह्मणों को आम तथा कायस्थ को काम प्रिय होता है। [खेसारी < खजसारि, कृशर (हिं० न० सा) सम०—खे+सारी < खेत+सारी < *क्षेत्रशालि अथवा कशेरुक (क+शरुक) < क (=वायु या जल) +√शृ (हिंसायाम्) या √श्रा (पाके), अथवा √कश (शब्दे) या त्रिपुट होने के कारण, कृशानु (=आग=तीन)+पुट (?) खेसारी (हिं०), खेसारी (ब०), खेसारी (ओ०) खेसारि (ने०)]

खेस्टा—(सं०) बिना रजिस्ट्री की गई जमीन-संबंधी कागज। (चपा० १, मग०-१, म० २, पट० ४) [देशी, मिला०—खेस्रो (ने०)]

खेहा—(सं०)-(पट०) दे०—खेंढ़ा। [< खात, < कर्ष]

खैंचा—(सं०) बड़ा टोकरा। [खैंच+आ < खचित < √खच]

खैंची—(सं०)-(१) कोल्हू में ऊख के टुकड़े डालनेवाली टोकरी (शाहा०, पू० म०)। दे०—छँटी। (२) टोकरी। [खैंच+ई (प्र०) < खचित < √खच या √पच् (समवाय)]

खैर—(सं०)-(१) एक प्रसिद्ध कँटीला वृक्ष। यह खंभा आदि के काम में आता है। पर्या०—खैरा (चपा०)। (२) पान के साथ खाया जानेवाला कत्था। [खदिर (संस्कृ०) खदिर (पा०), खयिर (प्रा०), खैर (हिं०), खैर (बङ्ग०), खेर (अस०), खयेर (ब०), खइर (ओ०), खेरी (सिं०) खयर (ने०) खेर (गु ), खैर (मरा०), क्रिहिरि (सिंह०)]

खैरा—(सं०)-(१) धान में लगनेवाला एक कीड़ा, जिसके कारण बाल पीले रंग की हो जाती है तथा उसमें दाना नहीं होता (प०)। पर्या०—खैरी (उ० पू० म०)। [देशी, सम०—कत्थई वर्ण के कारण) < खैर < खादिर] (२) एक प्रकार का कँटीला वृक्ष। इसकी लकड़ी मजबूत होती है और खंभा आदि के काम में आती है (चपा० १)। दे०—खैर १। [खैर+आ (प्र०) < *खादिर, < *खदिरक]

खैरी—(सं०)—(उ०-पू० म०)। दे०—खैरा। [देशी, मिला०—खैरा]

खोंइचा—(सं०)-(पू० म०)। भुट्टे के ऊपर की परतदार पत्तियाँ। दे०—खोईया। [खोक्षिक < कोश, < कुचि या √कुच, √चोद्द (=फेंकना निकालना)]

खोंसरा—(सं०) मकई या धान में से दानों को निकालने के बाद बची हुई डाँठ (द०-म० शाहा०)

<√खुद, <*कुचित<√कुच्, <*खोटित <√खोट या <कोशिक <कोश]

खोखसा—(सं०) एक प्रकार का फल (बर० १)। [मिला०—खेखसा]

खोजड़ा—(स०) पाला या मारा आदि से ग्रस्त ज्वार, मकई, बाजड़ आदि की फसल (शाहा०)। दे०—मखियाएल। [देशी, मिला०—√खज् (मन्थ) √खज (गति वकल्ये)]

खोढ़ली—(स०)-(१) कोठी या दीवार के भीतर कुछ रखने के लिए बनाया गया छोटा सा खोखला भाग ताखा (चंपा० १)। (२) आम के बगीचे में आम रखने के लिए जमीन खोदकर और उसके ऊपर कुछ रखकर तथा उसे मिट्टी से ढककर बनाया गया गड्ढा। इसमें बगल की ओर मुंह रहता है। (चंपा० १)। पर्या०—खधुली (चंपा०) खोधिला (म०-२)। [खोढ़ल +ई (प्र०)<खोढर, खोढ़ल <कोटर] (?)]

खोधिला—(सं०) दे०—खोढ़ली २ (म० २)।

खोमरुआ—(स०) रतालू (शाहा० १)। दे०—खमहरुआ। [देशी]

खोमी—(सं०) एक पशु-खाद्य घास (द० पू० मं०, गया, चंपा०)। [देशी, मिला०—खुमा (=अलसी सन या नील) खुमा, खमा=एक प्रकार का अस्त्र)]

खोर—(सं०)-(१) इकट्ठा किये हुए अनाज की राशि (उ० पू० म०)। दे०—रास। [खोण= समूह (मो० वि० डि०)] (२) पानी का घेरा। बांध का घेरा। बंधा हुआ पानी (मु० १) (देशी, मिला०—खोड (देशी)=सीमा निर्धारक काष्ठ। खाड (सरक०)=खूंटा] (३)-(द० पू० म०)। दे०—खोरा। [मिला०—खोरा] (४ म्हां मयरो का मिट्टी का बड़ा बरतन (म० २)

खोरा—(स०)-(१) ऊख के उबाले हुए रस को रखने का बरतन (द० पू०)। दे०—मटुकी। (२) वह बरतन, जिसमें बालू से उग का रग चूरा है। पगा-न्नार (द० पू० म०), नाद (शाहा०), कुंडा (शाहा०, प० म०, पट०), छन्ना। (३) अन्न रखने के काम में आनेवाला एक प्रकार का मिट्टी का बड़ा बरतन (पट०, गया, द० मु०)। (४) गुड़ रखने का मिट्टी का बरतन, तौला, बड़ा बरतन (मु० १)। [मिला०—कुत्तू (चमड़े का बना तेल का पात्र), खोडी (देशी)=काष्ठ की पेटी (पा० स० म०)। खोण <खोणी। कूट या कुड=एक प्रकार का बरतन। खोल या खोलक (=पात्र)]

खोरा

खोरासानी जवाइन (स०) अजवायन की तरह का एक मसाला। [खोरासानी+जवाइन]

खोल—(स०)-(१) पानी पटाने के काम में आने वाले ढकुल के खम्भे की शाखाओं में किया हुआ छिद्र, जिसमें धुरी लटकती रहती है। (२) नाव में से पानी उपछने का एक बरतन (म० २)। (३) किसी वस्तु का ऊपरी आवरण। (४) ओढ़ने का मोटा कपड़ा। (५) दे०—अनपट। [√खुड, √खुल, <खोल, <खोलक]

खोलड़ी—(सं०)-(१) बीजकोष के ऊपर का छिलका (द० पू० शाहा०)। दे०—खोइया। (२) मंडुए के दानों को निकाल लेने के बाद बची हुई ऊपर की भूसा (द० प० शाहा०)। दे०—ढांटी। [खोल+डी<*खोल (सरक०)]

खोलसा—(स०) (म० द०-पू०)। दे०—अनपट, खोल। [खोल+सा <*खोल]

खोला-(स०)-(पू०)। दे० अनपट। [मिला०-खोल]

खोह—(स०) दौंवन के लिए खलिहान में छोटी हुई तयार फसल (चंपा, द०-पू० म०)। दे०—पोर। [<*खोट्य]

खोहिया—(सं०)-(१)-(गया)। दे०—खोइया। (२)—(पट०, गया पू०)। दे०—खोइया। (३) (म० प०)। दे०—खोइया। [<खोदित या खोद्य<√खुद]

खौरा—(स०)-(१) पशुओं के पर का एक रोग। इस रोग में खुर में घाव होकर उसमें कीड़े पड़ जाया करते हैं। इस रोग के होने पर पशुओं को जल में बांधा जाता है। जल से कीड़ों की मृत्यु हो जाती है। पर्या०—खउरा, खुरा। (२) कुत्तों का एक रोग। इसमें उनके सारे शरीर में घाव हो जाता है (चंपा०)। [खौर+आ, खौर<खुर]

गँड़सार—(सं०) ऊख रोपने के पहले बीज के रखने का गड्ढा (गया, भाग० १) दे० खाद। [गँड+सार गँड<गँडेरी (ऊख का छोटा टुकड़ा) <गड वा खड, सार<शाल<शाला अथवा गड<गर्त्त (संस्कृ०) गड (प्रा०) +सार<शाला]

गँड़सी—(सं०) चारा काटने का लोहे का बना हथियार, जिसमें छोटी, किन्तु कुछ भारी बेंट लगी रहती है (उ० प० म०)। दे०—गड़ासी। [गँड+सी <गंड वा खड+असि]

गँड़हर—(सं०) एक पशु खाद्य घास (शाहा०, गया, व० मु०)। पर्या०—गड़ार (व०-पू०), गड़हरुआ, गड़ेरी (उ०), गड़ियार (प०), गँडेर (गया), गँड़र (पट०)। [देशी, मिला०—गवेधु, गवेधुक (संस्कृ०)=तृणधान्य, गँडरा (हिं०) <गडाली]

गँड़ा—(सं०)—(१) चार गोइठे या अन्य किन्हीं चार वस्तुओं का समूह। (२) काले सूतों की एक प्रकार की माला (शाहा०) [गंडक]

गँड़ाढार—(सं०) ऊख की पहली सिंचाई (गया, व० प० शाहा०)। पर्या०—छँवका (शाहा०, छो०, भा०), पनगड़ा (पट०), अँधरी पटावन, अन्हरी पटावन (व० भाग०), पहिल पटावन (अन्यत्र)। [गडा+ढार, गंडा<कांड, ढार <ढाल (बिहा०), ढारना (हिं०) <√ध्वल (गतौ) (?)]

गँड़ारी—(सं०) (१) सींचने या बोने आदि की सुविधा के लिए खेतों में बने हुए जमीन के छोटे छोटे टुकड़े (पट०, व० पु०, भाग० १, मग० ५)। दे०—कियारी। (२) (गया, व० मु०)। दे०—आर। (३) पटाने के लिए खेत में बनी छोटी नाली (व० मु०)। [गर्त्त (संस्कृ०), गड (प्रा०), गंड, खड वा केदार]

गँड़ास—(सं०)—(म० २, चंपा०, भाग० १, पाज०)। दे०—गड़ासी।

गँड़ासा—(सं०)—(१)—(द० म०) दे०—गँड़ासी। (२) फरसे के आकार का एक अस्त्र।

गँड़ासी—(सं०) चारा काटने का लोहे का बना हथियार, जिसमें छोटी, किंतु भारी बेंट लगी रहती है (शाहा०, चंपा०)। पर्या०-गड़ासी (भाग० १)

गड़ासी

गँड़सी (उ० प० म०), गड़ाँसा (द० म०) गँड़ास म०-२, चंपा०, भाग० १)। [गँड+असी<गंड वा खड+असि]।

गँड़ुआ—(सं०) कुआँ बनाने या बगल की दीवार बाँधने में प्रयुक्त भट्ठी में पका मिट्टी का गोल पट्टा या इट (पट०, व० मु०)। दे०—खपड़ा। [गँड +उआ <गड वा खड]

गँड़ेर—(सं०)—(गया)। दे०—गँड़हर।

गँदौरा—(सं०) खाद, बुहारन (पू० सा०)। दे०—खादर। [गँद+औरा <गदा, खाद]

गधकटकी—(सं०) मिल की वह भट्ठी, जिसमें गंधक जलती है। इसके धुएँ से चीनी मिलों में चीनी साफ की जाती है। (हरि० री०, बिह०)। पर्या०—गधकभट्ठी। [गधक (हिं०, संस्कृ०)+टंकी<टैंक (अं०)]

गधकभट्ठी—(सं०) दे०—गधकटकी (री०)।

गधकी—(सं०) एक छोटी हरी मक्खी, जो धान के पौधे को हानि पहुँचाती है। (म० २, अन्यत्र भी) [गध+की <*गंध। *गधकीट]

गधया—(सं०) एक उड़नेवाला दुर्गंधयुक्त कीड़ा, जो फूल लगने से पहले ही ज्वार आदि फसल पर प्रहार करता है (पट०)। दे०—गाँधी। [<*गन्धिक]

गधी—(सं०) दे०—गाँधी।

गँभरी—(सं०) एक प्रकार का काला धान, जो बोने के दिन से केवल साठ दिनों में पक जाता है, इसका चावल लाल होता है (पू०, म० २)। इस धान के बाल बाहर नहीं निकलते, बल्कि पौधे में पत्तों के भीतर ही पक जाते हैं। दे०—साठी। [गभ+री <*गर्भ।

गँभरा—(सं०) ऊख की जड़ से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है (शाहा०)। दे०—दौंज। पर्या०—दौंजी (म० २, चंपा०)। [देशी, गोराद्य (?)]

गउ—(सं०) (चंपा०) दे०—गाय, गाए।

गउसाला—(सं०) दे०—गोशाला।

गगरा—(सं०) लोहे, पीतल या ताँबे का बना घड़ा जैसा पानी रखने का पात्र। दे०—गगरी, गागर।

गगरी—(सं०), (१) वह बरतन, जिसमें ऊख के रस

गजरमसर—(सं०) मटर, चना, जो और गेहूँ अथवा किन्हीं दो या तीन अन्नों का मिश्रण (शाहा०, शे०, भा०)। दे०—हरेरा। [गजर+मसर (अनु०), गजर+बजर (हि०)]

गजरा—(सं०) मूली की जाति का एक प्रकार का कन्द, जो खाने में मीठा होता है और कच्चा एवं पकाकर दोनों प्रकार से खाया जाता है। (चंपा०, शाहा० तथा अन्यत्र), पर्या०—गाजर (द० प० शाहा०)। [गाजर <गर्जर <गृञ्जन, मिला०—गजड़ा]

गजरौट—(सं०) पशुओं को खाने के लिए दिया जानेवाला गाजर का डंठल, पत्ता आदि (गया भाग० १)। दे०—गजरौटी। [गजर +औट< गर्जर]

गजरौटी—(सं०) दे०—गजरौट। [गजर +औटी< गर्जर]

गजाबजा—(सं०) दे०—गजरमसर। [गजा +बजा (अनु०) मिला०—गद्य पद्य (मिश्रित), गज्ज पज्ज (प्रा०)]

गजार—(सं०) खेत में पानी रहने पर जोतकर घास फूस सड़ाने की प्रक्रिया। दे०—गजर। [देशी, मिला० गंज]

गजार करल—(मुहा०) गजार करना। दे०—गजार [गजार+कर+ल (प्र०)]

गजारी—(सं०), (१) वह ऊख, जो मीठा नहीं लगता। दे०—चंडार। (२) छोटा आलू [गर्जारि (संस्कृ०)=एक प्रकार का केला या गाजर]

गजुर—(सं०) (१) भिगोये हुए अन्न में से निकला हुआ अंकुर। (२) भूमि पर उगा हुआ बीज का पहला अंकुर (द० भाग०)। दे०—डिभी पर्या०—गजुरा, गजूर (भाग० १)।

गजुरल—(क्रि०) अन्न में से अंकुर का निकलना। (वि०) अंकुरित। दे०—गजुर। [गजुर+ल (प्र०)<गजुर]

गजुरा—(सं०) (भाग० १)। दे०—गजुर।

गजूर—(सं०) (भाग० १)। दे०—गजुर।

गफड़ी—(सं०) एक जंगली झाड़, जो बाग आदि की मेंड़ों पर उगती है और जिसकी पत्तियाँ लाल बैगनी रंग की होती है। छोटी बघंडी। पर्या०—बघंडी (भाग० १, म० २, चंपा०, मग० ५)। [देशी, मिला०-गजा (हि०)<गञ्ज (संस्कृ०) =दूध, पानी आदि का बुलबुला]। टि०—गफड़ी या बघंडी के दूध या रस को निकाल कर उसे कुंडलाकार तण में लेकर फूंककर उसे बच्चे उड़ाते हैं और यह बुलबुला बनकर उड़ता है। इसका दातौन भी होता है।]

गट्ठा—(सं०) लकड़ी का बोझा (भाग० १)। [<*ग्रन्थिक]

गठकोबी—(सं०) एक तरकारी विशेष। गाँठदार गोभी (पट० १) पर्या०—कठकोबी (मग० ५), गेठकोबी (भाग० १)। [गठ+कोबी<गाँठ +गोभी]

गड़गड़—(सं०) मेघ की गड़गड़ ध्वनि। [अनु० मिला०, √गर्ज (अव्यक्ते शब्दे)]

गड़गड़ावल—(क्रि०) गड़गड़ की ध्वनि का होना। मेघ का उमड़ना।

गड़नी—(सं०), (१) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए जल प्रवाह के बीचो बीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (उ० प०)। दे०—बाँध। [देशी, मिला० —गाड़ना या गोड़ना, गेड़ना, मिला०—√गुरी उद्यमने=ऊपर उठाना)]। (२) एक पशु-खाद्य घास (उ० प०) [देशी, मिला०—गोंडर (हि०), गडाली (संस्कृ०)]

गड़हर—(सं०) एक प्रकार की घास, जो धान की फसल को हानि पहुँचाती है। (द०प०शाहा, म० २)। पर्या०—गड़ार (पू०म०), गोंड़र (प० म०, पट०), समार गड़ार (द० मुं०)। [देशी, मिला०—गन्धेधुक, गडाली]।

गड़हा—(सं०) गड्ढा, गहरा खत आदि। पर्या०—गड्ढा, गरहा, गहरा, गहरड (भाग० १), खदहा, खड्डा, डबरा। [गड्हा< *गर्त; < *कर्प]

गड़ही—(सं०) छोटा गड्हा।

गड़रा—(सं०), (१) चावल में लगनेवाला एक प्रकार का छोटा उजला कीड़ा (गया सा०,म०) दे०—गबड़ौरा। पर्या०—जलुआ (भाग० १)। (२) लकड़ी में लगनेवाला एक उजला कीड़ा, जो एक या सवा इंच का लंबा-मोटा होता है तथा इसका मुँह लाल-पीले रंग का होता है

(भाग० १) [देशी, मिला०—गडोलक=एक प्रकार का कीड़ा (मो० वि० डि०) (२) एक प्रकार की घास [मिला०—गवेधु, गडोल]

गड़हड़ो—(सं०) दुष्ट या मगोट जानवर का भागना रोकने के लिए उसके गले में बांधा गया लकड़ी का एक टुकड़ा। (द० भा०, भाग०-१) पर्या०—ठकड़ा, ठोकरा (चंपा०)। [गड +हडो<गलहडि=लकड़ी की शृंखला—(मो० वि० डि०)]

गड़हरुआ—(सं०) (उ०)। दे०—गँड़हर। [मिला०—गवेधुक, गडोल]

गड़हैया—(सं०) छोटा गड़हा (भाग० १) पर्या०—खधिया (म० २)। [गड़हा+एया (अल्पा० प्र०)<गर्त, गर्त]

गड़ार—(सं०)-(१) ऊख की जड़ में लगनेवाला एक कीड़ा (प०, चंपा०, मं० २) पर्या०-दियारा (भाग० १), दियार (चंपा०)। [मिला०—गंडोल+(क)] (२) एक प्रकार की घास, जो धान की फसल को हानि पहुँचाती है (पू०-म०, भाग० १)। दे०—गड़हर। (३) एकपशु-खाद्य घास (द०-पू०)। दे०—गँड़हर। [मिला०—गवेधुक, गडालि, गंडुत (संस्कृ०)]

गड़ारी—(सं०), (१) छत में बनाई गई छोटी छोटी धनारी (भाग० १)। (२) खंभ को दोरानियों के बीच पड़ी धुरी पर नाचनेवाली घिरनी (उ०-प०, द० सं०)। दे०—घड़ारी। [गड+आड़ी<*गंड (=पिण्ड खंड)+ आलि या आलि, गर्त+आलि]।

गड़ि—(सं०) बैलगाड़ी (चंपा०, म० २)। दे०—गाड़ी।

गड़िमान—(सं०) गाड़ी हाँकनेवाला। दे०—गाड़ीवान। [गाड़ि+मान]

गड़िमार—(सं०) एक पशुखाद्य घास (पट०) दे०—गँड़हर। [मिला०—गवेधुक, गंडालि, गंडुत (संस्कृ०)]

गड़ी—(सं०) बैलगाड़ी (भाग १, चंपा०)। दे०—गाड़ी। [गन्त्री (संस्कृ०), गड्डी (प्रा०), गड्डी (दे०), गड्डी (मरा०, गु०)]

गड़ी

गड़ी—(सं०) नारियल का गूदा [गरी]।

गड़ीवान—(सं०) गाड़ीवान [गाड़ी+वान <*गन्त्रीमत्]।

गड़ेरी—(सं०)—(१) एक पशुखाद्य घास (उ०)। दे०—गँड़हर। (२) भेड़ पालनेवाली एक जाति। [मिला०—गवेधुक, गंडालि, गडुत (संस्कृ०), गड्डलिका (=भेड़)]

गड़ोंड़ी—(सं०) घासजातीय एक पशुखाद्य घास (चंपा०, पट०)। दे०—घ [illegible]। [देशी, मिला०—गर्मुत्=एक प्रकार की घास (मो० वि० डि)]

गड़ोंओं (सं०)—(पट०, भाग०-५, प० ४)। दे०—कोठिला। [गड़+औओं (वि०-प्र०) गड़<गड (खाद्यान्न, घेरा)। गड+पूरा]

गढ़री—(सं०)—(उ० मं०)। दे०—गोरहरवा। [मिला०—गवेधुक, गडालि, गडुत (संस्कृ०)]।

गतान—(सं०)—१) बिना बांध के बोझ को बांधने के लिए घासों के समूह को ऐंठकर या बांस की करची को फाड़कर तथा ऐंठकर बनाई गई रस्सी (चंपा० १)। पर्या०—गात (शाहा०)। [गत+स्तान, ग+तान<√ग्रन्थी+तन्तु, गात्रतन्तु, ग्रन्थिताम, गात्रताम। गत (=बंधन)+तंतु या तार]

गतार—(सं०) पुर के नीचे का पतला या पताह (चंपा०, गया, भाग० ५)। दे०—[illegible]। [ग+तार, गात+तार, <गात्रतन्तु, [illegible]) मिला०—[illegible] (हिन्दी०) = [illegible], गत]।

गतौरा—(सं०) ऊख के बोझे को बांधनेवाली रस्सी (द० प० शाहा०)। दे०—[illegible] [गत+औरा, मिला०—गतान]

गत्ती—(सं०)—(द० भाग०)। दे०—गोरहोरी। [गत्ती]

गदर्पेहोआ—(सं०)—(पट०, गया) दे०—गदपुरना। [गद+पेहोआ <गदपूर्ण (?), मिला०—गदपुरना]]

गदविछोरा—(सं०)—(द० मुं०, भाग० १) दे०—गदपुरना—[गद+विछोरा, मिला—गदपुरना]

गदपुरना—(सं०) कमर, पाक आदि के [illegible]

में पदा होनेवाली पशु खाद्य घास, जो जमीन पर फली रहती ह। (शाहा०, चपा०) पर्या०—गधपुरना (प० मं०, चपा०) गदपेंडौआ (पट०, गया), गदपिडोडा (द० मुं०), पुरनवा (द० भाग०, भाग० १)। [गद+पुरना। गद<गदह (=रोगनाशक)। पुरना पुनर्नवा। गांद बन्ने पुरया (बं०), घेटुली, पयया (मरा०), साटोडी, (गु०), दुवेल्लडकिलु (क०), कम्मेदि (ते०), मूक्राचैकीरै (त०, अस्पत [फा०], पुनर्नवा [मं०)]

गद्रा—(सं०) [(१) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (ग० उ०, म० २, मग० ५)। पर्या०—कच्चा (ग०उ०), गादा, गद्दा, गादर (द० मुं०, चंपा०), अँकुरी (द० भाग०,चपा०, भाग० १), कचरी (शाहा० पू०)। (२) आम का रस (चपा० १)। [देशी, मिला०—गर्ध्य,गर्ध<√गृध् (=चाहना), खाद्य, खद्य <√खद् (स्थर्य=स्थिरता प्राप्त करना, घना होना। दे०—गद्दा]

गदराइल—(क्रि०) (१) फल और अन्न के गुच्छे का पकना। इस समय उपयुक्त वस्तुएँ पुष्ट हो जाती ह (चपा०-१, म० २, मग० ५)। (२) मटर बूट आदि के पौधा में दानो का पुष्ट होना। आम आदि फल का पुष्ट होना। (३) मोटाना (चपा० १)। "गदराने तन गोरटी।'-बिहारी। (वि०) गदराई हुई वस्तु [गदरा+आइल (प्र०)<खद्य, खाद्य (?)]

गदराएल—(क्रि०) (१) छीमी में अन्न का होना। (२)—चने आदि के पौधों में लगी ढढ़ियों या छीमियों के अन्न का पुष्ट होना (मुं० १, चपा० मग० ५)। (वि०) गदराई हुई वस्तु। दे०—गदराइल। उदा०—गदराएल या गाभा भल या। [गदरा+आएल (प्र०)< खाद्य, खद्य<√खद्]

गद्री—(सं०) फसल का अधपका अन्न (चपा० १, म० २)।

गदहलोट—वि०) (१)-वह मिट्टी, जहाँ गदहे लोटते हों (शाहा० १, म० २)। (सं०)-गदहे का लोटना। [गदह+लोट]

गदहिया—(सं०)(१) एक कीडा विशेष (शाहा० १)। (२)-एक जाति विशेष (शाहा०-१)। गोआ (म० २)। (३)—(पू० म०, सा०) दे०— पर्या०—गन्ही [गदह+इया (प्र०) गदहा <गर्दभ, गर्दभो, "गर्दभी क्षुद्ररोगजन्तु विशेषयो —(मेदि०)]

गदहिया धान—(स०) एक प्रकार का धान, जो मोटा और मटमले रंग का होता ह (पट १)। [गदह+इया (प्र०)+धान<गदहा+धान]

गदही—(सं०) (१) उगते हुए दलहन के पौधों को नष्ट करनेवाला एक कीडा (उ०)। पर्या०—गदहिया (पू० सा०, म०)। (२) गदहे का स्त्रीलिंग। [*गर्दभी (संस्कृ०)=एक प्रकार का कीड़ा, जो गोबर में पैदा होता है—सुश्रु०, —मो० वि० डि० "रासभे गर्दभी क्षुद्ररोग-जन्तुविशेषयो"- (मेदि०)]

गदीना—(सं०), (१) लहसुन के स्वाद का एक साग। (२) एक छोटा सा सुगंधित पौधा, इससे दाल छौंकी जाती ह (पट० १)। [देशी]

गद्दर—(सं०) एक प्रकार का भदई धान, जो उजला, लाल तथा कुछ मोटा होता ह। इसका चावल लाल या सफेद होता है। यह भाद्र-आश्विन महीने में तयार हो जाता है (सा० १, चपा० १, म० २)। पर्या०—गद्दरि (दर० १) [देशी, मिला०-गृत्स (संस्कृ०) गद्दर् (मं०) =दलदल भूमि, पंकिल भूमि]

गद्दा—(स०) (१)—(द० प० शाहा०)। दे०— पड़ारी। (२) बल, घोड़े और हाथी आदि की पीठ पर रखा जानेवाला मोटा गद्दा। (३)— रुई या नारियल के रेशे आदि को भरकर बनाया गया मोटा बिस्तर। [<*गर्त्त=ऊँचा स्थान, युद्ध रथ में बठने का स्थान, गद्दी, गादी (हिं०, मं०), गादी (बं०), गादि (ओ०), गद्दी, गड्डी (पं०), गड्डा (ल०) =एक पाँजा घास, गटा (सिं०), गादी (मरा०, गु०)

गद्दा, गादा—(स०) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (द० मुं०, मग० ५, म० २, चंपा०)। दे० -गद्दा। [<*खद्य<√खद्— "स्थैर्य=स्थिरता प्राप्त करना, घना होना,

मिला०—गल्वास्र्क (संस्कृ०)=स्फटिक का बना एक लघुपात्र, जिससे तरल पदार्थ पीया जाता था-(मो० वि० डि०), गम+ला<गुल्म+ल (प्र०), गुल्मक=झाड़ीदार, झाडीवाला, गम<ग्मा (पृथ्वी, मिट्टी)+आलु(=कठौती?)]

गमहारि—(सं०) एक प्रकार का पौधा। पर्या०-गम्हार (चंपा०)। [मिला०—गम्भारी]

गम्हडल—(क्रि०) धान आदि के पौधा का फूटने लगना [<*गर्भ<√गृभ्=√ग्रह (उपादाने=ग्रहण करना), <गह्वर]

गम्हड़ा भेल—(मुहा०) फसल में बाल फूटने लगना (द० प० के अतिरिक्त म०)। दे०—गभा भेल। [गम्हड़ा+भेल, गम्हड़ा<गर्भ, भेल<√भू]

गम्हड़ी—(सं०) फूटनेवाले धान आदि के पौधे। [गम्हड़+ई<*गर्भ, <*गर्भिन्]

गम्हरी, गँभरी—(सं०) (१) एक प्रकार का काला धान, जो बोने के दिन से साठ दिनों में पक जाता है (पू० म० २)। दे०—साठी। (२) अधिक पानी होने पर फसल में लगा एक रोग [<*गर्भ, <*गह्वर]

गरँड़ी—(सं०) पानी को खेत की सतह तक ऊपर चढ़ाने के लिए नदी-नहर आदि के जलप्रवाह के बीचोंबीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (द० मु०)। दे०-बाँध। [मिला०-गरोंडी]

गर—(सं०)—(१) काम में बैठ जानेवाला बैल (शाहा०, गया)। दे०-पड़आ। [देशी, मिला०—गड<गड़ना<गर्त्त] (२) खुरपी से खेत में उगी हुई घास को अलग करना। (*) निकौनी करके खेत से निकाली हुई घास-फूस। गरदेल, (भाग०-१, द० मु०) गर निकालल (मुहा०)=गरदेल) [उद्+गिर<√गृ=निकालना, वमन करना]

गरइ—(सं०)—एक प्रकार की मछली (सवत्र)। [<*गरघ्नी गटक (संस्कृ०), गरई (हिं०), गरई माछ (बँ०)]

गरकी—(सं०)-(१) बाढ़ या अधिक पानी हो जाने के कारण की गई भूमि कर की मुक्ति। दे०-माफ। (२) खेत के मालिक या जमींदार और बटाईदार या किसान के बीच मूल्य-निर्धारण के द्वारा उपज के बँटवारा करने की दशा में अन्न की कम उत्पत्ति होने पर उसके पूरक (भत्ता) के रूपमें किसान या बटाईदारको दिया जानेवाला अनाज का अतिरिक्त अंश। (ग० द०, चंपा०)। दे०—छूट। [गरक+ई (प्र०)<गर्क (अ०)=मग्न, डूबा हुआ, मिला०—गर या गीर्ण (संस्कृ०)<√गृ]

गरकी परती—(सं०) खेत के मालिक या जमींदार और बटाईदार या किसान के बीच मूल्य निर्धारण के द्वारा उपज के बँटवारा करने की दशा में अन्न की कम उत्पत्ति के लिए पूरक (भत्ता) के रूप में किसान या बटाईदार को को दिया जानेवाला अतिरिक्त अंश (द०मु०)। दे०—छूट। [गरकी+परती, मिला०—गरकी]

गरगही—(सं०) वह रस्सी, जिसे पशुओं की गरदन में लपेटा जाता है। [गर+गही, गर<, गल, गही√ग्रह <√ग्रह्]

गरदनी—(सं०) बैलों की गरदन के चारों ओर बाँधी जानेवाली गोल रस्सी। (चंपा०, म०, भाग० १)। दे०—गरदाँव। [गर+दन+ई<गरदन(हिं०)<गल (संस्कृ०)]

गरदनी

गरदाँव—(सं०) बैलों की गरदन के चारों ओर बाँधी जानेवाली गोल रस्सी (प०, द० मु० भाग० (१)। पर्या०-गरदनी (चंपा०, प० म०) गरौंधा (पट०), गरदाम (चंपा० १)। [गर+दाँव<गर+दाम <*गल+दाम]

गरदान—(सं०) (चंपा०)। दे०—गरदाँव।

गरदानी-(सं०)(१)-कोल्हू के बैल की गरदन के चारों ओर की रस्सी, जो पगहा और कड़ी से संबंधित रहती है (चंपा०)। दे० गरदावनी। (२) बैल की गरदन के चारों ओर बाँधी जाने वाली रस्सी। [गर+ दानी<गल+दामन् या ∠गरदन (हिं०)]

गरदाम—(सं०) गरदानी। मवेशियों के गले में बाँधी जानेवाली रस्सी। दे०—गरदाँव। [गर+दाम<गरदाम <*गलदाम]

गरदामी—(स०)-(उ० पू० मं०)। दे०—गरदावनी। [ गर+दामी< *गल+दाम]

गरदावनी—(स०) कोल्हू के बैल की गरदन के चारों ओर बँधी हुई रस्सी,जो पगहा और कड़ी से संबंधित रहती है। पर्या०—गरदामी (उ० पू० म०) गरदानी (चपा०)। [गर+दावनी <गलदाम, गलदामन ]

गरदेल—(मुहा०) खेत में उगी हुई घास को खुरपी से निकालकर अलग करना। दे०—गर।

गरनिकालल—(मुहा०) (बर०-१)। दे०—गरदेल [गर+निकालल]

गरहर—(स०) दुष्ट या भगोड़े जानवर को भागने से रोकने के लिए उसके गले में बाँधा गया लकड़ी का एक टुकड़ा या पट्टा (ब० भाग०, भाग (१)। दे०—ठेकर। [गर+हर। गर< गल। हर (प्र०) वा< √हृ ]

गरहरुआ—(सं०) एक प्रकार की घास (चंपा १) [मिला०-गवेघुक गरहेड़ुआ (हि०) (बिहा०)]

गरहा—(स०) दे०—गड़हा।

गरही—(स०) छोटा गड़हा।

गरही खरचा—(स०) (द० मु०)। दे०—गाई खरच [गरही+खरचा (देशी< गड्ढी< गड्ढा < *गर्त्त, खरचा (< खर्च (फा०)]

गरोंडी—(स०) पानी को खेत की सतह तक ऊपर उठाने के लिए नदी, नहर आदि के जल प्रवाह के बीचोंबीच इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (उ० प०, पट०, गया)। दे०—बाँध। गर+औंडी< गंड (=चिह्न चिह्नित)+औंडी< आड, आर]

गरियर—(वि०) काम में बैठ जानेवाला बैल (ब० प० शाहा०) दे०—परुआ। (गर+इयर <गर<गड़ना, मिला०-गर, गरियार (भाज०)

गरियार--( स० ) वह बैल, जिसका रंग मटमैला हो।

गरौंधन—(स०) पाड़ा या किसी दूसरे मवेशी के के गले में बाँधी जानेवाली रस्सी। पर्या० गरदाँव, गरऔंधा (शाहा०) गरदम (उ० पू० मं०)। [गर+औंधन< गल [illegible]]

गरौंधा—(सं०) बैलों की बाँधी जानेवाली गोल रस्सी (पट०। दे०—गरदाँव। [गर+औंधा< *गलदाम, दामन]

गलइया मसीन—(स०) वह मशीन, जिसमें खराब तथा गदी चीनी को गलाकर पुन स्वच्छ चीनी बनाने का काम होता है (रो)। [गलवया (बिहा०)+मसीन< मेशीन (अं०)

गलल-(वि०) वर्षा के कारण आहत या गला हुआ जूट अथवा कोई दूसरा अनाज (सा०) दे०—मराइल। (क्रि०) (१) पानी में किसी वस्तु का सड़ना। (२) लोहे आदि पदार्थ का पिघलना। [गल+ल (प्र०) <गरण, गलन < √गृ, < *गलति—मिला० गालयति (संस्क०) गलति (पा०) गलई (प्रा०), गल्हुन (कश्म०) गल्नु (नें०),गलुणों (कुमा०), गलिवा (असा०) गला (बं०) गालिबा (ओ०)=किसी छेद से निकालना। गलना (हिं०), गलणा (पं०), गलणु (सिं०) गलनु (गु०) मिला०—गालणु (ल०), गालणी (मरा०)—< *गालयति (संस्कृ०)। यह रूप गलति (संस्क०) से भिन्न है। गलति (पा०) गडिवा (असा०)=पानी की तरह गिरना, गला (बं०)=चूना गड़णु (सिं०), जलवुँ ( गु० ), गलणे ( मरा० ), गलनु (सिंह०)—(नेपा०)

गलावल—(क्रि०) गलल क्रि० का प्र०। खेत की मिट्टी का ढोंका तोड़कर पानी में गलाना। लोहे आदि धातुओं का पिघलाना। [ गल+आवल (प्र०) < गल <गलल < गालि< √गल+ णिच् गालयति ( संस्क० ), गाले गलावेइ (प्रा )गलाना (हि०)गलाउनु, गाल्नु (नें०), गालान (बं०), गालणु ( ल० ), गारणु (सिं०), गालवु (गु०), गालणे (मरा०) ]

गल्ला-(सं०) (१) खलिहान में इकट्ठा किया हुआ, फसल के बोझों का ढेर (उ० प० बिहा०, म० २)। दे०—गाँज। (२) धनसंपत्ति, अनाज। [गल्ला(अ०)]

गल्ला

गवँई—(वि०) गाँव का। [गवँ+ई (प्र०) गाँव< *ग्राम]

गवत-(स०)-(१) मवेशियों का खाद्य-पदार्थ, घास, पुआल आदि(चपा० १, शाहा०)। (२) बथान में एक साथ बाँधकर पशुओं के खाने के लिए दिया जानेवाला चारा (गं० उ०)। पर्या०—लेहना (शाहा०, चपा०), गौत (गया), गौतहा (पट०)। [गव+त<*गवाद <*गवाद्य, गौत, गवत, चारा (हिं०), चारो (ने०), गोअत्त (दे० प्रा०), गवत (मरा०), दे०—चारा, चरी (बिहा०)]

गवतचोर—(स०) घास खानेवाला पशु (द० प० म०, चपा० १)। दे०—निखोराह। [गवत+चोर<गव+त+चोर<*गवाद+चोर]

गवा—(स०)—(१) धान की रोपनी शुरू करने के दिन कृषक द्वारा अपने पड़ोसियों को दिया जानेवाला भोज। पर्या०—गाथा, गध (चपा०), पहिरोपा (पट० -४)। (२) धान के बीज का उतना परिमाण, जितना एक बार में रोपा जाता है। [देशी]

गवातेल—(मुहा०) पहले दिन धान का रोपना (चपा०)।

गवैंयाँ खरच—(स०) जमादारों के विषय में होनेवाला एक प्रकार का खर्च (म०)। दे०-गाढ़ खरच। [गवैंयाँ+खरच (देशी)। <गवैंयाँ< ग्राम+खरच<खर्च (फा०)]

गसबन कब्जा—(स०) बिना अधिकारी हुए भी जमीन पर किया गया अधिकार (सा०१, चपा०)। [गसबन+कब्जा]

गहरा—(सं०)—(१) उपजाऊ और सामान्य मिट्टी। दे०—बरियार। (२) गड्ढा, गहरा। [गम्भीर]

गहींड़—(वि०) गहरा (दर०-१)। [गम्भीर]

गहुँ—(स०)—(चपा०)। दे०—गहुम।

गहुम—(सं०) एक प्रसिद्ध खेती अनाज जो श्वेत रक्त वर्ण का होता है तथा जिसका आटा खाया जाता है (पू० विहा०)। पर्या०—गहु, गहूँ (चपा०)। दे०—गहूँ। [गोधूम (संस्०) >गोहुमो (प्रा०) >गेहूँ (हिं०)। गम (बं०), गहूँ (मरा०), घउँ, घेऊँ (गु०), गोधी, गोधि, गोदी (कन्न०), गोदुमु, गोधुमु, गोदुमलु (ते०), गोधुम, गुहुम (सता०), गहुँ (न०), गोयम (सिंह०), गंदुम (फा०), हिन्ता, हिताह (अर०)]

गहुमन—(सं०)—(१) पीले (गेहुँए) वर्ण का पशु। दे०—पीअर। (२) एक प्रसिद्ध साँप। [गहुम+न<गहुम<गोधूम+वर्ण]

गहुमा—(स०)—(१) रोपा जानेवाला एक प्रकार का लाल मोटा चिपटा धान (उ० पू० म०, सा०-१, दर०-१)। (२) एक प्रकार का भदई अनाज,जो उजला या लाल एवं गोल और अन्त पर चिपटा होता है। इसका आटा या भूजा खाया जाता है। इसका पौधा लंबा होता है और उसपर अधखिला कमल जैसा अन्न का गुच्छा लगता है (द० भाग०)। दे०—जनेर। (३) ज्वार की जाति का एक अनाज, जो छोटे दाने तथा मटमैले रंग का होता है (द० भाग०)। दे०-बजड़ा। [गहुम+आ (प्र०) <*गोधूमक]

गाँज—(१) खलिहान में इकट्ठा किये हुये फसल के बोझों का ढेर (राशि)। पर्या०—टाल (ग० उ०, शाहा०, बिहा०), गल्ला (उ०-प० बिहा०), ढेरी (गया), थांट, थाँटा (चपा०, पू०), सम्हार (द० पू० मं०)। (२) खलिहान में अथवा कहीं अन्यत्र भी रखी हुई खेसारी या पुआल की राशि। (३) चारे के लिए काटे गये जनेरे के डंठल की राशि (प०)। पर्या०—टाल (पू०), सम्हार, थांट (द०-पू० म०)। (४) खेसारी की फसल की राशि (पट०-१)। [मिला०—गञ्ज (मो०वि०इ०)]

गाँज

गाँजल (क्रि०)—गाँजना, इकट्ठा करना। [गाँज+ल<*गञ्ज (संस्०) (?), गंजन(प्रा०) गजिउ (अप०), गाँजना (हिं०), गाँजिवुँ (गु०) गाँजले (मरा०)]

गाँजा—(स०)—(१) एक प्रकार की मादक वस्तु, जो चिलम में चढ़ाकर तथा सुलगा कर पी जाती है। यह वस्तु नेपाल या राजशाही में अधिक पैदा की जाती है। इसी की जाति की भाँग भी है, जो जंगल में स्वयं होती है। (२) गाँजे

का पौधा। [देशी, मिला०—गञ्ज (सस्क०) =एक प्रकार का पौधा। गञ्ज्‍ञा (स्त्री०)= झाड़ी, मदिरालय। गंज (प्रा०), गाँजा (हि०, मे०, अस०, ने०), गजा (प्रो०), गाँजी (सि०) गाँजो (गु०), गाँजा (मरा०)]

गाँझी—(स०) एक प्रकार की लता (दर० १)। [मिला०—गञ्ज (सस्क०)=एक प्रकार का पौधा]

गाँठ—(स०)—(१) ऊख लकडी आदि का बोझा। (२) शरीर के दो पोरो को पृथक पृथक करनेवाली ग्रथि (सा० १)। (३) किसी वस्तु को बाँधकर बनाया गया बड़ा बडल। (४) कपडे और रस्सी आदि में लगाई गई ग्रथि। (५) ऊख, बाँस आदि के पोरो की ग्रथि (म० २, पट० ४, चपा०, भाग० १, मग० ५)। गाँठदेवल, गाँठ पारल (मुहा०) =गाँठ बाँधना। किसी बात या घटना को याद रखना। [ग्रंथि ग्रथ (संस्कृ०)<गट्ठ (प्रा०), गाँठ (हि०), गाँठि, गोंठि (ने०)]

गाँठदेवल (मुहा०)—गाँठ देना। किसी वस्तु या घटना को याद रखना।

गाँठपारल—(मुहा०) दे०—गाँठ, गाँठ देवल।

गाँडर—(सं०)-(१) एक प्रकार की घास, जो धान की फसल का हानि पहुँचाती है (प० म०, पट० मग० ५)। दे०—गड़हर। (२) एक पशु-खाद्य घास। दे०—गँडहर। [देशी, मिला०—गंधेशुक (सस्क०)]

गाँधी—(स०) एक उड़नेवाला दुर्गधयुक्त कीडा, जो बाल में फूल होने के पहले ही ज्वार आदि अनाज पर प्रहार करता है। पर्या०—गोंधी, गँधवा (प०, मग० ५), मौंछी (उ०), गन्हवा (चपा०), किरौना (द० प० शाहा०), भेमरा (द० मुं०)। [<*गंधिक्‌ <*गंधिन्‌ (संस्कृ०), गाँधील (मरा०)]

गाँव—(स०) ग्राम, बस्ती। [<*ग्राम (संस्कृ०) गाम (पा०, प्रा०), गाँव (रोमा०), गाम (दरदी), गाँव (हि०) गाउँ (ने०), गाउँ (कुमा०) गाम (कश्म०), गाउँ (असा०), गाँ गाँव, गाव (बं० ओ०), गम, (सिंह०), ग्राम (काफि०)]

गाँव के ठाकुर—(स०) गाँव का स्वामी, जमींदार (द० प० शाहा०)। दे०—जिमिंदार। [गाँव के+ठाकुर (यो०)]

गाँव के खरच—(स०) जमींदारी के विषय में होनेवाला एक प्रकार का खर्च। दे०—गाईं खरच। [गाँव+के+खरच (यो०)]

गाँवघर—(सं०) पास-पड़ोस। [गाँव+घर< ग्राम+गृह]

गाँसी—(स०) फाल को गिरने से बचाने के लिए कदमार के बदले हल की मोथ और फाल के बीच में ठोकी गई पचड़ी। [देशी, मिला०—गाँसना (हि०)= पेवंद लगाना। गाँस्‌नु, गसिनु (ने०)= पेवंद लगाना, जोड़ना। गाँस (मे०) =पेवंद, जोड़]

गाईं—(सं०) गाँव।

गाईं खरच—(स०) जमींदारी के विषय में होने वाला एक प्रकार का खर्च। पर्या०—गाँव के खरच, गवैयाँ खरच (म०), स लीना खरच (द० प०-म०), देही खरचा (गया, पू०-म०), पखराजात (पट०), चन्दखरच (द० भाग०)। [गाईं+खरच, गाईं < गाँव < ग्राम, खरच <खर्च (फा०)]

गागर—(स०) दे०—गगरी।

गागर नीमो—(सं०) दे०-घघरा लेंबो, गागल।

गागल—(स०)-एक प्रकार का बड़ा नींबू जिसका छिलका मोटा होता है (दर० १, चपा १, म० २)। पर्या०—गागल नीमो (चपा०, शाहा०)। [देशी]

गागल नीमो (सं०)—(चपा०, शाहा०)। दे — गागल।

गाछ—(सं०)-(१)मूग या किसी दलहन का डंठल, जिसे दौनी करके भूसा बनाया जाता है (द० प० म०)। दे०—भोंगरा। २-अरहर या दूसर दलहनों का अकुर या डठल (उ० पू०)। दे०—बिरवी। (३) आम, कटहल आदि वृक्षों का पुञ्ज। [<*गच्छ (संस्क०), गच्छ (पा०), गाछ (हि०) गच्छा (तिना०-दरदी) गाछ (बं०), गस (सिंह०), गाछ (न०)]

गाछी—(सं०)-(१) वह स्थान, जहाँ आम, अमरूद, कटहल आदि के पेड़ लगाए गये हों। दे०—

बगैचा। (२) (म०)। दे०—आम के बगैचा। (३) बीज की क्यारी (बिहार) से रोपने के लिए उखाड़ा गया बीजों का पौधा। दे०—बीया। (४) भूमि पर उगा हुआ पहला अंकुर (उ० पू० म०, म० २)। दे०—डिम्मी। [गाछ+ई (अल्पा० प्र०) < *गच्छ]

गाजड़—(सं०) मूली की जाति का एक प्रकार का मीठा कन्द, जो कच्चा और पकाकर, दोनों प्रकार से खाया जाता है (द०-प० शाहा०, म०, मग० ५)। दे०—गजड़ा। [< *गर्जर]

गाजर—(सं०)—(१) एक प्रकार की कपास, जो घर के पास बारी में उपजती है, न कि खेत में (उ०-पू० म०, शाहा०)। (२) दे०—गजड़ा, गाजड़, गजरा। [मिला०—गर्जर]

गाड़ल—(क्रि०) गाड़ना। [गाड+ल (प्र०) <गाड़<*गर्त्त (सस्कृ०), गड्ड, गड (प्रा०)=छेद, गड्ढा। गाडना (हिं०), गाड नु (ने०), गाड़ा (बं०), गाड (ओ०)=गड्ढा, गड्डुआ (प०)=कोना गड्टणु (ल०), गाडवुँ (गु०), गाडणे (मरा०)]

गाड़ा—(सं०)—(१) ऊख रोपने के पहले बीज रखने का गड्ढा (शाहा०)। दे०—खाद। (२) पशुओं का एक रोग। इस रोग के कारण पशुओं के सींगों की जड़ में कोंपड़ निकलने लगती है (सा० १, म० २)। पर्या०—परत, कोंपड़। [गाडा, गड्ढा< गर्त्त या कर्ष] (३) बैलगाड़ी (प०, चपा० १)। [गाड+आ<गड्डा <*गान्त्र, गन्त्री]

गाड़ी—(सं०) गाड़ी, बैलगाड़ी। पर्या०—गड़ी, गाड़ा=बड़ी गाड़ी, गरी। [गाडी< *गान्त, गन्त्री (सस्कृ०), गड्डी (देशी प्रा०) गोडा (कश्मी०), गाडी (हिं०, बं, ओ०), गड्डु, गड्डी (प०), गड्ढु (ल०), गाड़ी (सिं०), गाडी (मरा०, गु०)। टर्नर के अनुसार 'गाड़ी का सम्बन्ध< *गर्त्त (ऊँचा स्थान) से नहीं है, बल्कि< *गड्डु (=गाड़ना) से है।'—(नेपा०)। किंतु गाड़ी की व्युत्पत्ति< गन्त्र, गन्त्री या गन्त्रिका या से भी सम्भव है। दे०—गन्त्री=गाड़ी—हय, अमर०]

गाढ—(सं०) घनी बोआई। दे०—घन। (वि०) गाढ़ी वस्तु। [गाढ़]

गाढ़ा—(सं०)—(१) दे०—घन। (२) घना, गाढा। [गाढ]

गात—(सं०) एक प्रकार की घास की रस्सी, जो बोझा बाँधने के काम में आती है (शाहा०)। दे०—गतान। [दे०—गतान]

गाता—(सं०)—(१) (द० मुं०)। दे०—गैंता। (२) ताड के लंबे बल्ले या किसी दूसरी लंबी भारी वस्तु को दूसरी जगह पर ले जाने के लिए उसमें बँधी रस्सी के साथ लगाया गया बाँस का टुकड़ा। [देशी, मिला०—खनित्रक* >खन्ता, खई ता>गैंता>गाता]

गाद—(सं०) नीची जमीन (द० मुं०)। [गर्त्त, खात]

गाद, गादा—(सं०)—(१) मटर की अधपकी छीमी। (२) अधपके मटर की बनी दाल। (३) किसी तरल वस्तु की निचली सतह में बैठा हुआ मोटा अंश। [<*खाद्य (?)]

गादर—(सं०) भोजन के लिए काटा हुआ कच्चा अनाज (द० मुं०, चंपा०)। दे०—गदरा। [गाद+र <* खाद्य (?)]

गादा, गद्दा—(सं०)-(१) दे०—गदरा। (२) (क) मटर की अधपकी छीमी। (ख) अधपके मटर की बनी दाल (शाहा०)। (३) पटुए और सन के ऊपर का हरा पत्ता। [<*खाद्य]

गादा, गाद—(सं०) दे०—गाद, गादा।

गादुर—(सं०) चना और मटर में लगनेवाला एक कीड़ा (द० प० शाहा०)। [देशी]

गाभा—(सं०) (चपा०, म० २)। दे०—गम्भा।

गाभिन—(वि०) गर्भिणी गाय आदि। [गाभ+इन< *गर्भिणी< गर्भ, गब्भिनी (पा०), गब्भिणी (प्रा०), गाभिन (हिं०), गाभिनि (ने०), गर्भिनि (असम०), रतना (रोम०), गाभिण (कुमा०), गाभिनि (अस०), गाभिन (बं०), गब्भण (प०), गब्भन (ल०), गभिणी (सिं०), गाभण (मरा०, गु०)]

गाय—(सं०) दूध देनेवाली, सींग पूँछ और सास्ना (गलकबल) से युक्त एक मादा मवेशी, गौ।

बैल का स्त्री० । पर्या०—गउ, गोरू (चपा०), गगा । [< *गो (सांख्य), गउ, गौ (पा०, प्रा०), गाय, गौ, गउ (हिं०), गौ, गउ (प०), गौं (ल०), गऊँ (सिं०), गो (मरा०, गु०) ] महर्षि पतंजलि के अनुसार 'गो' शब्द के बहुत से अपभ्रंश रूप हैं यथा—गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि ]

गाय गोरू—(स०) भंस को छोड शेष सींगवाले पालतू पशु । दे०—गोरू । [गाय+गोरू (अनुवा०) < गो ]

गार—(स०) जमीन की वह ऊंचाई, जहाँ तक करीन आदि से पानी नीचे से ऊपर की ओर उठाया जाता है (उ०-प० म०) । दे०—बोवर । [देशी ]

गावा—(सं०)-(१) दे०—गवा । (२) एक बार में रोपे जानेवाले धान के पौधों का समूह (चंपा० १) । [देशी, मिला०—ग्राम (=गाँव, समूह), गर्भ ]

गावा पखार—(सं०) रोपनी समाप्त होने पर गृहस्थ के घर पर मजदूरिनों द्वारा किया जाने वाला एक उत्सव जिसमें गृहस्थ के शरीर पर मजदूरिनें कीचड़ उछालती हैं और द्वार पर पहले से रखे हुए, उलटी टोकरी पर जलपूर्ण कलश की, गीत गाती हुई, प्रदक्षिणा करती हैं और अंत में घर की मालकिनों द्वारा दिये हुए सिन्दूर और तेल लगाती हैं एवं भींगे हुए चने की अँकुरी या प्रसाद लेकर घर जाती हैं (चपा०, म० २) । [गावा+पखार । दे०—गावा, पखार < पखारल < *प्रक्षाल ]

गाविस—(सं०) एक तरह की मिट्टी । कुम्हार इसे बरतन रँगने के काम में लाते हैं (चंपा० १, मं० २) । [देशी, मिला०—कपिश]

गाही—(स०) पाँच वस्तुओं की एक इकाई (चपा०, मग० ५ मं०-२, भाग० १, पट० ४, शाब०) । [देशी, मंम० < *गाथा या *गाथिन् ]

गिड़ायल—(क्रि०) ऊख के पौधे में ग्रंथि का लगना (प० म०) । दे०—पोर । [गिड़ायल < गिरहानल < *ग्रंथि ]

गिरई—(सं०) किसीसे रुपये लेकर उसके बदले में उसके पास जमीन, गहने आदि रखना (गाहा०) । दे०—गिरवी, रेहा । [ गिरवी ]

गिरथ—(स०) दे०—गिरहथ ।

गिरदा—(स०)-(पट०) । दे०—खपड़ा ।

गिरदाँव—(सं०)-(मग० ५) । दे०—घरगवनी ।

गिरल—(क्रि )-(१) हवा या किसी और कारण से फसल अथवा आम आदि फलों का जमीन पर गिरना । (२) किसी ऊँची जगह से किसी वस्तु अथवा व्यक्ति का गिरना । (वि०) हवा के कारण भूमि पर गिरी हुई फसल, फल आदि । पर्या०—खसल । [ गिर+ल (प्र०) < गिर, गिरना (हिं०) (संम०) < √गृ (=गिरति), टर्नर महोदय के अनुसार (१) गिर्नु (ने०), गिरणों (कुमा०), गिरना ( हिं० ), गिड़ना, गिड़ाउना (प०) और वर्ण-व्यत्यय से साथ डिग्णा (प०), डिग्ना (हिं०) < *गिड्ड, (२) गडति (संस्कृ०), गलति (पा०) = गिरता है । गन्निा ( असo ), गड्प ( सिं० ) और संभ० गन्ना (हिं०) भी ( यदि < *गड्ड नहीं माना जाय) और गड्वुँ (गु०), गडणी ( मरा० ) (३) गलति (संस्कृ०) गिरता है, गलई ( प्रा ) गलिबा (प्रो०), गलना, (हिं०), गलणा (पं०), गलवुँ (गु०), गलणे (मरा०) ये रूप बोले (भारोप० या श्रुति से मिलते-जुलते हैं )

गिरस्त—( स० ) दे०—गिरहथ ।

गिरह—(सं०)—(मग० ५) । दे०—गिरे ।

गिरहथ—( सं० ) गृहस्थ, जमीन का मालिक (दर० १, चपा०, मं० २, मग० ५ ) । पर्या०—गिरथ, गिरस्त, गिरहस्त, गिरहथिन (स्त्री०) । [गिरह+थ, गिर+हथ < गृहस्थ]

गिरहथिन-(स०) गिरहथ की स्त्री । दे०-गिरहथ ।

गिरहस्त—(स०)—दे०—गिरहथ ।

गिराअल—( क्रि० ) गिरल क्रि० का प्र० । गिराना । [गिर+आनल (प्र०) < गिरल, दे०—गिरल ]

गिरे, गिरह—( स० )—(१) ऊख की ग्रंथि या गांठ । (२)-घास आदि तृण पौधों की गाँठ । दे०—पोर । [ गिरे < गिरह < *ग्रन्थि ]

गिरेह, गिरे—(सं०) । दे०-गिरे या पोर ।

गिलवाकी—( सं० ) कटी हुई भूमि और कुएँ की गहराई को मापने के लिए प्रयुक्त एक हाथ का परिमाण (द०-पू० मग०-५) । दे०—उरहा । [फा०]

गिलंदाजी मिट्टी—(सं०) सिचाई के समय खेत की मेंडो पर दी गई मिटटी।

गींगट—( स० )—( द०-पू० )। दे०-ककड। [ दे०-कंकड ]

गुंजेरा—(स०) एक प्रकार की घास, जिसे पशु खाते हैं (द० प० शाहा०)। [ देशी ]

गुंड—(स०) दलहन की कटी फसल का एक निश्चित परिमाण (बडल), अँटिया-(पट०)। [मिला०-गुड, गुठ वा गुड =गोलक, पुलिदा]

गुँडा—( सं० )—(१)चावल छाँटने पर उससे निकली महीन भूसी, जो गाय, बल आदि का पुष्ट भोजन है(मु० १ अन्यत्र भी)।(२)-चावल, आदि मकई के भूँजे को चूरकर बनाया गया चूर्ण। 'गुडा खाय, मुसडा होय।'=गुडा(भूसा आदि या कदम)खायऔर मोटा ताजा हो जाय। [ कुट्, गुटक=धूलिचूर्ण (मो० वि० डि०) ]

गुंडा—(स०) दे०-गुँडा। पर्या०— कुडा।

गुंडी—(स०)—(१)-अनाज ओसाने के समय हवा से उडा हुआ महीन भूसा (चपा०, द० पू० बिहा०, मग० ५)। दे०-पमी। (२) काते हुए सूत का एक परिमित लच्छा। [गुडी< *गुड, गुड ]

गुंडो—( स० ) छाँटने पर निकला हुआ अनाज (विशेषकर चावल) के ऊपर का महीन छिलका ( द० भाग०, चपा० )। दे०—भूसा, गुडा। पर्या०—गुड्डा (दर० १)। [कूट वा गुण्डक =चूर्ण, धूलि (मो० वि० डि०) ]

गुआ—(स०) गोबर की खाद। [ गुआ<* गोमय ]

गुआ पटायल—(मुहा०) खाद देना, खासकर गोबर की खाद देना (दर० १)। [ गुआ+पटायल, गुआ<गोआ<गोवा<गोमर<० गोमअ, ०गोमय, पटायल (देशी) ]

गुजराँति—(स०)-(म० २)। दे०-गुजराती।

गुजराती—(सं०) एक वर्ग, विशाल देह और ऐंठे हुए गोल सींगो वाले काले रंग की भैंस ( दर० १, चपा १ )। पर्या०—गुजराति (म० २)। (वि०) गुजरात प्रदेश संबंधी। [ गुजरात+ई ( प्र० ), गुजरात< गुजर+आत वा गुजर+रात< गुर्जर०+राष्ट्र, आवर्त्त वा < गुर्जरत्रा ]

गुमराती

गुजरूआ—(स०) ऊख के कोल्हू की पेंदी में रस चूने के लिए काटी हुई नाली (द०-प०-शाहा०)। दे०-नरदोह। [ गुजर+उआ, (देशी) ]

गुड़—( स० )-(१) पुआल का बडा बोझा, जो लपेटकर बाँधा जाता है ( चपा० १, म० २, पू० म०)। [ गुड ( संस्कृ० ) =बडल, बोझ (मो० वि० डि०)] (२)-गूड़। दे०-गुर [गुड]

गुड़मी—(स०)एक प्रकार का बरसाती फल, जो मकई आदि के खेत में होता है ( दर० १ )। पर्या०—गुरम्ही (मग० ५)। [ देशी ]

गुड़रा—(स०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान (गया)। [ मिला० गुडाला, गुडाला = एक प्रकार का पौधा (मो० वि० डि०) ]

गुड़ोर—(स०) गुड बनाने का घर ( सा० १ )। पर्या०—गोलौर ( शाहा० ), कोल्हुआर, कोलसार। [गुड+और<गुड+उल< ०गुड +कुल वा गुड+गृह* >गुड+घर>गुड+अर>गुड+और>गुडौर ]

गुड्डी—(स०)—(१) रोपे जानेवाले छोटे पेडों की जड़ में मिट्टी को बाँध रखने के लिए चारों ओर लिपटाई गई रस्सी (द० शाहा०, गया)। दे०-मोजर। (२) पानी में होनेवाली एक घास (म० २)। [<√गुण्ड =घेरना, लपेटना ]

गुड्डी

गुदर—(सं०)—दे०—गुदरी।

गुदरी—(स०)-(१) सठी से निकाल लेने के बाद सन के रेशों में बचा रह गया छोटा छोटा टुकडा (पू० म०)। दे०—गूदर। (२) फटे चिथडे और कपडों को सीकर बनाया गया बिछावन। (३) फटे-चिथडे। [ देशी ]

गुदस्तादार—(स०) शाहाबाद जिले में गंगा के दक्षिणी तट पर रहनेवाला काश्तकारों का एक वर्ग। पर्या०—गुदस्तादार। टि०—यह काश्तकारों का ही एक वर्ग है, इसमें राजपूत और ब्राह्मण हैं। इनके पूर्वजों ने खेत को जोता था और ये लोग जमींदारों के अधीन रहकर

उनके लिए लड़ने भिड़ने को सदा प्रस्तुत रहते थे, इसीलिए इनकी स्थिति ऊँची मानी गई है।

गुदस्ता भूमि सदा के लिए एक निश्चित कर पर बंदोबस्त कर दी गई है (यद्यपि कुछ जमींदार ऐसा नहीं मानते) और जमींदार की स्वीकृति के बिना ही बेची खरीदी जा सकती है। यह एक प्रकार से सदा के लिए निजी संपत्ति होती है। यद्यपि इस भूमि के स्वामी इसे मुश्किल से बेचते हैं। ये कास्तकार सुखी एवं सम्पन्न होते हैं और सेना में भी बहुतायत से भर्ती होते हैं। [गुदस्ता+दार (प्र०) <गुजाश्ता (उर्दू) <गुजास्त (फा०)=दान की हुई या कर मुक्त भूमि]

गुदस्तादार—(सं०) दे०—गुदस्तावार। [गुदस्ता+दार<गुजाश्त (फ़ा०)]

गुदार—(सं०)—(१) फसल काटने की मजदूरी (सा०, मग० ५)। दे०—दिनौरा। [देशी, (सम०)<गुजार<गुजर (फ़ा०)] टि०—कटी हुई फसल की २१ गाही पर १ गाही की निश्चित मजदूरी दी जाती है (मग० ५)। (२) काटनेवाले श्रमिक को प्रति बोझा एक आँटी दे देने पर बचा हुआ बोझे का अंश (गाहा०)। टि०—आँटी का परिमाण सर्वत्र एक सा निश्चित नहीं है। यथा—आगे की लोकोक्ति से स्पष्ट है—'कोदि कटनिहार कें, मुगर सन आँगी।'—(भ्राष्टसी) कटनिहार अपने लिए मुँगर (मुद्गर)—जैसी मोटी आँटी बाँधता है। [देशी]

गुदारा—(सं०) फसल काटने की मजदूरी (गया)। दे०—दिनौरा। [गुदारा<गुजारा<गुजार (फा०)]

गुनल—(क्रि०) गुनना, गणना करना, रस्सी का बँटना। (वि०) गुनी हुई, बँटी हुई। [गुन+ल<*गुण (=गुणयति)]

गुना—(सं०)(१) गुणा, गणित का एक भेद। (२) रस्सी के बाँटने में पड़नेवाली ऐंठन। [गुना<*गणु, *गुणक (संस्कृ०), गुण (पा०, प्रा०), गोन (बर०) गुणी (सिमा०), गोनु कश्मी०) गुणा (प० पहा०), गना (ने०), गुणा (असा०), गुणा (बँ, भो०), गुना, गन (हिं०), गुण (प०), गणु (सि०), गुण (गु०, मरा०)]

गुमटी बाबू—(सं०) चीनी मिल का एक कर्मचारी, जिसके हस्ताक्षर के बिना ऊख की पुर्जी का रुपया किसान को नहीं मिलता है (बिहा०, रो०, हरि०)। टि०—जब ऊख तौलवाकर एक कर्मचारी ऊख का परिमाण लिखकर पुर्जी ऊख लानेवाले किसान या गाड़ीवान को दे देता है, तो वह किसान या गाड़ीवान उस पुर्जी को लेकर गुमटी बाबू के पास जाता है, वह उसपर अपना हस्ताक्षर कर देता है। यदि उसे संदेह हो जाय, तो वह पुनः उस गाड़ी की तौल कराता है और पहली पुर्जी से उसका मिलान करता है, जिससे कि तौल में कमी बनी न हो। [गुमटी+बाबू]

गुमल—(क्रि०)—(१)—डंठल के साथ फसल की बाल रख देने पर कुछ दिनों के बाद सूखकर दाना का स्वयं छूटना या उस बाल का मुलायम हो जाना (सा०-१ चपा० १, म० ४, पू० म०)। (२) पाल पर रखने के बाद आम आदि का और धुआँ देने पर केले आदि का पकना। [गुम +ल, गुमका (देशी)=भूसी से दाना अलग करने का काम (हि० श० सा०)]

गुमसल (क्रि०)—(१) भींग हुए अन्न की समुचित हवा और धूप नहीं पाने पर, सड़ने से पूर्व की स्थिति (चपा० १ मग० ५, पट० ४, म० २, भाग० २)। (२)-(वि०) गुमसी हुई (गुमसल) वस्तु। [गमस+ल (प्र०)<*ग्रीष्म (?)]

गुमसायल—(क्रि०) गुमसल क्रि० का प्रे०। गुमसाना।

गुमायल—(क्रि०) गुमल क्रि० का प्रे०। गुमाना।

गुमास्ता—(सं०) किसी जमींदार या महाजन का कर्मचारी, जो घूम घूमकर जमींदारी या महाजनी का तगादा और काम देखा करता है (सा० १)। [(फ़ा०), गुमाश्ता (हिं०), गमास्ता (ने०)]

गुम्मा—(सं०) दे०—गुमा और गूमा।

गुर, गूर—(सं०) ऊख के रस को पकाकर तैयार किया गया दानेदार ठोस पदार्थ। पर्या०—गुड़। [गुड़] टि०—गुड़ कहीं राब और कहीं भेली के रूप में होता है, खान-पीने के

लिए इसकी छोटी छोटी भेली भी बनाई जाती है। भेली को मगही में 'अदरखी' भी कहते हैं, क्योंकि इसमें स्वाद के लिए प्रायः अदरक मिलाई जाती है।

गुरचलना—(स०) अन्न साफ करने की चलनी (उ० पू० म०)। दे०—चलना। [गुर+चलना]

गुरदन—(स०) ऊख के उबाले हुए रस को ठंडा करने के लिए लकड़ी या लोहे की बनी चम्मच (शाहा०)। दे०—तामिया। [गुर+दन <*गुड]

गुरदम—(स०) लकड़ी की बनी छोलनी, जिससे ऊख का रस या गुड़ चलाया जाता है (सा० १)। पर्या०—गुरदन। [गुर+दम< *गुड (?)]

गुरदम

गुरदेल—(स०) धनुष के आकार की बनी चीज, जिसकी प्रत्यंचा दो रस्सियों की बनी रहती है और बीच में दोनों रस्सियों को थोड़ी दूर तक एक-दूसरे में बुनकर एक स्थान बनाया जाता है, ताकि उस पर गोली रखी जा सके। यह खेतों से चिड़ियों आदि भगाने और मारने के काम में आता है। इसकी गोली मिट्टी की बनी होती है (चंपा० १, भाग० १, मं० २)। पर्या०—गुलेल। [देशी, दे०—गुलेल]

गुरधवल—(वि०) फल का पकना शुरू होना और मीठा होना (शाहा० १)। [गुरधव+ल (प्र०) <गुणाधार, गुणाधान, गुणाढ्य, गुणाढ्य (?)]

गुरपीर—(स०) मिट्टी का बड़ा बरतन, जिसमें जम जाने के बाद गुड़ रखा जाता है (म०)। दे०—माट। [गुर+पीर∠गुड+पात्र (?)]

गुरमिखा—(सं०) एक प्रकार का परवल, जो गोल और छोटा होता है (चंपा० १)। [गुरमि+खा (प्र०) <गुर्मी (देशी०)]

गुरसा—(स०) करीब एक हाथ लंबा, खास कर इमली की लकड़ी का बना टुकड़ा, जो ढेंकुर (लाठा) के बीच में दोनों कनसिया के बीच में लगा रहता है। इसके बिना ढेंकुल नहीं चल सकती है। घुरकिल्ली (सा० १)। [देशी]

गुरहड़ी—(स०) गुड़ रखने का माट (द० भाग०)। दे० -हौद। [गुर+हडी <गुड़+हंड (क)]

गुरही—(स०)—(१) एक प्रकार का धान (चंपा० १)। [गुरु या गुर<गुड] (२) फसल के बोझे को बाँधने के लिए किसी घास की ऐंठी हुई रस्सी (शाहा०)। [गुर+ही<*गुण]

गुरीच—(स०) एक प्रकार की लता, जिससे औषध बनाया जाता है। [गुडूची]

गुरुच—(स०) दे०—गुरीच।

गुर्मी—(स०)—(मग० ५)। दे०—गुडमी।

गुलजाफरि—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर० १)। [गुल+जाफरि (फा०)]

गुलजामु—(सं०) एक प्रकार का फल (दर० १)। [गुल+जामु<गुल (फा०) +जामु< जामुन=जम्बू]

गुलजामुन—(सं०) (१) एक प्रकार के फल का वृक्ष। इसका फल गोल और मीठा होता है (पट० १)। (२) जामुन का एक भेद, जिसका फल अपेक्षाकृत बड़ा, रसदार और मीठा होता है (मिला०—कठजामुन)। (३) एक प्रकार की मिठाई। [गुल, गुलाब (फा०) + जामुन< *जम्बू]

गुलदाउदी—(स०) एक प्रकार का फूल, जिसका पौधा छोटा तथा फल गुच्छेदार होता है (मग० ५)।

गुलदावरी—(स०) एक प्रकार का फूल (दर० १)। [(गुल+दावरी (फा०)]

गुलफा—(स०) एक प्रकार का साग (म० २)। [देशी, मिला०—गुल्फ]

गुलमिरिच, गोलमरिच—(सं०) एक प्रसिद्ध पौधे, काली फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है, काली मिर्च। दे०—मिरिच। [गुल+मिरिच <० गोल+मरीच]

गुलाइँचा—(सं०) एक प्रकार का फूल। दे०—गुलचा। [गुल+चीन (फा०)]

गुलाब—(स०) एक प्रसिद्ध फूल, जो लाल और गुलाबी रंग का होता है। फूल के सुगंध में और

पौधों में कांटे होते हैं। [गुलाब (हिं०), गुलाफ (ने०) (फा०)]

गुलाब मखमल—(सं०) एक प्रकार का धान (चपा० १)। [गुलाब+मखमल]

गुलाबी—(सं०) गुलाबी रंग। (वि०) गुलाबी रंग की वस्तु।

गुलाबी पोई—(सं०) एक प्रकार की लता। इसका पत्ता लाल रंग का होता है तथा इसका साग बनता है (पट० १)। [गुलाबी+पोई]

गुलेल-(सं०)-(१) दे०-गुरदेल। (२) दो रस्सियों के योग से बनी हुई वस्तु, जिसपर ढेला रखकर फेंका जाता है (द० भाग०, द० मु०, मग० ५, म० २, चपा०)। दे०—ढेलमास। [देशी, (सम०)—गुल +एल<गुल <*गुलिक= (ढेला, छोटा टुकड़ा, गोली) एल<√इर (फेंकना), गुलगुंछ (देशी०)=ऊपर फेंकना गलुच्छ (देशी)=घुमाया हुआ (पा०स०म०), गुलेल, गुलैस (हिं०), गुलेलि (ने०), गोलेल (कुमा०), गुलेल, गलेला (प०), गलेलि, गुलेलो (सि०)<*गोल+इल्ल (?) अथवा ग, ल के साथ उघार, या गुलूले (फा०) या गोला से प्रभावित—(नेपा०)]

गुलेती—(सं०) धनुष-जैसी बनी हुई वस्तु जिसमें दो प्रत्यंचा समानांतर रूप में लगी रहती हैं और दोनों के बीच में थोड़ा सा सूत से बुना रहता है, जिसपर मिट्टी की छोटी गोली रख कर चलाया जाता है (द० मु०, द० भाग०)। [देशी, (सम०), गुल+एती<गलिक< √इर]

गुलेंच—(सं०) एक प्रकार का फूल (दर० १)। [गुल+ऐंच<गुलचीन (फा०)]

गुल्लरि—(सं०) एक प्रकार का पेड़, गूलर (दर० १, म०—२)। [गुल्लर<गूलर]

गुल्ला, गुल्ली—(सं०)—(१) ऊख आदि का उतना बड़ा टुकड़ा, जो मुँह में चूसने के लिए लिया जाता है। (द० मु०, भाग १, चंपा०, चाम०)। (२) ऊख के दो पोरों के बीच का भाग (मग० ५)। [<*गुलिक (संस्कृ०), <*गुल्म (संस्कृ०)>गुल्लं (प्रा०)]

गुल्ली—(सं०)—(१) लकड़ी की कील या खूंटी, जिससे कुएँ में लटकनेवाली रस्सी में मोट बाँधा जाता है। दे०—किल्ली। (२)—(शाहा०)। दे०—गेंड़ा। (३) कूड़ में आर पार लगी हुई हुई फट्ठा, जिसमें रस्सी बाँधी जाती है। दे०—किल्ली। (४)-(पट०)। दे०—खूटा। [देशी, मिला०—गुलिक] (५) दे०—गुल्ला, गुल्ली। (६) बच्चों के 'गुल्ली-डंडा' खेल में प्रयुक्त होनेवाला ३ इंच का लकड़ी का टुकड़ा, जिसे डेढ़ फुट के डंडे से दूर फेंकते हैं। [दे०—गुल्ला]

गुल्ली, गुल्ला—(सं०)। दे०—गुल्ला, गुल्ली।

गुहीरि—(सं०)-(१) एक घास विशेष (चपा० १, दर० १)। (२) आँख की एक बीमारी, जिसमें आँख के कोनों पर फुंसी हो जाया करती है। [देशी,<*ग्रीष्मवटी]

गूँड़ा—(सं०)—(गया, मग० ५)। दे०—गुंडा। [<गुण्ड, <*गुण्डक=धूलि, चूर्ण

गूड़ी—(सं०)-(चंपा०, द०-पू० बिहा०)। दे०—गुड़ी और पभी। [गुड+ई<*गुड्क]

गूदरी—(सं०) संठी से निकालने के बाद सन के रेशा में बचा रह गया छोटा छोटा टुकड़ा (उ० पू० म०, मग०-५)। पर्या०—गुदर (प०, प० म०) गुदारी—उ०-पू० म०), गुदर, गुदरी (पू०म०)। [देशी]

गूमा—(सं०)-(१) एक प्रकार का प्रसिद्ध पौधा, जिसके फल के ऊपर उजला फूल रहता है (चपा० १)। पर्या०—गुम्मा (भाग० १)। (२) नमी के कारण विकृत अन्न, जिसमें एक प्रकार की सड़ी जैसी गंध और बुरा स्वाद आ जाता है (मग० ५)। [देशी, मिला०—गुल्म]

गूर, गुर (सं०)—ऊख के रस से तैयार किया गया दानेदार ठोस मीठा पदार्थ। पर्या०—गुड़, गूड़। [<*गुड, (संस्कृ०), गुड गुल (प्रा०) गुड़, गड़ (हिं०) गुड़ (ग०), गूळ (मरा०), गुर (ब० बो०), गुड़ (सि०), गोळ (गु०), गोर (कश्मी०)]

गूलर—सं०) दे०—गूलरि।

गूलरि—(सं०) एक प्रसिद्ध पेड़, जिसमें सैकड़ों बीज होते हैं और पकने के साथ-साथ कीड़े

भी होते हैं। कच्चे की तरकारी भी होती है। पर्या०—गुल्लर, गूलर, डुम्मर (भाग १)। [गूलर (सस्कृ०), गूलर (हिं०), गल्लर (नें०), गुल्लर (पं०), गूलर, गुलेर, गुलरी (गु०)]

गेंठा—(स०)—(१) पशुओं के बांधने की रस्सी (द० भाग०)। दे०—पगहा। (२) ढोरों के बांधने की फुंदीदार रस्सी (मु० १)। [ <ग्रथित <ग्रथक ]

गेंठी—(स०) एक प्रकार की लता (दर० १)। [देशी]

गेंड़—(स०)—(१) ऊख के ऊपर का पत्तियों सहित भाग (द० प० शाहा०)। (२) चारे के लिए काटा गया ऊपर का हरा भाग (चपा० शाहा०)। दे०—अगेंड। (३) चीनी मिल में डाले जाने के लिए, काटा गया ऊख का टुकड़ा (हरि०)। पर्या०—गेंड़ी, पगाड़ (री०)। [<*अगेरक <*अग्रखंड, गंड (सस्कृ०)=जोड़, गड (पा०)=डंठल, गड (प्रा०)=ऊख का पोर, गोंडा (हिं०), गन्ना (हिं०, पं०)=ऊख, गनो (सिं०)=ज्वार की मीठी डांटी ]

गेंड़छीला—(स०)—शाहा०)। दे०—अगेंड़ीहा। [गेंड+छीला< अगेरक या अग्रखंड+छीला, छिलना (हिं०) <श्लक्ष्ण]

गेंड़ल—(क्रि०)—(१) गड़ना, पानी आदि को रोकने के लिए बांध बांधना। (२) किसी स्थान या वस्तु की सुरक्षा के लिए घेरना। [गेंड+ल (प्र०) <गेंड< *गड, खड]

गेंड़बहिया—(स०) (उ०-प०)। दे०—अंगड़ीहा। [गेंड+बहिया<*अगेरक<*गड <अग्र कांड+बहिया (देशी)]

गेंड़वाही—(सं०)-(१) धान की खेती में मेड़ के टूटने पर उसकी पुनः मरम्मत करने की प्रक्रिया (मग० ५)। (२) ऊख को काटने और उसकी पत्तियों को छीलने की प्रक्रिया (चपा०)।

गेंड़ा करल—(क्रि०) ऊख का टुकड़ा करना (उ०-प०)। दे०—छोलल। [गेंडा+कर+ल (प्र०) <*अंगेरक, <*अग्रकांड+करल, करना (हिं०) <√कृ]

गेंड़ा, गेंड़ी—(सं०) बीज के लिए काटा गया ऊख का टुकड़ा (प०)। पर्या०—गेंड़ी (चपा०) टोना, टोनी (पू०, मग० ५), गुल्ली (शाहा०, मग० ५), पोंहड़ा (पट०, मग० ५, पट० १), बीहन (दर०, भाग०, मग० ५)। [<*खड, गड, <*अगेरक, < अग्रकाड, <*ग्रथि]—

गेंड़ारी—(स०)—(गया)। दे०—बियारी। [गेंड+आरा <*खड, <गड]

गेंड़ावल—(क्रि०) गेंड़ल क्रि० की प्र०। गेंड़वाना, घेरवाना। दे०—गेंड़ल।

गेंड़िकाटा—(स०)—(प०)। दे०—कानू। [गेंडि+काटा<*खड, <*ग्रथि, <अगेरक, <*कांड, काटा < काटल (बिहा०), काटना (हिं०) <√कृत]

गेंड़ियार—(सं०)-(१) कोल्हू के लिए ऊख के टुकड़ काटे जाने का घर या स्थान। पर्या०—गेंडियारी (प०), टोनियारी (पू०) टोनियासी (उ० प० म०), टोनखाद (द० भाग०)। (२) दे०—गेंडियारी (२)। [गेंड+इयार <*काड, <*ग्रथि, <*खड, <*अगेंरक <*गंड]।

गेंडियारी—(स०) (१)—(प०)। दे०—गेंडियार। (२) ऊख काटने (टोना करने) के पहले उसे रखने के लिए बना हुआ गड्ढा। पर्या०—गेंड़ियार (प०)। [गेंड+इयार+ई <*खड ग्रथि, काड, इयारी (प्र०)<केदार]

गेंड़ी गेंड़ा—(सं०)-(१) (प०, चिर०, हरि०) दे०—गेंडा। (२) कोल्हू में डालने के लिए काटी हुई ऊख की टुकड़ियां। बालकल लोह के कोल्हू होने पर समूचा ऊख कोल्हू में लगाया जाता है, न कि काटकर (प०, पू०म०, चपा०, मग० ५, म०-२, आज०)। पर्या०—टोनी (पट०, गया, पू०), अगारी (द०-प० शाहा०)। (३) चीनी मिल में डालने के लिए काटी गई ऊख की टुकड़ियां (री०, बिहु०, हरि०)। [गेंड+ई<*खड, <*कांड, <*ग्रथि गट]

गेंड़ुआया—(स०) कुएँ या दीवाल को बनाने के लिए प्रयुक्त वह ईंट, जिसका एक भाग छोटा और दूसरा चौड़ा होता है (चपा०, मग० ५ म० ५)। दे०—सुरजमुखी।

गेंड़ुआवा

[देशी, मिला०—गड, खड]
गेंदा—(स०) दे०—गेना।
गेँधारी—(स०) हरे रंग का एक साग (पट० १)। पर्या०—गेन्हारी, गेन्हरी (भोज०), गेन्हारि (म० ३, माग० १, माग० ५)। [देशी, (संभ०) < *गंध]
गेँहड़ि—(स०) मवेशियों का समूह [गेंहड़ि < *ग्रन्थि वा ग्रहण (सस्कृ०), गेण्हण (प्रा०)]
गेँहड़िवाला—(स०) घूम घूम कर पशुओं का व्यापार करनेवाला मनुष्य (व० मु०)। दे०—फेरहा। [गेँहड़ि + वाला (प्र०), गेँहड़ि < ग्रन्थि वा ग्रहण (सस्कृ०), गेण्हण (प्रा०), मिला०—गेड़ही, गेढ़ी (बिहा०) = चरवाहों का झुंड]
गेटकीपर—(सं०) चीनी मिल का दरवान (बिह०) [गेट + कीपर (अँ०)]
गेटकेन—(स०) वह ऊख, जिसकी तौल मिल के अंदर होती है। [गेट + केन (अं०)]। टि०—चीनी मिल में दो प्रकार से ऊख लाये जाते हैं। एक तो स्थानीय किसान बैलगाड़ियों या ट्रकों पर लादकर मिल में ऊख पहुँचा देते हैं। दूसरा वह, जो दूरस्थ स्थानों से रेलगाड़ियों के द्वारा आता है। किसानों द्वारा लाया गया ऊख मिल में तौला जाता है, उसे 'गेटकेन' कहते हैं और दूरस्थ स्थानों से लाये जानेवाले ऊख के लिए स्थान-स्थान पर मिल की ओर से तौलने और वहाँ से मिल में भेजने की व्यवस्था रहती है, उसे 'आउटकेन' कहते हैं (बिह०, रो०, हरि०)।
गेटपास—(सं०) चीनी मिल के अंदर प्रवेश करने या अंदर से कोई वस्तु बाहर लाने का अनुमति पत्र (बिह०, रो०, हरि०)। [गेट + पास (अं०)]
गेटबाबू—(स०) चीनी मिल के द्वार पर नियुक्त कर्मचारी, जो मजदूरों के आने जाने के समय का लेखा जोखा रखता है और उनकी उपस्थिति लिखा करता है (बिह० रो०, हरि०)। पर्या०—हाजिरी बाबू (भोज०)। [गेट (अं०) + बाबू (हि०)]
गेठिया—(सं०)—(१) दे०—पाना। (२) गनी (सुतली) का बाँधा हुआ बड़ा गट्ठर।
गेड़हरुआ—(स०) अनाज के खेत में उगने वाली एक प्रकार की घास (उ०प०)। पर्या०—गदरो (उ० म०), गेद्रो (माग० ५)। [देशी, मिला०—ग्रंथिपुक]
गेड़ही, गेढ़ी—(स०) गाँव भर के ढोरों को चरानेवाले चरवाहों का समूह (मुं० १)। [देशी, मिला० = ग्रंथि]
गेड़ी—(सं०, ऊख का छोटा टुकड़ा (चपा १, म० २)। [< *अंगेरी, < *कांड, < *खड, ग्रंथि]
गेड़ियार—(सं०) (प०)। दे०—गड़ियारी। [गड़ + इयार, < *अगेरा, < *कांड, < *खड, < *ग्रंथि]
गेंड़ुआ—(स०)-(१) बेल के पौधों के छिलके (डकउर) में गूँथ हुए फूल की माला (चपा० १)। (२) विवाह के समय कन्या और वर तथा उनके माँ बाप के ललाट में बाँधा जानेवाला छोटा मौर। पर्या०—पटमौरी (माग० ५), पटमउर (अन्यत्र)। (३) मारी [देशी]
गेद्रो—(स०)—(माग० ५)। दे०—गड़हरुआ।
गेढ़ी—(स०)। दे०—गेड़ही।
गेनहारि—(सं०)—(बर० १)। दे०—गेन्हारी।
गेना—(सं०) एक प्रसिद्ध फूल जो पीले या नारंगी रंग का होता है। इसके कई प्रकार होते हैं—एकहरा, दोहरा, हजारा। पर्या०—गेंदा। [गेंदा (हि०), मिला०—गेंदुक, संभ०—साट०]
गेन्हरी—(सं०) एक प्रकार का प्रसिद्ध साग, जिसकी तरकारी होती है (भोज०, चंपा०)। पर्या०—गेनहारि, गेन्हारी (पू० म०, माग०-५, म०५, भाग० १)। [देशी, मिला०—गन्धोलि (सस्कृ०) = एक प्रकार का पौधा]
गेन्हारी—(स०) (पू० मुं०, म० ५, माग०-५, भाग० १)। दे०—गन्हरी। पर्या०—गेनहारि (बर० १)। [देशी, मिला०—गंधोलि (सस्कृ०)]
गेरू—(स०)-(१) लाल मिट्टी (मं० ब०)। दे०—ललकी मिट्टी। (२) हल्के लाल रंग की पहाड़ी मिट्टी, जिससे मकान और दूसरी चीजें रंगी जाती हैं। साधु संन्यासियों का कपड़ा भी इसी रंग में रँगा जाता है। [< *गैरिक, गेरुक

गेरुका (पा०), गेरिया, गेरुया ( प्रा० ), गीरु (कश्मी०), गेरू (कुमा०), गेरू (न०), गेरू (हिं०), गेरी, गेरु (प०), गेरेउ माटी(मस०), गेरी (ब०), गेरु (ओ०) गरु (गु०), गेरू मरा०)]

गेरुआ—(सं०)—(१) ऊख की जड को काटने वाला एक कीडा (प०)। [ देशी, मिला०—गैरिक ] (२) रोपे जानेवाले छोटे पेडों की जड में मिट्टी को बाँध रखने के लिए चारों ओर लपटाई गई रस्सी (ब०-प० म० )। दे०—मोजर। ( ३ ) दे०—गरू। [ गेंडल (बिहा०), गेंडना (हिं०) ]

गेरुई—(सं०) फसल में पैदा होनेवाला एक रोग, जिससे पौधा सूखकर लाल और बाल का रंग काला हो जाता है। यह रोग जाड़े में तथा वर्षा अथवा पुरवया हवा के कारण अधिक होता है ( उ०, द० प०, चपा० )। —'नीचे ओद ऊपर बदराई घाघ कहै गरुई अब धाई।' —(घाघ)=नीचे जमीन भीगी हो और ऊपर बादल लगे हों, तो घाघ कहते हैं कि उस समय फसल में गरुई कीड़ा लगेगा। [ देशी, मिला० —गैरिक ]

गेलहटा—( सं० ) बैगन का एक भेद जो गोल होता है (द० मुं०)। दे०—बैगन। पर्या०—गोलहटा (मग० ५)। [ गोल+हटा< गोल+ भटा ]

गेलहटा

गेलहनी—(सं०) पाँच फालों का बना एक तरह का हल, जो नील की खेती में काम आता है (सा०)। दे०—पचफरिया। [ देशी ]

गेल्हा—(सं०)—(१) ऊख के पौधे की जड़ से निकलनेवाला नया पौधा (चपा० १, हरि०)। पर्या०—गोभी (रो०), पनपा, खूँटी (बिह० म० २)। (२) एक प्रकार का फल जो कपड़ा चुनने या कागज को चिकना करने के काम में आता है (चपा० १,मग०-५)। पर्या०—गेल्ही (म० २)। [ देशी ]

गेल्ही—(सं०) दे०—गेल्हा।

गेहुँआँ—(सं०) एक प्रकार का धान जिसके एक फूल में दो धान लगे होते हैं। [गेहूँ + आँ < गेहूँ ]

गेहुमा—(सं०) एक प्रकार का मदई अनाज, जो उजला या लाल एवं गोल और वृन्त पर चिपटा होता है। इसका आटा या भूजा खाया जाता है। इसका पौधा लंबा और पौधे के ऊपर अधखिले कमल जैसा अन्न का गुच्छा होता है (सा०)। दे०—जनेर। [ गेहुँम+आ (प्र०), गेहूम, गहूम(बिहा०), गेहूँ (हिं०)< *गोधुमक]

गेहूँ—( सं० ) एक प्रसिद्ध खेती अनाज, जो पीताभ या रक्ताभ होता है तथा जिसका आटा खाया जाता है ( ग० उ०, आज० )। पर्या०—गहुम (पू० बिहा०), गोहुँ (प०), गोहुम ( ग० द०, उ०-पू० म० ) मडा गया)। [ गोधूम (संस्कृ०), गोहूम (प्रा०), गेहूँ (हिं०), गंदुम (फा०), गित्र (रोमा०), गिहु (मार०), गोम, गोमु (दर०), गहूँ (प० पहा०) गिऊँह (कुमा०), गोम (बं० ) गहम (ओ०), गेहूँ (सिं०), गहुँ (गु०), घउँ (गु०), गहूँ (मरा०), गोयम (सिंहा०)]

गैंची—(सं०) दे०—गोंइजा।

गैंता—(सं०)-(१) कुआँ खोदने के समय भीतर से मिट्टी बाहर करने का पात्र (गं० द०, कहीं कहीं, मग०-५)। दे०—चलना।(२)दे०—गाता। (३) कड़ी मिट्टी खोदने के लिए लोहे का बना लंबा नोकीला फावड़ा। [ देशी, मिला० —*खनित्र >खंता ]
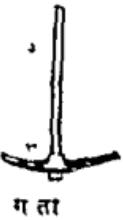
गैंता

गैंधरा—(सं०) गौओं के रहने का मकान (उ०-पू० मं०)। दे०—गोसार। [ गै+घरा< *गोगृह ]

गैना—(वि०) छोटा ( बौना ) बैल ( पट ४, मग० ५)। दे०—नाटा। [ देशी ]

गैंवार—( सं० ) गाय चरानेवाला, चरवाहा (दर० १), पर्या०—गैवरवाहा (म० २ ), गवार (चपा०), धौरे (द० भाग०)। [ गै+वार (प्र०)<गो+वार<√वृ ] (संम०) ]

गैया—( सं० ) दे०—गाय।

गैरमजरुआ आम—(सं०) वह जमीन, जिसपर जमींदार का अधिकार रहता है, लेकिन उसके व्यवहार करने का अधिकार सभी असामियों का

का होता है। जैसे—रास्ता, डगर आदि। [ गैर+मजरुआ+आम (फा०) ]

गैरमजरुआ खास—(सं०) वह जमीन, जिसपर मालिक ( जमींदार ) का अधिकार रहता है। [ गैर+मजरुआ<खास (फा०) ]

गैरमौरुसी—(सं०) वह काश्तकारी जमीन, जिसपर मौरुसी हक नहीं मिला हो। पर्या०—पाही (पट०, गया), खरिदगी (शाहा०) हाल बपारजित (उ०-पू०म०)।[ गैर+मौरुसी (फा०)]

गैवरवाहा—(सं०)-(म० २)। दे०—गवार। [ गैवर+वाहा, मिला०-गैवार ]

गैवार—(सं०)—(चंपा०) दे —गवाह।

गैवाह—( सं० ) गौओं को चरानेवाला मनुष्य (उ०-पू० म०)। दे०—चरवाह। [ गै+वाह (प्र०), गो+वाह<वह (संभ०) ]

गोंइजी – (सं०) एक प्रकार की मछली जिसका मुंह और पूंछ पतली होती है ( शाहा० १ )। पर्या०—गहूँची (पट० ४ चंपा०, मुंग० ५), गइँचा (चंपा०, म० २ ), गैंची (भाग०)। [ देशी, मिला०—गडरू ]

गागरा—(सं०) लता में होनेवाली एक प्रकार की तरकारी। यह हरे रंग और लंबे आकार की होती है। (पट० १)। पर्या०-परोर, नेनुआ, तोडई, तोरई, घिउड़ा ( चंपा०, मुंग० ५, पट० ४)। [ देशी, महाकोशातकी, हस्तिघोषा (संस्कृ०), नेनुआ, बड़ी तोरई, घिया तोरई, घिउरा, घेवरा (हि०), हस्तिघोषा धुंधुल (बं०) घीसाले, घोसाला ( मरा० ), घीसाडा (गु०), तुप्पिरी (क०), तांडि (ओ०) ]

गाँझी—(सं०)-(बं० भाग०, पट० ४)। दे०—झांझ। [मिला०-गाँजा=मंजीर(पा०स०म०)]

गोंडी—(सं०) चारा खिलाने के लिए मिट्टी का बना हुआ और धूप में सुखकर तैयार हुआ लंबा नाद (बं० मुं०, मुंग० ५)। दे०—चरन। [ देशी, मिला०—गोण, गोणी (संस्कृ०) = बोरा, एक प्रकार की घास ]

गोंद—(सं०) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि। दे०—गोंएड़ा। [ गाँ+द<ग्राम+आढ्य या गा<गुड़<*गुय ]

गोंदा—(सं०)। दे०—गोंद।

गोंत—( सं० ) गाय का पेशाब ( चंपा० १, म० २)। [ गाँ+ओंत<ऊंत<मूँत<मुत्त <मूत्र, गोमूत्र (संस्कृ०), <गोमुत्ति (प्रा०)]

गोंदौरा—( सं० )—( प० )। दे०—खादर। [ देशी, सम०—गाँ+दौरा<*गामय+दौरा]

गोआ—( सं० )-(१)—(पू०)। दे०—खादर। [ गोमय* >गोअय>गोआ ] (२) लाठी का मोटा अंतिम छोर (बं० मुं०)। दे०—हूरा। [ देशी, मिला०—गुल्फ ( संस्कृ० ), गाँफ ( प्रा० ) ] (३)—( उ० प० म० )। दे०—खादर। [ <*गोमय ]

गोआ पटाओल—(महा०) ऊख के बोने पर सिंचाई किये बिना ही उसके बीज पर खाद (सड़ी पत्ती, घास आदि) देना (उ० प० म०)। दे०—खदियाओल। [गोआ+पटा+आओल(प्र०)]

गोआम—(सं०)-(१) नदी, नहर आदि में बाँध बाँधने के लिए लगाये गये मनुष्य (पट०, गया मुंग० ५,पट०-४)। पर्या०—गोमाम (मुंग० ५)। (२) मालगुजारी के अतिरिक्त किसानों द्वारा जमींदारों को समर्पित स्व-सेवा (पट०, गया, बं० मुं०)। पर्या०—गोहार। [देशी]

गोआस—(सं०) मवेशियों के रहने का स्थान, गोष्ठ (उ० पू० म०, चंपा०)। दे०—बथान। [ देशी, मिला०—गो+आस<गो+आस <√आस् या वास ]

गोइठा—(सं०) दे०—गोमैंठा।

गोएंड़—(सं०) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि, जिसमें गाँव की गंदगी, सड़ी गली खाद आदि पानी के बहाव के साथ आया करती है। पर्या०—गोएँड़ा, गोंदा, गोंदा, पाध, कोड़ार, कोरार (पट०, प०), हिर्दोस (शाहा०, पट० गया), घरबारी (पू० बं० मुं०), बाड़ी (द० भाग०)। [ मिला०—गोंद ]

गोएंड़ा—(सं०)। दे०—गोएंड़। [मिला०—गोंद]

गोकुलफूल—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान ( गया )। [ गोकुल+फूल <गोकुल+पुल्ल (?)]

गोकुलसार—(सं०) रोपा जानेवाला एक प्रकार का धान ( द० भाग० )। [ गोकुल+सार <*गोकुलसारि]

गोखुला—(सं०)-(१) धान की फसल को हानि पहुँचानेवाली एक काँटेदार घास (पू० म०, पट०, गया, द० मु०, पट० ४, मग ५, म० २, चपा०)। पर्या०—गोरखुल। (२) ऊसर या परती जमीन में होनेवाली और जमीन पर फलने वाली एक काँटेदार घास, जिसकी फलियों पर टढ़ काँटे होते हैं। [< *गोक्षुरक]

गोचर—(स०) चरागाह।

गोचारि—(स०) सुरक्षित चरागाह (दर० १)। [गो+चारि< *गोचर]

गोर्छी—(स०) धान की पहली रोपनी के समय में कीड़े मकोड़ों से धान की रक्षा करनेवाले देवता को मदिरा, दूध, भूजा और तेल से पूजन को एक रीति (द० भाग०)। [देशी]

गोजइ—(सं०) गहूँ और जौ की मिली हुई फसल गहूँ जौ आदि मिला हुआ अनाज (पट० १ चपा०, मग० ५ भाज०)। [गो+जइ < गाहूम+जइ< *गोधूम+यव]

गोजी—(स०) पतली लाठी (चपा० १) [गो+ज +ई (प्र०), < *गा+अज<√अज्]

गोट—(सं०)—(१) पील या काले-नील वर्ण का गोल दानोवाला तलहन, जिससे कडुआ तेल निकलता है (पू म०, दर० १)। द०—सरसो। (२) व्यक्ति, वस्तु, खंड। [देशी, मिला०—गुटिका (संस्क०)=गोटी, गोप (हिं०, पं०)=टुकड़ा, गोटी गोटा (हिं०)=कपड़े पर लगाई जानेवाली सुनहली या उजली वस्तु, किनारी। गोट्टा (प०), गोटो (मे०) = टुकड़ा, गोटा (म०)=प्रतिवस्तु, गोठा (प०)=अविभक्त गोट (अस०)=परिणाम, इकाई, गोटा (ओ०)=एक, गोट्टु (सि०) तंबाकू का गोला, गोटी (गु०) चाँदी का गोला गोर्टी (मरा०) गोल पत्थर]

गोट, गोटा—(स०) मकई के भुट्टे में से निकला हुआ अनाज। [देशी, मिला०—गुटिका]

गोटा—(सं०)—(१) बीज (द० भाग०)। द०—बीया। (२) दे०—गोट। (३) द०—गोट-२। (४) साड़ी में लगाई जानेवाली एक प्रकार की किनारी। [देशी, मिला० —गुटिका]

गोटाएल—(क्रि०) मकई, जनेर आदि फसल की बाल का दृढ़ (अन्न के रूप में) होना (सा०, पू० म०, चंपा०, मग० ५ पट० ४)। दे०—हुबसाएल। [गोटा+आएल (प्र०) <आय, (संस्कृ० ना० धा० प्र०), गोटा < *गुटिका]

गोटी—(स०)—(१) अफीम की टिकिया। (२) नील की टिकिया। (३) मिट्टी पत्थर या लकड़ी आदि का छोटा गोल टुकड़ा जिससे बच्चे गोटी का खेल खेलते हैं। गोटी देओल—(मुहा०)=संपत्ति के बँटवारे में गोटी से निर्णय करना (मग ५)।—गोटी बैठावल (मुहा० चपा० १) दे०—गोटी देओल। अपना काम बनाना। [< *गुटिका]

गोटीघर—(स०) नील की टिकिया सुखाने का घर। [गोटी+घर—मिला०—गुटिकागृह]

गोटी देओल—(मुहा०) दे०—गोटी।

गोटी बैठावल—(मुहा०) दे०—गोटी।

गोटी—(स०)—(१) पील या काले-नीले वर्ण का गोल दानोवाला तेलहन, जिससे कड़आ तेल निकलता है (द० भाग०)। दे० —सरिसों। (२) दे०—गोट-२। [मिला० —गुटिका]

गोठउर—(स०) द०—गोठौर।

गोठउल—(स०) गायों के रखने का घर। [< गोष्ठ+कुल]

गोठी—(स०) साफ की हुई रुई का ढेर। [< गोष्ठी, गोष्ठ]

गोठौर—(स०) गायों का ढर (मग० ५, भाग० १)। [गोठ+और, गोर< गोष्टा, < गोनिष्ठ (२), उर< पूर वा कुल]

गोड़—(सं०) मनुष्य, मवेशी या किसी जन्तु का पैर। [गोड< *गाड्ढ (प्रा०), गुर (रोमा०), गोडो (ने०, कुमा०) गोर (असा०)=पेड़ का तना, गोड (बँ०) गोड़ा (ओ०), गोडा पिंडा (ओ०)=बछिया। गोड़ (हिं०) गोड़ा (प०) =घुटने। गोडा (ल०), गोडा (सि०)]

गोड़पौठा—(सं०) कुएँ के आरपार रखा गया लकड़ी का तख्ता, जिस पर खड़ा होकर पानी निकाला जाता है (द० पू०म०)। पर्या०—

पौठा (पट० ४)। दे०—परियाठा। [गोड+पौठा < प्रोष्ठ (संस्कृ०), पोट्ठ (प्रा०) = बेंच, स्टूल। गोड < *गोड्ड (प्रा०)]

गोड़पौर—(सं०) मोट खींचनेवाले बलों के लिए कुएँ के पास बना हुआ ढालू भाग (ब० मु०)। दे०—पौदर। [गोड + पौर, पौर < पौरी < पओली < *प्रतोली]

गोड़पौर

गोड़रा—(सं०) एक मछली विशेष। इसके कई पैर होते हैं (शाहा० १, चंपा० १, पट० ४, मग० ५)। [गोड + रा (प्र०) < गोड < *गोड्ड (प्रा०)]

गोड़ल—(क्रि०)—(१) चरते हुए पशुओं को इकट्ठा करना (चंपा० १)। (२) भूमि को कुदाल या खुरपी आदि से कोड़ना। [गोड + ल (प्र०) मिला०—गोर < √गुरी (उद्यमने = उठाना) वा √गुपरु, √गुपह (= ढकना = घेरना), गोड़ना, गोड़ना (हिं०), गोड्नु (म०) = खोदना, घासपात निकालना, खेत आदि को साफ करना। गोडणा (प०) = खोदना, गोड्डु (१०, सिं०), गाड़्णु (ल०), गोड़वुँ (गु०)]

गोड़ा—(सं०)—(१) वह आधार, जिसपर अन्नागार (कोठी, बखारी आदि) अवस्थित रहता है। पर्या०—थैसना (द० पू० म०), थैसक (पू० म०, द० मु०), खूरा (पट०), ओटा (शाहा०)। (२) गँड़ासी के फलक का नुकीला अंश, जो बेंट के अंदर रहता है (ग०-उ०-प०)। दे०—खुरा। (३) बरतन के नीचे लगा छोटा आधार। (४) किवाड़ के नीचे लगा लकड़ी का लंबा टुकड़ा। (५) व्यक्ति या कोई एक वस्तु। दे०—गोट २ [गोड़ + आ < गोड (देशी), < *गोड्ड (प्रा०)।

गोड़ाइत—(सं०)—(१) गाँव में पहरा देनेवाला दुसाध। (२) जमींदारी में काम करनेवाला निम्न स्तर का नौकर, जो समय पर गाँव के लोगों को इकट्ठा होने की सूचना दिया करता है। [देशी]

गोड़ानी—(सं०)—(१) पशुओं का भागना रोकने के लिए उनके अगले दोनों पैरों को बाँधने की रस्सी (द० मग०)। दे०—पछ। पर्या०—छान (पट० ४, म० ५, चंपा०)। (२) स्त्रियों या बच्चों के पैरों में पहना जानेवाला चाँदी का बना आभूषण। [गोड + आनी (प्र०) < गोड्ड (प्रा०)]

गोड़ानी

गोड़ी—(सं०) मिट्टी या पक्की ईंटों का बना हुआ नाला-जैसा स्थान, जिसमें मवेशियों के खाने के लिए चारा रखा जाता है और जिसके दोनों ओर खूँटों में मवेशी बँधे रहते हैं (मु० १)। [देशी, मिला०—गोणी]

गोड़ी

गोड़ीलच्ची—(सं०) एक प्रकार की लता (दर० १), [गोड़ी + लच्ची (देशी)]

गोड़ैत—(सं०)—(१) गाँव की ओर से नियुक्त गाँव में पहरा देनेवाला व्यक्ति। पर्या०—कोतवाल, चौकीदार। (२) *०—गोड़ाइत। [गोड़ + ऐत (प्र०)— जैसे लट्ठ + ऐत = लठैत। गोड़ = गोड़ल, < अगोरल, अगोरना (हिं०)]

गोड़ैतक मूठ—(सं०) चौकीदार को किसान की ओर से मिलनेवाला पारिश्रमिक (उ०-पू० म०)। दे०—चौकीदारी। [गोड़ैत + क (विभ०) + मूठ]

गोड़ैती—(सं०)—(१) चौकीदार को किसान की ओर से मिलनेवाला पारिश्रमिक (द० पू० म०, चंपा०, पट० ४)। दे०—चौकीदारी। (२) गोड़ाइत को मिलनेवाला पारिश्रमिक। [गोड़ैत + ई]

गोतल—(क्रि०) मवेशियों के खाने के लिए पानी में घास, दाना, खल्ली आदि मिलाना (शाहा० १ पट० ४ मग० ५, चंपा०, भाग० १)। [गोत + ल (प्र०) मिला० गोत (म०)]

गोथार—(सं०)-(१) पशुओं के खाने के बाद बचा हुआ व्यर्थ का (बकाया) घास भूसा आदि (प०, गया, द० पू०, मग० ५, पट० ४)। दे०—लथर।
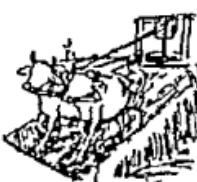
(२) अनाज निकाल लेने के बाद फसल का डंठल (उ०-प०)। पर्या०—लथेर (प०, उ०-प० म०), निघास (चपा०, उ० पू० म०) निघेस (द०-पू० म०), डाँटी (ग० द० चपा० [गो+थार (सभ०) <*गो+स्तार]

गोघना—(सं०) एक घास जिसे पशु खाते हैं (पू० म०)। [गो+घना <गोघन (?)]

गोन—(सं०)—(१) मवेशियों की पीठ पर ढोने के लिए रखा हुआ बोरा (शाहा०)। दे०—खाखा। कहा०—"बैल न कूदे कूदे गोन, एह तमासा देख कौन। =बैल नही कूदता है, उसकी पीठ पर रखा गोन कूदता है। इस तमाशे को कौन देखे। अर्थात् मनुष्य नहीं, मनुष्य का धनमद उसके सर पर नाचता है। (२) दो रस्सियों को बाँटकर बनाई गई रस्सी (गया, द० प०)। दे०—गून। (३) वह पतली मजबूत बटी हुई रस्सी, जिससे मल्लाह नाव खींचते हैं। (४) गोंद। [<*गुण <*गोण]

गोन

गोनउरा—(सं०) वह स्थान जहाँ घर का बुहारन, राख, गोबर आदि फेंका जाता है (पू० चपा०, चपा० १ पट० ४, मग० ५, म० ५ भाग० १)। [गोन+अउरा, गोन <गोमय। अउरा (प्र०) वा <आवर्त्त, कूट, पूर]

गोनर—(सं०) घर के पास जमा की गई खाद की राशि (पू० म०)। दे०—खरी। पर्या०—गनोर (पट० ४), गनौरा (भाग०)। लोको०—'गोआरक गोबर दुहुदिस चिक्कन' (मं०) =ग्वाला की खाद राशि दोनों ओर चिकनी होती है। [गोमय, गोमल]

गोनरौरा—(सं०) खाद कूड़ा (द०-पू० म०)। दे०—खान्र। [गोनर+औरा <गोमय, गोमल+कूट आवर्त्त, पूर]

गोपालभोग—(सं०) खाने जानेवाला एक प्रकार का पान (गया)। [गोपाल+भोग]

गोपी—(सं०)—(१) एक प्रकार की पीली मिट्टी जो चंदन के काम में लाई जाती है। (२) वह आम, जो पिपन होकर समय के पूर्व पक जाता है (चपा० (१)। गोपी (+चन्दन), गोपिचंदन (नें०)]

गोफा—(सं०)—(१) पौधों की कोंपल (चपा० १)। (२) लाठी के हुर्रे में लगी हुई लोहे की टोपी। [<*गुम्फ वा <*गुप्त]

गोय—(सं०) मरे हुए धान के पौधे के स्थान में दूसरे पौधे की रोपनी (दर० १) [गोव <गोबन <गोमल <गर्भ]

गोबर—(सं०)-(१) (सा०-*)। दे०—खादर। [<*गोमय <*गोमल] (२) गाय या भैंस का मल (बिहा०, भाज०)। [गोबर< *गोमल, टर्नर के मतानुसार< गोर्वर (सस्क०), गोवर, गोव्वर (प्रा०), गोबर (नें०, कुमा०, असo, बं०), गोबर (ओ०) गोबर (हिं० प०), गोर (गु०) =गोइठ की चूर। गोवर (मरा०) =सूखा गोबर]

गोबरचुननी—(सं०)-(मग० ५, चपा०, पट० ४) दे०—गोबरबिननी।

गोबर पाँचे—(सं०) सावन बदी पचमी को शेष नाग की पूजा करने का एक उत्सव (पट०, गया०)। पर्या०–नेहरा पाँचे (द० भाग०) नाग पाँचे (मग० ५ पट० ४), लखपाँचे (चंपा०)। टि०—इस दिन स्त्रियां गोबर से घरों के चारों ओर रेखा खींचती है और दरवाजे के दोनों तरफ चौकोर मंडल तथा साँप के मुँह का आकार बनाती हैं। [गोबर+पाँचे< गोबर-पचमी, गोमल-पञ्चमी]

गोबरबिननी—(सं०) खेतों या मैदान में मवेशियों के पीछे पीछे चलकर गोबर बटोरनेवाली स्त्रियाँ (शाहा०-१, चंपा० २, सर्वत्र)। पर्या०—गोबर चुननी (मग० ५, चपा०, पट० ४)। [गोबर+बिननी। बिनना< बीनना (बिहा०), बिनना (हिं० <√विचिर् (व्यक्तीकरणे'= स्पष्ट करना पृथक करना, उठाना, पा० रूप विभक्ति) विंक्त।—वि+√चि (मपा०)]

गोबराएल—(वि०)—(१) जिस खेत में अधिकता से खाद पड़ी है। दे०—गनौट खेत। (२) बरसात में आकर पशुओं का आपस में लड़ना भिड़ना (मग० ५)। [गोबर+आएल (प्र०) <गोमय, गोमल, गोबर]

गोबराएल—(क्रि०) खेत में गोबर की खाद देना (ह० १)। [गोबर+आएल (प्र०) <गोमय, गोमल, गोबर]

गोबरौरा—(स०) धान में लगनेवाला एक रोग (प० म०, प०)। [गोबर+औरा (प्र०) <*उरय (?)]

गोबल—(क्रि०) फसल के बीज के मरने पर उस स्थान पर पुन दूसरा बीज रोपना। पर्या०—डोभल (चपा०) गोब, डोभनी [गोब+ल (प्र०) <गोब<गोभ<*गर्भ (सस्कृ०), गव्य, गोव्य (प्रा०)]

गोभल—(क्रि०) दे०—गोबल।

गोभी—(स०)—(१) ऊख की जड से निकलनेवाली शाखा, जिससे पौधे को हानि पहुँचती है (पू० म०, रो०)। दे०—दाज। (२) फसल में लगनेवाला एक रोग, जो भीषण वायु गोभी के प्रभाव से होता है और जिससे पौधे में छोटे छोटे अकुर निकल आते हैं, जिस कारण वह कमजोर पड जाता है। (३) वह ऊख, जिसमें सब अकुर निकला हो (अन्यत्र स० उ०, म० २, पट० ४, मग० ५)। दे०—पुआरी। (४) एक तरकारी, कोबी। [<*गुम्फ, *<गोजिह्वा]

गोमाम—(स०)—(मग० १)। दे०—गोआम।

गोयँठा—(स०) जलावन के लिए गोबर का बनाया हुआ गोलाकार चिपटा या लबा पिंड, जो धूप में सुखा लिया जाता है (शाहा० १ पट० ४, मग० ५ म० २)। पर्या०—चिपरी (मग०), गोइठा (चपा०)। [गोयँ+ठा <०गोमय+दृष्ट, गो+विष्ठा]

गोयठा—(स०) दे०—गोहरा, गोयँठा।

गोयँडा—(स०)—(शाहा० १, चपा०)। दे०—गोएँडा। [गोयँ+डा]

गोरटी—(स०) कुछ पीली उजली मिट्टी (ह० भाग०)। दे०—गोरिमट्टा। [गोर+मटी< गोर+मिट्टी<*गौरमृत्तिका]

गोररिया—(स०)—(१) गौओं को चरानेवाला मनुष्य (मग० १)। दे०—चरवाहा। (२) जोते जानेवाले खेत में हल में चलनेवाले बैलों को अवकाश देने के लिए रख गये अतिरिक्त बैलों को देखनेवाला लडका। दे०—अनवाह। [गो+ररिया<*गोरक्षक]

गोरखिरवा—(स०) वह धान जो न बहुत लाल हो और न बहुत उजला (पट० १)। [गोर+खिरवा<गौर+क्षीर (?)]

गोरखुल—(स०) धान की फसल को हानि पहुचानेवाली एक काँटदार घास (प०)। दे०—गोखुला। [गोक्षुरक]

गोरयारी—(स०) पशुओं के धान के बाद बचा हुआ व्यय घास-भूसा आदि (द० भाग०)। दे०—रुपर। [गोर+यारी<गोरु+यारी<गो+स्तार]

गोरल—(क्रि०) किसी कच्चे फल को पकने के लिए भूसा, अन्न आदि में इस तरह रखना कि गर्मी के कारण वह पक जाय (चपा० १, म० २)। [<√गृ (निगरणे=नीचे रखना)]

गोरपीर—(स०)—(१) ऊख के कोल्हू के नजदीक का वह स्थान, जिसमें बैल घूमता है (सा०)। पर्या०—पौदर (चपा०, शाहा०) पौर या पैरी (स० उ०, कहीं-कहीं, पट०, गया, ह० भाग०), बही (पट०), बड़हरा (ह० मुं०)। [गोर+पौर <गो+प्रतोली, गोड (गो) प्रतोली]। (२) वह स्थान, जहाँ लदा हुआ पानी चढ़ाने के समय सन चलाया जाता है। पर्या०—पौला (प०), सैनार (ह० भाग०)। [गोर+पौर]

गोरपौरी—(स०) ढेंकी के पटरे के बीच का गड्ढा। पर्या०—गत्ती (ह० भाग०, पट० ४, मग० ५)। [गोर+पौरी<गोड+प्रतोली,प्रोष्ठ]

गोरया—(स०) वह बैल, जिसका रंग गेरू की तरह लाल हो (पट० १)। [गोर+या<*गौर, <*गोल]

गोरस—(स०) दूध, दही, घी आदि। [गो+रस <*गोरस (सस्कृ०), गोरस (पा०, प्रा०) गुल्ल (कन्न०), गोरस (हि०), सरोर म० कुमा०), गोरस (अस०, बं०)=दही, गोरस (गु०), गोरस (मरा०)]

गोरा—(स०)—खातदारी भूमि का एक प्रकार। टि०—इसमें सीमा निर्धारण के साथ-साथ एक निश्चित कर (राजस्व) लिया जाता है, किन्तु

भूमि परिमाण का निश्चित उल्लेख नही मिलता है। सामान्य तौर से मौलिक प्रबंध पत्र (Original Settlement) में आँकी गई भूमि के अधिक होने पर भी उसके कर में कोई वृद्धि नही हो सकती है। जमीदार की स्वीकृति के बिना खरीदी-बेची जा सकती है। [देशी]

गोरिअट्टा—(स०) पीली या उजली चिकनी मिट्टी। पर्या०—गोरटी (द० भाग०)। [गोर+इअट्टा<*गोर+मृत्तिका]

गोरिआ—(स०) ग्वाला जाति का एक भेद, ये प्रायः गोरे होते हैं। [सभ०—<*गोर वा <ग्वार<ग्वाल<*गोपाल]

गोरी केवाल—(स०) हल्के रंग की मिट्टी (द० पू० म०, मग० ५)। [गोरी+केवाल+गोरी केवाल]

गोरुआ—(वि०) (१) भूसे आदि में गोरकर या ऊपर से गरमी पहुंचाकर पकाया हुआ आम आदि फल (मु० १, चंपा० १)। पर्या०—पलुआ (चपा० १)। (२) उबाल लेने के बाद धूप में आधा सुखाया हुआ धान। [गोर+उआ<गोरल (विहा०)<√गु, गोरना (हिं०)]

गोरू—(सं०)-(१) भैंस को छोड़कर अन्य सभी सींगवाले पालतू मवेशी (दर० १)। (२) पालतू मवेशी। पर्या०—गायगोरू, धूरडाँगर (पट०, गया)। (३)-(चंपा०)। दे०—गाय। [गो+रू (प्र०)<*गो, <*गोरूप (संस्कृ०), गोरूप (पा०)=बल, गुल्व, गोरु (रोमा०), गोरू (प० पहा०), गोरू (कुमा०), गोरु (ने०), गोरु (असं०, बं०, ओ०), गोरू (हिं०, प०), गोरू (मरा०), गेरिया (सिंहा०)=बल। गेरि (सिंहा०)=गाय]

गोरुयारी—(स०) बैल भैंस को खिलाने का काम (शाहा०)। [गोरू+यारी<गो+रू (प्र०) वा<गोरूप+वार+ई (प्र०)]

गोरेटिया पथरौटी—(स०) बारीक कंकड़ मिली हुई कुछ लाल मिट्टी। [गोरे टिया+पथरौटी< गोर+इँग्यिा+पत्थर+औटी <*गोर+मृत्तिका+प्रस्तर+वटी]

गोरैया—(सं०) एक कल्पित देवता, जो प्रायः गोडैतों के देवता माने जाते हैं। कहीं कहीं किसानों के दरवाजों पर भी इनका पिंड बना होता है (पट० ४, मग० ५, चपा०)।

गोलबर—(वि०) गोल गोल आकार का। [गोलबर<गोल+वर (प्र०)]

गोलबर कदुआ—(सं०) वह कद्दू, जिसका आकार गोल होता है (पट० १)। [गोलबर+कदुआ]

गोलबर लेंबो—(सं०) गोल आकार का नींबू (पट० १)। [गोलबर+लेंबो]

गोलभर—(स०) इंट आदि से बांधने के पहले कुएं का खोदा गया बड़ा गोल ढाँचा (गया)। दे०—दवड। [गोलभर<गोल]

गोल—(स०)-(१) इंट आदि से बांधने के पहले खोदे गये कुंए का बड़ा गोल ढांचा (द०-प० शाहा०)। दे०—दवड़। [गोल] (२) (वि०) पीलापन लिये हुए लाल रंग का पशु (दर० १)। पर्या०—गोला (माग०)। [<*गोर, (संस०) <*गोला =(मनसिल, यह धातु गेरू की तरह लाल होती है)]

गोल—(स०)-(१) गाया का समूह (सा० १, मग० ५)। दे०—ढोर। (२) पीलापन लिये हुए लाल रंग (चपा०-१, मग० ५, म० २)। (३)-(वि०) पीलापन लिये हुए लाल रंग का पशु (चपा० १)। [गौर, गोल=(मनसिल)= एक प्रकार की लाल धातु]

गोलकी—(सं०) काली मिर्च (मुं० १, पट०-४, मग० ५)। (१)-(वि०) गोल आकार की वस्तु। (२) लाल रंग की गाय आदि। [गोलक+ई <गोलक, मिर्च<मरीच]

गोलगाल—(स०) इंट आदि से बांधने के पहले खोदे गये कुएं का बड़ा गोल ढांचा (दक्षि शाहा०, पट० ४, मग० ५)। दे०—दवड़। [गोल+गाल (अनु० शब्द)<गोल]

गोलवा—(वि०)-(१) लाल रंग का पशु (मग० ५)। दे०—गोल। (२) एक प्रकार का खट्टा साग, मोनिया साग। (मग० ५)। [गौर, गोला (=मनसिल)]

गोलभटा—( सं० ) बैगन का एक भेद, जो गोल होता है । दे०—बैंगन । [ गोल+भटा< गोल, भटा (देशी) या < वृन्ताक ]

गोलमिरिच, गुलमिरिच—( सं० ) एक प्रसिद्ध चौथी गोल काली फली, जो मसाले में प्रयुक्त होती है, काली मिर्च । दे०—मिरिच । पर्या०—मरीच (दर० १), मरिच (चपा०) । [ गोल+मिरिच< गोल मरीच ]

गोलरी—(सं०) रबी की बाल का पका हुआ टुकड़ा, जो पीटने-झाड़ने पर भी अनाज के अंश में साथ रह जाता है । पर्या०—गोलुआँ (मग० ५) । [ देशी ]

गोला—(वि०)-(१) पीलापन लिये हुए लाल रंग का मवेशी । दे०—गाइ$_{1}$ । [< *गोर< *गोला (मनसिल=एक लाल रंग की प्रसिद्ध धातु)] (२) (सं०) एक प्रकार की कपास (मु०) । [गोला=लाल रंग]

गोलावा—(सं०)-(१) एक प्रकार का साग । इसे कुलफे का साग भी कहते हैं (पट०, गया, सा०, पट० १) । दे०—खुरफा । (२) किवाड़ों में ठोंकी जानेवाली गोल कील, जिसकी ऊपर वाली टोपी छत्राकार और गोल होती है (पट० ४, मग० ५) । [ देशी ]

गोली—(सं०)-(१) गुड़ रखने का बड़ा बरतन, बड़ा कुंडा (मु०-१) । (२) पीलापन लिए हुए लाल रंग की गाय आदि मादा मवेशी । (३) अन्न आदि रखने के लिए गोलाकार छोटी कोठी पर्या०—जयरा (गया, चपा०) । [ गोल+ई< *गोलक ]

गोलौर—(सं०)-(१) ऊख का रस उबालने और गुड़ बनाने का घर (शाहा०) । दे०—गुड़ौर । [गोल+और< *गुड़+वाट] (२) ऊख पेरने तथा गुड़ बनाने का स्थान (शाहा०) । दे०—कोल्हुआर ।

गोवार—(सं०) दे—ग्वार ।

गोसाला—(सं०)-(१) गौओं के रहने का मकान । दे०—गोआर । (२) गौओं के रहने का सार्वजनिक स्थान, जहाँ अपंग गाय, बैल आदि रखे जाते हैं । पिंजरापोल । [ गो+सला< *गोशाला ]

गोहट—(सं०) मेंड को कोड़ना या छाँटना (चंपा०, सा० १) । आरि छोंटल (मुहा०) =मेंड को छाँटकर उसपर मिट्टी डालना, मुहा०—गोहटा फेंकना (पट०-४, मग०-५) । [ देशी ]

गोहमा—(सं०) छींटकर बोया जानेवाला एक प्रकार का धान (द० भाग०) । [ गोहम+आ (साधु० प्र०) < *गोहूम< *गोधूम]

गोहमाठी—(सं०)-(१) गेहूँ का खेत (पट० ४) । (२) अनाज निकालने के बाद बचा गेहूँ का डंठल । [ गोह+माठी< गोहूम+माटी < गोधूम+मृत्तिका ]

गोहरा—(सं०) जलावन के लिए गोबर का बनाया हुआ लंबा टुकड़ा, जो धूप में सुखा लिया जाता है । पर्या०—थपुआ, गोयठा, गोयँठा ( पट० ४ ) । [ गो+हरा< हल्ल, हल्ल (हि० श० सा०) ]

गोहरायल—( क्रि० ) झुंड में से निकालकर पशुओं को गाँव की ओर ले जाना (द० मुं०) । दे०—निकालल । [ गोहर+आयल ( प्र० ) < *गो+हार ]

गोहरौर—(सं०) गोयठे का ढेर (शाहा०-१) । दे०—गोंठौर । [ गोहरा+और (प्र०) ]

गोहाल—( सं० ) वह जमीन, जिसमें गाँव का गंदा पानी बहकर जाता है (शाहा० ) । [ गोह+आल (प्र० ) या आल< स्थान, गोह< गुह< *गूथ< *गोह ]

गोहार—(सं०)-(१) मालगुजारी के अतिरिक्त किसानों के द्वारा जमींदार को गर्मवित खरीवा । दे०—गोमाम । (२) सम्मिलित रूप से हमला करना । (३) लड़ने के लिए इकट्ठा हुआ मनुष्यों का समूह ( पट० ४, मग०-५ ) । (४) आपत्ति करना । [ देशी ]

गोहाल—(सं०) गौओं के रहने का मकान (पू०, दर० १, मुं० २ ) । दे०—गोसार । [ गो+हाल< *गोशाल ]

गोहुम—( सं० ) एक प्रसिद्ध रब्बी अनाज जो पाताम (बादामी) रंग का होता है और जिसका आटा खाया जाता है (सं०-र०, उ०-नु० मैं०,

पट० ४, मग० ५ )। दे०-गेहूँ। [ गोधूम (संस्कृ०), गोहूम (प्रा०) ]

गोहूँ—(स०) एक प्रसिद्ध चैती अनाज, जो पीताभ ( बादामी ) वर्ण का होता है और जिसका आटा खाया जाता है ( प०, पट० ४, मग० ५ )। दे०—गहूँ। [ गोधूम ]

गौँआँ—(स०)-(१) गाँव का स्वामी, जमींदार (शाहा०)। दे०—जिमिदार। (२) एक गाँव का रहनेवाला (भाग०, दर०)। [ गौँ+आँ (प्र०)<ग्राम। मिला०—ग्रामणी ]

गौँछी—(स०)-(१) एक प्रकार का जलीय झींगुर, जो पत्ते की नाव में बैठकर इधर-उधर बहता हुआ धान के पौधों को खाता चलता है ( प० म०, पट०, गया )। [ गुच्छ (?) ] (२) वह जमीन, जो नदी की धारा से कटकर पानी में गिर जाती है। दे०—धसना। (३) पौधों का छोटा अंकुर, जो जड़ से अथवा पौधे के टूटने पर गिरह पर से निकलता है। (४) पौधों की एक मुठ्ठा से छोटी परिमित राशि। [ देशी ]

गौँजी—( स० ) वह जमीन, जो नदी की धारा से कटकर पानी में गिर जाती है। दे०—धसना। [ देशी ]

गौँदी—( सं० ) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि (पट० ४, मग०-५)। दे०—गोएँड। [ गौँढ़ा, दे०—गौँढ़ा ]

गौँत—( स० ) पशुओं का मूत्र। पर्या०—गौत, मूत (प०), गोँत (चंपा०)। [ गो+ओँत <*गो+मूत्र ]

गौछी—(स०) उखाड़कर रोपने योग्य धान के पौधे। लेल=धान का रोपा समाप्त या प्रारंभ करना। —के नहाइल—खेत में रोपा होते ही वर्षा के पानी से पौधों का नहाना। [गुच्छ]

गौठि—(सं०) सूखा हुआ गोबर (उ०-पू० म०)। दे०—इमारा [ <*गोठ<*गोष्ठ ]

गौत—(सं०)-(१) दे०—गौँत। [ गो+त<*गो+मूत्र ] (२) बथान में एक साथ बाँधकर पशुओं को दिया जानेवाला चारा (गया, चंपा०) दे०—गवत। (३) पशुओं का चारा ( पट०-४, मग०-५, चंपा० )। [ गो+ओत<गवाद्य ]

गौतदेल—(मुहा०) पशुओं को खिलाना, गवत देना (पट०, गया, पट० ४, मग० ५)। दे०—सानी-पानी करल। [ गौत+देल ]

गौतहा—(सं०)-(१) (पट०)। दे०—गवत। (२) गौत या गवत देनेवाला व्यक्ति। (३) बरसाती फसल, जिसे पशुओं को खिलाते हैं। [ गौ+ओतहा<गवाद्य ]

गौर—(सं०)—( उ० पू० मं० )। दे०—ओसर [ गो ]

गौरिआ—( सं० ) एक प्रकार का केला, जो मसोले आकार का और मोटा होता है (चपा० १)। [ देशी ]

गौरिआ मालभोग—(स०) एक अगहनी धान, जो सफेद और नोक पर थोड़ा-सा काला होता है (सा० १)। [ गौरिया+मालभोग ]

गौरिया—(स०)-(१) चीना का एक भेद (सा०)। पर्या०—रकसा (सा०)। (२) एक प्रकार का नीबू (दर० १)। (३) एक प्रकार का केला ( दर० १, चपा० तथा अन्य० )। [ देशी, सम०<*गौर ]

गौरी—(सं०) चारा खिलाने के लिए मिट्टी का घना और धूप में सुखाया हुआ लंबा नाद (गया)। दे०—चरन। [मिला०—गोरा, गोरी]

गौरीसकर—( स० ) एक शाक-विशेष। इसका पत्ता गुलाबी और लाल रंग का होता है (पट० १)।

गौसार—( स० ) गौओं के रहने का मकान। पर्या०—गोसाला, गोहाल (पू०), गैघरा (उ०-पू० म०), दरगोल ( द० प० शाहा० ) दोगाह (पट०, गया, सा०, प०)। [ गौ+सार <*गोशाल ]

गौसिंघी—(वि०) वह पशु, जिसके दोनों सींग बीच में आकर जुड़ते हैं ( द० प० म० )। दे०—सिंग जुड़ा। [ गौ+सिंघ <*गो+शृंग ]

गौसिंघी

ग्वार—(सं०)-(१) गाय चरानेवाला व्यक्ति। (२) अहीर, एक जाति विशेष। [ ग्व+आर <गो+आर<गो+पाल, गोवाल (प्रा०) ]

## घ

घँघरी—(स०) चने और ज्वार की बाल में लगने वाला एक कीड़ा (शाहा०)। पर्या०—घोंघरी, तरका (भाग०-१), घघरी, घँघरा (पट० ४)।

घइला—(सं०) दे०—घैला।

घघरा लेंबो—(सं०) बड़ा-बड़ा, करीब एक-एक सेर तक का फलनेवाला नींबू। इसका छिलका मोटा होता है और भीतर में फाँक रहती है (पट० १)। पर्या०—गागर-नीमो, गागल नीमो (चपा, शाहा०)। [घघरा+लेंबो]

घघरी—(स०) हेंगा या चौकी के निचले भाग में ढेलों को चूर करने के लिए बनाया गया लंबा गड़ा (गड्ढा), (व० भाग०, भाग० १)। पर्या०—घाई (म० व० भाग०, भाग०-१), खदहा (व० मुं०), खड़्ढा (कहीं कहीं), खड्ढा (पट० ४)। [देशी, मिला० घर्घर (संस्कृ०), घाघर (प्रा०)=घर्घर शब्द, खोखला गला, घड़ारी]

घटबढ़—(सं०) अनाज आदि का घटना-बढ़ना। मूल्य का उतार-चढ़ाव। [घट+बढ़, घट-बढ़ (हि०), घट-बढ़ (ने०)]

घटल—(क्रि०) घटना, कम होना। (वि०) घटा हुआ। घटल-पढ़ल (यो०)—घटा-बढ़ा, कम-बेश। [घट+ल (प्र०) <घट<घट्ट (प्रा०) =गिरना, गाट (बरदी), गट्टुन, गोट्टु (कन्न०) =अपर्याप्त, घट (प० पहा०)=छोटा, थोड़ा, घटणो (कुमा०), घटनु (ने०), घुटना (हि०), घाटिबा (असा०), घाटा (बं०) घटणा (प०), घट्टण (ल०) घटणु (सि०), घटवुँ (गु०), घाटणे (मरा०)]

घटही—(सं०) वह नाव, जो घाट पर रहती है। [घट+ही (प्र०) <घाट<घट्ट] (वि०) निम्न श्रेणी का, घटिया। [घट+ही (प्र०) <घट<घटल]

घटावल—(क्रि०) घटल क्रिया का प्रे०। घटाना, कम करना। अनाज आदि का मूल्य घटाना। [घट+आवल (प्र०)<घट<*घट्ट (प्रा०), घटाना (हि०), घटाउनु (ने०), घटुणो (कुमा०), घटाइबा (असा०), घटाउणा (पं०), घटाइणु (सि०), घटावुँ (गु०), घटविणे (मरा०)]

घटिया—(वि०) निम्न स्तर की वस्तु। निम्न श्रेणी का अनाज आदि। पर्या०—घटिहा।

घटिहन—(स०)-(१) निम्न प्रकार का सस्ता अनाज, ऐसा कोई अन्न, जो पौधे पान पर अधिक पानी सोखता है और शीघ्रता से पच नहीं पाता। पर्या०—घटीहन। (२) घैवी अनाज (भाग० १)। [घट+इ+हन, घटना (हि०), हन<हान<धान्य, या घट+इहन (प्र०)]

घटिहा—(वि०) दे०—घटिया।

घटीहन—(सं०) दे०—घटिहन। [घटी+हन]

घड़ा—(सं०) दे०-घैला। [घड़ा<*घट, *घटक (संस्कृ०), घटक (पा०), घडग, घडअ (प्रा०), घडा (हि०, बं० प०), घार (असा०)=हाँड़ी, घड़ो (सि०), खड़ो (गु०), घडा (मरा०)]

घड़ारी—(स०)-(१) सींचने या बोने आदि की सुविधा के लिए बने हुए जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े (चंपा०)। पर्या०—गड़ारी (भाग० १)। दे०—क्यारी। [घटा, कृष्ट] (२) कुएँ पर लगे खंभे की दो कड़ियों के बीच में पड़ी धुरी पर नाचने वाली घिरनी (प०)। पर्या०—गड़ारी (उ०-प०, द० मुं०) घिरनी (चंपा०, द० प० मे०, पट०, द० मुं०, पट० ४), गद्दा घड़ारी २ (द०-प० शाहा०), धुरनी (पट०), मकरा (चपा०, द०-मु०, भाग० १)। [घर्घर]

घन—(सं०)-(१) किसी चीज का घना रहना (चंपा० १, भाग० १)। पर्या०—घना (पट० ४)। (२) घनी बोआई। पर्या०—गाद, गाढ़ा, सँगोर (ग० उ०), घन बोअल (मुहा०)= अनाज का घना बोना। (३) लोहारों का बड़ा हथौड़ा। [घन (संस्कृ०), घन (पा०), घण (प्रा०), घन (हि०), घन् (ने०), गन (कश्म०)=लकड़ी का बल्ला, घण (कुमा०), घण (प०), घण (गु०), घण (मरा०)]

घनगिरह—(सं०) घनी गिरहोंवाला बाँस (चंपा० १, भाग० १)। [घन+गिरह <घन+ग्रंथि]

घनबहा—(स०) कोल्हू में पेरने के लिए ऊख लगानेवाला (व० भाग०, द० मुं०, भाग० १) दे०—मोरेवाह। [घन+वहा < घानी+वहा (प्र०) अथवा < √वह, घानी < घाटन (संस्क०), घायन (प्रा०), घान (=समूह)]

घनवाह—(स०) दे०—घनबहा (पट०, गया)। [घाटन (संस्क०), घायन (प्रा०), घान (=समूह)]

घनवाहा—(स०) ऊख को पेरते समय उसे हाथ से चभसानवाला आदमी। कभी कभी यह आदमी बैल भी हाँकता है (व० भाग०, भाग० १)। दे०—मोरवाह। [घन+वाहा < घानी+वाहा < घानवाह]

घनबोअल—(मुहा०) अनाज का घना बोना। दे०—घन।

घमहौरी—(सं०)-(१) एक प्रकार का फल (दर० १)। (२) गर्मी के दिनों में शरीर में होने-वाला एक चर्म रोग जिसमें चमड़े पर फुंसियाँ हो आया करती हैं। [देशी, घमह+औरी < ग्रीष्मवटी (?)]

घर—(सं०)-(१) ऊख या तेल पेरने के कोल्हू का वह खोखला भाग, जिसमें ऊख पीसा जाता है (चपा०)। दे०—घान। टि०—आजकल ऊख का कोल्हू तेल-कोल्हू जैसा नहीं होता है, लोहे के तीन सिलिंडरों का बना होता है। (२) मनुष्य के निवास करने का स्थान। (३) कोठरी। [< *गृह, घर (पा० प्रा०), घर (हिं०, पं०, ल०, असा०, ओ०) घरु (सिं०), घर (गु०, मरा०)। < *ग्ह़ोरो (भारो०) = आग, गर्मी —टर्नर]

घर फरल—(मुहा० -(१) धस या किसी औजार का अपने स्थान पर स्थिर हो जाना। (२) किसी बीमारी का जल्द नहीं छूटना (चपा० १)। (३) घर कर लेना, स्थिर होना। (४) किसी स्त्री का परपुरुष से ब्याह कर लेना (चपा०)। [घर+फरल]

घरगैया—(सं०) घर में पला हुई तथा पाली पोसी हुई गाय (शाहा०-१ भाग० १)। [घर+गैया]

घरदुआर—(स०) दे०—घरबार।

घरबार—(स०) गृहस्थी, परिवार। [घर+बार < *गृह+द्वार वा < *गृह परिवार, घरबार (हिं०, प०), घर्बार (नें०), घरबारु (सिं०), घरबार (गु०), घरबार (मरा०)]

घरबारी—(स०) (१) गाँव के पास की उपजाऊ भूमि (भाग० १)। दे०—गोएँड। (२) घर में रहनेवाला गृहस्थ, न कि संन्यासी। (३) घरबार का काम। [घर+बारी < *गृहवाटिका (?), गृह+वार]

घरमुँहा—(वि०) घर की ओर तेजी से आने वाला बल, गाय आदि पशु (चंपा० १, भाग०)। [घर+मुँहाँ < *गृहमुख]

घँटी—(सं०) मवेशी की गर्दन में बाँधी जाने वाली घंटी (चपा० १, भाग० १)। [< घण्टी, < घण्टिका (संस्क०), घंटिआ (प्रा०) घंटी, (हिं०), घौंडों (नें०), घानो (कुमा०) घंडा (प०), घड (ल०), घडो (सि०) घौंट (मरा०)]

घाँटी

घाइ—(स०) हेंगा या चौकी के निचले भाग में ढेलों को चूर्ण करने के लिए बनाया गया लंबा गड्ढा (द० भाग०, भाग०-१)। दे०—घघरी। [घाइ < खाई < *खात (?)]

घाघ—(सं०)-(१) पूर्वकाल का प्रसिद्ध भविष्य दर्शी कवि। (२) किसी काम में अति निपुण व्यक्ति।

घाट—(स०)-(१) नदी, तालाब आदि का वह स्थान, जहाँ से मनुष्य या जानवर पैदल या नाव आदि से पार करते हैं अथवा जहाँ से व्यापार की वस्तुएँ पार की जाती हैं अथवा स्नान करने तथा कपड़ा धोने का स्थान। (२) हल, हेंगा आदि में बनाया गया खड्डा (पट० ४) (वि०) वजन में कम (चंपा०)। [घट्ट (संस्क०), घट्ट (प्रा०), गाठ (कश्म०), घाट (हिं०, कुमा०, नें०, प०, असा०, बं, ओ०), घाटु (सि०), घाट (गु० मरा०), मंम०—< घाट्टा (संस्क०),—टर्नर]

घात—(सं०)-(१) चतुराई और गुप्त रूप से किसी वस्तु की प्राप्ति का प्रयास। इसका प्रयोग शत्रुता, ईर्ष्या और कभी-कभी उचित स्पर्धा में भी होता है। घात लगावल, घात में बैठल (मुहा०)=किसी वस्तु अथवा सफलता की प्राप्ति के लिए अवसर की प्रतीक्षा करना, ताक में बैठना। [ घात ]

घात में बैठल—(मुहा०) दे०—घात।

घात लगावल—(मुहा०) दे०—घात।

घान, घानि—(सं०)। दे०—घानी।

घानी—(सं०)-(१) ऊख की काटी हुई टुकड़ियों का वह परिमाण, जो कोल्हू में एक बार में पेरा जा सके। (२) कोल्हू, जाँता आदि में एक बार दिया जानेवाला अन्न का परिमाण (बिहा०, भाग०)। [ घान, घाटन (संस्कृ०), घायण (प्रा०), घानी (हि०), घान् (ने०), घानी (बं०)=तेल का कोल्हू ]

घाम—(सं०) (१) धूप। (२) शरीर से निकला हुआ पसीना (भाग० १)। [ काम<*कर्म ]

घाव—(सं०) मनुष्य या पशु पक्षी के शरीर में उत्पन्न व्रण अथवा शस्त्र से लगा आघात। [ <*घात (संस्कृ०), घात (पा०), घाअ (प्रा०), घाव (हि०), घाउ (ने०), घाउ (कुमा०), घा (पंजा०, बं०, श्री०) को, घाउ (पं०), गाठ (सि०), घा, घाव (गु०), घाव, घाय (मरा०) ]

घास-(सं०) तृण। खेत में अनाज के अलावा स्वयं उत्पन्न होनेवाले दूसरे पौधे। पर्या०—घासपात, दुमदोंदर (उ०-प०), धू (म०), विरिण (पट० ४, मग० ५)। [घास (संस्कृ०), घास (पा०, प्रा०), घास (हि०), घाँस (ने०), खस (रोमा०), घास (कश्मी०), गस (लहं०), गास (प० पहा०), घास (कुमा०), घाँह (असम०), घास (बं०), घास (ओ०), घाह (पं०, स०), गाहु (सि०), घास (गु०), काम (मरा०) ]

घिउड़ा—(सं०)-(चंपा०)। दे०—घिउरा, घिवरा।

घिउरा—(सं०) एक बरसाती तरकारी, जो लता में फलती है और आकार में लम्बी होती है (चंपा०)। पर्या०—घिवड़ा (चंपा०), नेनुआँ, सरोइ, परोर, परोल (सं० द०), घेरा (दर०)।

घिअहवा—(सं०) वह आम जिसके खाने में घी के जैसा स्वाद हो (पट० १)। पर्या०—घिआही (मग० ५), घिउआ (चंपा०)। (वि०) घी जैसा स्वादवाली वस्तु। [ घिअ+हवा (प्र०) <*घृत ]

घिआही—(सं०)-(मग० ५)। दे०—घिअहवा।

घिआही कदुआ—(सं०) वह कद्दू, जिसका स्वाद घी-जैसा हो और जो काफी चिकना हो (पट० १, पट० ४, मग०-५)। [घिआ+ही (प्र०)+कदुआ ]

घिउआ—(सं०)-(चंपा०)—दे०—घिअहवा।

घिवड़ा—(सं०) दे०—घिउरा, घवड़ा।

घिवरा—(सं०)-(१) एक बरसाती तरकारी, जो लता में फलती है और आकार में लम्बी होती है (चंपा०)। पर्या०—घिउड़ा, घिउरा, घिउड़ा (चंपा०)।

घियातरोई—(सं०) दे०—घवड़ा।

घिरनी—(सं०) खम्भे की दो नालियों के बीच पड़ी धुरी पर नाचनेवाली गड़ारी (पट०, चंपा०, गया, द०-प० म०, द० मुं०, पट० ४, मग० ५)। दे०—गड़ारी। [ ग्रहणी, घूर्णन, घूर्णि (?) ]

घिवहा—(सं०) गुणानुसार आम का एक भेद (दर० १)। [ घिव+हा (सादृ० प्र०)<घी <घृत ]

घुँघनी—(सं०)-(१) मटर की अधपकी भुनी हुई बाल (ग० द०)। दे०—होरहा। (२) चना, मटर या किसी अन्न को भिगोकर तथा तेल या घी में तलकर बनाया गया भोज्य पदार्थ। [ घुँ+घनी <*घृत+घीर्ण <√घृ (धात्वर्थीय) (?)]

घुड़ी—(सं०)-(१) लकड़ी का वह गहरा बरतन, जिसमें ढेंकी के मूसल से धान कूटा जाता है (पट०)। दे०—ओखरी। (२) दवनियों के मोचन की रस्सी या बर्द्द। (३) जोतन आदि गहनों में छोर पर बनी हुई गाँठ, मोकनदार गाँठ। [सिन्धा०-घुंडिएदनी=बोलर, बन्दिनपुंडुलटग]

घुच्चा—(सं०) फल, अनाज आदि फलियों का गुच्छा। [ गुच्छ ]

घुनल—(क्रि०) किसी वस्तु में घुन लगना। पर्या०—घुनापल। (वि०) घुन लगा हुआ (शाहा० १, भाग०-१)। पर्या०—घुनापल (चपा०)। [घुन+ल (प्र०)<घुन<घुण]

घुनापल—(क्रि०)-(चंपा०)। दे०—घुनल।

घुमाव—(सं०)-(१) जलप्रवाह के मार्ग का मोड़ (चपा०, उ० पू० म०, भाग० १)। दे०—मोरानी। (२) खेत की मेंड़ का मोड़। (३) हेंगा या हल की जोत का मोड़। (४) रास्ते आदि का मोड़। [<√घूर्ण (संस्कृ०), घुम्म (प्रा०), घूमना (हिं०)]

घुमावल—(क्रि०) घूमल क्रि० का प्रे०। घुमाना, गाड़ी हल में बैल आदि को एक तरफ घुमाना। [<घूर्ण (=घूर्णयति ?) (संस्कृ०) घुम्म (प्रा०), घुमाना (हिं०), घुमउणा (प०), घुमाइणु (सि०)]

घुरकट्टा—(सं०) ऊख की खड़ी फसल को काटने वाला (द० भाग०)। दे०—अँगड़ीहा। पर्या०—खुटकट्टा (पट० ४, मग० ५, भाग० १)। [घुर+कट्टा<घूर<कूरा<कूट+कट्टा<√कृत्]

घुरघुरा—(सं०)-(१) एक कीड़ा विशेष। (२) एक बीमारी-विशेष (कंठमाला)-(शाहा० १, पट० ४, मग० ५, भाग० १)। [घुर्घुर]

घुरनी—(सं०) खमे की दो कानियों के बीच की धुरी पर नाचनेवाली घिरनी (पट०)। दे०—पहारी। [अद्रणी, घूर्णि (?)]

घुरी—(सं०) दौनी की वह रस्सी, जिसके द्वारा प्रधान रस्सी मेंह में बाँधी जाती है (पट०, गया)। पर्या०-मेंहौरी (पट०, गया,पट० ४, मग०-५), डोंड़ा (द० भाग०)। [देशी मिला०—ग्रन्थि>घुंडी]

घुरौड़ा—(सं०)-(पट० ४)। दे०—घूर।

घुलल—(क्रि०)-(१) तरल पदार्थ में किसी दूसरी वस्तु का मिलना। (२) आम आदि फलों का पककर मुलायम होना। (वि०) मिला हुआ, घुला हुआ। [घुल+ल (प्र०)]

घुसावल—(वि०) घुसल क्रि० का प्रे०—घुसाना, प्रवेश कराना।

घूआ—(सं०) मुट्टे के ऊपर का केशों-जैसा गुच्छा (द० प० शाहा०)। दे०—मूमा।

पर्या०—मोच (भाग० १), मोचा (चपा०)। (वि०) वह व्यक्ति जो दूसरे की बातें सुनकर पी जाया करता है, कुछ बोलता नहीं (पट० ४)।

घून—(सं०) अन्न और लकड़ी को खानेवाला एक कीड़ा। [घुण]

घूनल—(क्रि०) दे०—घुनल।

घूमल—(क्रि०) घूमना, चक्कर काटना, गाड़ी या हल के बैल को एक तरफ घुमाना। [<√घूर्ण (?), घुम्म (प्रा०), घूमना (हिं०), घुम्मु (सिं०), घुम्नो (कुमा०), घुमाइबा (असा०), घुमा (बँ०), घुमाइबा (ओ०), घुम्मणा (प०)]

घूर—(सं०)-(१) भूमि को खोदकर बनाया गया छोटा गढ़ा, जिसमें लकड़ी, घास, सूखा गोबर आदि को जलाकर जाड़ में ग्रामीण लोग आग तापते हैं। पर्या०—कौर, कौड़ (प०), घुरौड़ा (पट० ४)। लोको०—"घर जरय हय, घूर बुताव"—किसी का घर जल रहा हो और वह घूर बुझावे, अर्थात् बड़ी विपत्ति के प्रति लापरवाह होकर छोटे खतरे को दूर करने के लिए सचेष्टता दिखलाना। (२) खाद का गढ़ा (विह०, आज०)। पर्या०—खाद के गड़हा, खादर के गड़हा। (३) खाद (गं० द०-प०)। दे०—खादर। [कूट]

घूर काटल—(क्रि०) ऊख काटना (द० भाग०, भाग० १)। दे०—छोलल। [घूर+काटल (प्र०)]

घूरी—(सं०) कारखाने में गन्ना को काटकर छोटा करने का औजार (सा० १)। पर्या०—चघरिया (पट० ४)। [देशी]

घूस—(सं०) किसी वस्तु की प्राप्ति अथवा कार्य की सरलता के लिए सम्बद्ध व्यक्ति को अनुचित तौर पर दिया जानेवाला द्रव्य। [गुह्याशय (हिं० श० सा०)]

घूसल—(क्रि०) घुसना, प्रवेश करना, किसी नुकीली चीज का अंदर जाना। [घुस+ल (प्र०), घूस, घुसना (हिं०), घुसणा (पं०), घुस्नु (नें०), घुसवुँ (गु०), घुसणे (मरा०)]

घेंच—(सं०)-(१) ऊख में लगनेवाला एक प्रकार का पौधा, जिसका उजला डंठल गरीब लोग खाते हैं। (२) गरदन। [देशी]

घेकुआर—(सं०) एक प्रसिद्ध औषधीय पौधा, घृतकुमारी। [घे+कुआर<घि+कुआर <*घृतकुमारी (संस्कृ०), घीकुआर (हि०)]

घेरल—(क्रि०) घेरना, आड़ करना, किसी वस्तु की रक्षा के लिए चारों ओर बाड़ लगाना। [घिर+ल (प्र०)<घेर, घेरना (हि०), घेरिबा (ओ०), घेरा (बं०), घेर (असo) =परिस्थिति, घेरणा (प०), घेरणु (सि०), घेरवुं (गु०), घरणे (मरा०), सम०<*क्रिरति—टर्नर]

घेरा—(सं०)-(१) बथारी या जलावन आदि रखने के लिए बनाया हुआ घेरा (चंपा०, म०)। दे०—घेरान। (२) पशुओं के रहने की जगह, गोष्ठ। दे०—बथान। (३) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (म०)। दे०—घेरान। (४) नदी, नहर आदि में पानी को ऊपर उठाने के लिए धारा में इस पार से उस पार तक बाँधा गया बाँध (उ० प०, भाग० १)। दे०—बाँध। (५) खेत, फुलवारी या घास के खेत को सुरक्षित रखने के लिए बाँस, दीवाल आदि से घिरा स्थान (पट० ४, भाग०-५)। [घेरल (बिहा०), घेरना (हि०) <ग्रह<√ग्रह] (६) (दर०)। दे०—घिउरा।

घेरान—(सं०)-(१) बथारी या जलावन आदि के रखने के लिए बनाया हुआ घेरा (प० म०, सा०, चंपा०)। पर्या०—घोरान (शाहा०), घेरा, ढाठ (चंपा०, म०) ढाठ (पू०), पखठ (प०)। (२) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (उ०-प०)। पर्या०—घेरानी (उ० प०), बारी, बेंद (म०), घोरान (ग० द०), घेरा (म०), छापा (द० मु०), हिराँव (चंपा०, पट० ४, भाग० ५, म० २)। [ग्रहण]

घेरानी—(स०) पशुओं को रोककर रखने के लिए बनाया गया घेरा (उ०-प०, भाग० १)। दे०—घेरान। [ग्रहणी]

घेरावल—(क्रि०) घेरल क्रि० का प्रे०। घेराना, बाड़ लगवाना। [घेरा+आवल (प्र०)<घेर, घेराना (हि०) घेरान (बं०) घेराइबा (ओ०)]

घेवड़ा—(सं०) तरोई की जाति का एक फल, जिसकी तरकारी बनती है। दे०—तरोई। पर्या०—घिउड़ा, घिँउड़ा घिउरा, घिवड़ा, नेनुआ, परोर, परोल (ग० द०), तरोई, घेरा (दर०)। [घे+वरा<घी+वड़ा<घृतपूर (सभाष्य)। घिवड़ा, घिउरा (बिहा०), घेवड़ा, घिया तोरई, बड़ी तोरई, नेनुआ (हि०), महा-कोशातकी, हस्तिघोषा (संस्कृ०), हस्तिघोषा, धुँधुल, धु धुल, धु धुल (बं०), घोसाले, घोसाळा (मरा०), गलका, घीसोडा (गु०), धारादि तुप्पिरी (क०), पनुगबीर, पुछाबीरकाया (ते०), तरउ (मा०), खियार (फा०)]

घैला—(सं०)-(१) वह बरतन, जिसमें ऊख के रस को उबालने के पहले इकट्ठा किया जाता है (उ०-पू० म०, भाग०-१)। दे०—माट। (२) कुएँ से पानी निकालने या रखने के लिए मिट्टी का बना घड़ा (पट० ४, भाग० ५, चंपा०, म० २)। दे०—घड़ा। [<*घट, घटी, <*घटीर]

घैला

घोंघर—(वि०) आगे की ओर निकलकर घूमे हुए सींगोंवाला बैल (गया, भाग० १)। दे०—घोंघा। [देशी—मिला०—घोंघ=मध्यवर्ती अवकाश (मो० वि० दि०), घुँघराला (हि०), <घुमटना <घूर्णन]

घोंघरा—(वि०)-(द० मुं०, भाग०-१, पट०)। दे०—घोंघर।

घोंघरी—(स०) चने और ज्वार की बाल में लगनेवाला एक कीड़ा। दे०—घँघरी। [देशी, घोंघा (हि०)]

घोंघा—(सं०)-(१) वर्षा से बचने के लिए ताड़ के पत्तों की बुनी हुई एक प्रकार की बरसाती, जो सिर से लटकती हुई रहती है (गया, भाग०-५) [घोंघा <घोंघा <गुण्ठ (?)] (२) शंख जाति का एक छोटा जलजन्तु, जिसके बाहरी खोल से चूना बनता है (भाग० १, पट० ४, भाग०-५, चंपा०, म० २)। पर्या०—घठा, ऐंठा। (३) (सं०)-(पू० म०)। दे०—गोंधा। [घोंघ (मो० वि० दि०)]

घोंघाडी, घोंघाड़ी-(सं०) छोटी जाति का घोंघा।

घोंघी—(स०) वर्षा से कपड़ा बचाने के लिए कंबल के ऊपर के छोर को बाँधकर बनाई गई ओढ़नी (द० प० शाहा०, माज०) दे०—घोघी। [ घोंघी <घोघ< गुण्ठन (?)]

घोंघी

घोंचवा—(वि०) आगे की ओर निकलकर घूमे हुए सींगोंवाला बल (शाहा०)। दे०—घोंचा। [ घोंच+वा (गुच्छ) ]

घोंचा—(वि०) आगे की ओर निकलकर घूमे हुए सींगोंवाला बल ( ग० उ०, पट०, द० माग०, माग० १)। पर्या०-घोंघा (पू० म०), घोंचवा (शाहा०), घोंघर (गया), घोंगरा (पट०), घोंघरा (द० मुं०, पट० ४)। (२) (सं०) दूध दुहने के लिए मिट्टी की बड़ी करिया (शाहा०)। [ गुच्छ ]

घोंची— (वि०) आगे को ओर मुड़े सींगोंवाला बल या दूसरा मवेशी (शाहा०, माज०)। यह उत्तम श्रेणी का माना जाता है।—'घोंचो देखें जोहि पार, थैली खोले यहि पार।'—घाघ =घोंची बल को उस पार देखकर नदी के इसी पार से (रुपये की) थैली खोल देनी चाहिए। [ देशी मिला०—कुंचित (=घूमा हुआ) ]

घोंपल—(क्रि०) घुमाना, घुसेड़ना (मुं० १, पट० ४, मग० ५, चपा०, म० २)। [<√घुभ् (सबलने), √घुप् (गतौ)]

घोंपा—(वि०) (१) (पू० म०)। दे०—घोंपा। (२) बाजरे का रूईदार फूल (द० प० शाहा०)। पर्या०—जाबा (द० मुं०), फुलकी (द० माग०)। [ घुप ]

घोघली—(स०) बैलगाड़ी पर रखने के लिए बाँस, चटाई आदि का बना पर्दा ( मु० १, माग० १)। [ घोघ+लो <गुण्ठन ]

घोघसा—(सं०) दाना सहित भूसा (चंपा० १)। [ देशी ]

घोघाड़ी—(सं०) एक प्रकार का धान (चंपा० १)। [ देशी ]

घोघी—(सं०)-(१)-(चपा०, माग० १, सता०) दे०—घोंघी। पर्या०—घोंघी (द० प० शाहा०) घुग्घी (पट०, उ०-पू० मुं०)। [घो+ई <घोघ <गुण्ठन ] (२) ताड़ के पत्ते या कंबल आदि की बनी लंबी बरसाती या ओढ़नी (मुं० १, माग० १)। [ घोड+ई ]

घोड़जई—(स०) घोड़े के खाने का एक चारा, जो जौ से मिलता जुलता होता है (पट० १) पर्या०—जई। [ घोड+जई ]

घोड़सीन—(स०) वह बल, जिसका सीना घोड़े की तरह हो (पट० १, माग० १, पट०-४ मग० ५)। [घोड+सीन <घोड़ा+सीना]

घोड़ा—(स०) सवारी करने का एक प्रसिद्ध चौपाया मवेशी। [घोड़ा< *घोटक (संस्कृ० घोटक (पा०), घोड़ऊ (प्रा०), घोड़ा (हि० ने०, पं०, ब०, ओ०), घोड़ो (सि०), घो (गु०), घोड़ा (मरा०) ]

घोरई—(स०) मोट के मुँह के फले और रहने के लिए, आरपार कड़ियों से बँधी टेढ़ी लकड़ी। पर्या०—घोरानी। [ देशी

घोरल--(क्रि०)-(१) घोरना, मिलाना। जल द्रव पदार्थ से किसी वस्तु को तरल करना। खटिया आदि को रस्सी से बुनना। [घोर- (प्र०) <घोर < *घोल (संस्कृ०), < * <√घुट् (परिवर्तन), √घू (क्षरण, सेके छा

घोरान--(स०) सवारी या जलावन आदि के लिए बनाया हुआ घेरा (शाहा०, सत दे०—घरान। (२) पशुओं को रोककर के लिए बनाया गया घेरा ( ग० द०)। घेरान। (३) भूसा आदि रखने के लिए (घरेलू) जैसा बड़ा टोकरा (द० भाग०)।[

घोरानी—(स०)। दे०—घोरई।

घौंसा—(स०) एक प्रकार का साग (द मग० ५)। [ देशी ]

घौद—(स०) (१) फलों का गुच्छा (चपा० १, माग० १, पट० ४ मग० ५, म० २)। (२) वह ताड़, जिससे साल भर ताड़ी निकले। (३) केलों का गुच्छा। [ गुत्स ]

घौर—(स०)-(१) वह ताड़ का पेड़, जिससे में ताड़ी निकलती है। [ देशी, मिला (क्षरण चूना)] (२) फलों का गुच्छा (चप (३) केले के फल का ...

# शुद्धि-पत्र

| पृष्ठ | कॉलम | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| १ | १ | १९ | कँकरीली | ककड़ीली |
| १ | १ | २१ | दे० अँकड़ाह (बिहा० आज०) | (बिहा०, आज०)। दे०-अँकड़ाह |
| १ | २ ३ | २ | इँकड़ी, (३) अनाज में पाया जानेवाला छोटा ककड़। | अनाज में पाया जानेवाला छोटा कंकड़। पर्या०—ईंकड़ी। |
| १ | २ | २७ | [अँकर+इ०<अँकरा,[दे०-अँकटा] | [अँकर+इ(प्र०)<अँकरा] |
| २ | १ | १६ के बाद | | अंकुर (स०)-(भाग० १) दे०—अँकुदा। |
| २ | १ | २६ के बाद | — | अकुश (स०) दे०—अँकुसी-२। |
| २ | २ | ३७ | अचिवत्] [सुश्रा | अचिवत्। सुश्रा |
| ३ | १ | १८ | अँगर्वेग | अँगँवेंग |
| ३ | १ | ३२ | अँगरवाह | अँगर्‌वाह |
| ३ | १ | ३४ | अँगार | अँगार |
| ३ | २ | ३२ | [अमकाढ+वा (अँगेढ़ी+दा)] | [अँगेढ़ी+दा<अमकाढ+वाढ] |
| ३ | २ | ३७ | द० मु० | द० मुँ० |
| ४ | १ | १८ | (चगा०—मुँ १०—१, | [चपा०—१, मुँ०—१, |
| ४ | २ | ११ | दे०—अँजोरिया [अँजोरिया | [अँजोरिया, |
| ५ | २ | २५ | रेंढी | रेंढ़ी। |
| ५ | २ | ३७ | अँधकी रात्रि | अँधकी=रात्रि |
| ५ | २ | ३९ | गडादार | गडादार। |
| ५ | २ | २५ | थैलो | थैलो |
| ६ | १ | २९ | दार दाल | दार<दाल |
| ६ | १ | ३९ | उप | उप् |
| ६ | २ | २ | पट०—४) | पट०—४)। |
| ६ | २ | १२ | ई> | ई< |
| ६ | १ | १६ | छराढी | पर्या०—छराढी |
| ६ | २ | २५ | (भाग—१) दे०—पाँसा | (भाग०—१)। दे०—पाँसा। |
| ७ | १ | १ | करता है। (द—पू० मै०) | करता है (द०—पू० मै०)। |
| ७ | १ | २१ | (अ+काल) | (अ+चाल) |
| ७ | १ | ३६ | उत्खनन उत्सनना | उत्खनन |
| ७ | २ | ४० | दे०—अरोना | दे०-अगौना |

| पृष्ठ | कॉलम | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| ८ | १ | ६ | (आ०) | (आम०) |
| ७ | २ | २ | (द० गुँ) | (द० मुँ) |
| ७ | १ | १४ | (द० माग०) दे०—शामिल | (द० माग०)। दे०—शामिल। |
| ७ | १ | ३५ | (१) | (?) |
| ७ | १ | ३९ | (१) | (?) |
| ७ | १ | १९ | साओल्ल | सामॉल |
| ७ | १ | २० | (प०), कनियाँ | (रा०), कमियई, कमिया |
| ७ | १ | २१ | लगुआजन | लगुआजन (सामा०) = |
| १० | १ | ११ | अगवलि | अमवलि |
| १० | २ | २९ | वार। अगोरनिहार | वार। |
| ११ | १ | २ | अमौद् | अमाद् |
| ११ | १ | १२ | अमॅद् | अमाद् |
| ११ | २ | ६ | वर्तन — | वरतन |
| ११ | २ | १५ | (स०) | (स०) |
| ११ | २ | २६ | की | का |
| ११ | २ | २६ | (मुँ०—१) | —(मुँ०—१) |
| १२ | १ | १६ | ओढ़पुष्प | ओढ़पुष्प |
| १२ | १ | २८ | अब | अद |
| १२ | १ | २५ | (अद्धाइ) अद्ध+द्वि | अद्धाई (=अर्द्ध+द्वि) |
| १३ | २ | ६ | अघ | [अघ |
| १३ | २ | १० | अघ | [अघ |
| १४ | २ | १८ | (नरवाहा) | (घर+वाहा) |
| १५ | २ | २० | गुरदा | गुरदा< |
| १६ | १ | २१ | अन्दी [अ+मई | अन्दी। [अ+मई< |
| १६ | १ | २८ | बीज, | बीज< |
| १६ | २ | १ | [अवबाध] | [अवबाध |
| १७ | १ | १२ | (प) | (पे) |
| १७ | २ | अड़तीसवीं पंक्ति उनचालीसवीं पंक्ति के बाद रहेगी। | | |
| १० | १ | ३५ | ऊर उरटा | ऊार उटा |
| १९ | २ | १४ | [अ+गणा] | [अ+लगा] |
| २० | २ | १८ | दानवाली | दानेवाली |
| २२ | २ | १२ | अँदाम | अँदाम |
| २२ | २ | १५ | वृच | वृच |

| पृष्ठ | कॉलम | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| २२ | २ | २५ | [ मिशा० | , मिला० |
| २३ | १ | ३६ | ( वि०, | ( हि० |
| २३ | २ | २८ | गँड़ासी | गँड़ासी |
| २३ | २ | ३६ | अर्धद्वि | अर्धद्वि |
| २४ | २ | १ | (स०) | (स०) |
| २५ | १ | २८ | लोको | लोको० |
| २६ | १ | २२ | है। (पर० १) | है ( पट०—१)। |
| २६ | १ | ३४ | इकट | [ इकट |
| २६ | १ | ३५ | (मो० वि० हि०)। | (मो० वि० हि०)] |
| २६ | १ | ३६ | सरपड्डा ] | सरफड्डा |
| २६ | २ | १७ | (अ०) [ | (अ०)] |
| २७ | १ | ७ | (म०) | (मा०), |
| २७ | १ | ७ | (प्रा०) | (पा०) |
| २७ | २ | ५ | (प्रा०) | (पा०) |
| २८ | १ | १२ | निला० | मिला० |
| २८ | १ | १३ | √त्रम | √क्रम् |
| ३० | १ | ११ | ] उच | [ उच |
| ३० | २ | ३२ | गवैन | वैगन |
| ३३ | १ | ३ | (स०) | (स०) |
| ३३ | २ | २० | का— | का |
| ३४ | १ | १४ | हुआ (स०), | हुआ। (स०) |
| ३४ | १ | ३१ | जानवाली की | जानेवाली |
| ३४ | १ | ३२ | धारावाहिक | की धारावाहिक |
| ३५ | १ | १२ | (?) ], | (?)] |
| ३५ | २ | १ | मि० | मिला० |
| ३७ | १ | १५ | [ पेतारी | पेतारी |
| ४२ | २ | २१ | (शा०—१) | (शाहा०—१) |
| ४२ | २ | ३४ | आँकड़। | आँकड़ |
| ४३ | १ | १ | (सा०, शाहा०) | (सा०, शाहा०), |
| ४३ | २ | १७ | ( ) सरकंडा, | (२) सरकंडा |
| ४३ | २ | २३ | घुवा | घुँवा |
| ४४ | २ | ३८ | कैंवा | [ कैंवा |
| ४४ | २ | ३९ | (संस्कृ०)। | (संस्कृ०)] |

| पृष्ठ | कॉलम | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| ८ | १ | ६ | (आ०) | (आम०) |
| ७ | २ | २ | (द० गुँ) | (द० मुँ) |
| ७ | १ | १४ | (द० भाग०) दे०—शामिल | (द० भाग०)। दे०—शामिल। |
| ७ | १ | ३५ | (१) | (?) |
| ७ | १ | ३९ | (१) | (?) |
| ७ | १ | १९ | साश्रोल | सामाँल |
| ७ | १ | २० | (प०), कनियाँ | (उ०), कमियई, कमिया |
| ७ | १ | २१ | लगुआजन | लगुआगन (ग्रामा०) = |
| १० | १ | ११ | अगवशि | अमयनि |
| १० | २ | २९ | यार। अगोरनिहार | वार। |
| ११ | १ | २ | अमोद्द | अमाद्द |
| ११ | १ | १२ | अमोद्द | अमोद्द |
| ११ | २ | ६ | बतन — | मरता |
| ११ | २ | १५ | (उ०) | (उ०) |
| ११ | २ | २६ | की | का |
| ११ | २ | २६ | (मुँ०—१) | —(मुँ०—१) |
| १२ | १ | १६ | ओदपुर | ओदूपुर |
| १२ | १ | २५ | मद | मद |
| १२ | १ | २५ | (अदाई) अद्ध+द्वि | अदई (=अर्द्ध+द्वि) |
| १३ | २ | ६ | अप | [ अप |
| १३ | २ | १० | अप | [ अप |
| १४ | २ | १४ | (चरवाहा) | (चर+वाहा) |
| १५ | २ | २९ | घुग्घा | घुग्घा< |
| १६ | १ | २७ | अग्री [अ+गई | अग्री। [अ+गई< |
| १६ | १ | २८ | पीस, | पीस< |
| १६ | २ | ९ | [अबवास] | [अबवास |
| १७ | १ | १२ | (प) | (पँ) |
| १७ | २ | अट्ठाईसवीं पंक्ति उनतालीसवीं पंक्ति के बाद रहेगी। | | |
| १९ | १ | ३५ | उर उरठा | ऊर उठा |
| १९ | २ | १४ | [अ+गला] | [अ+गला] |
| २० | २ | १८ | दानवाली | दाँवाली |
| २२ | २ | १२ | अँदास | अँदास |
| २२ | २ | १५ | दूध | दूध |

| पृष्ठ | कॉलम | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| २२ | २ | २५ | [ मिज्ञा० | , मिला० |
| २३ | १ | ३६ | ( वि०, | ( मिद० |
| २३ | २ | २८ | गंडाधी | गँड़ाधी |
| २३ | २ | ३६ | अर्धद्दि | अर्धद्दि |
| २४ | २ | १ | (स०) | (स०) |
| २५ | १ | २८ | लोको | लोको० |
| २६ | १ | २२ | है। (पर० १) | है ( पट०—१) । |
| २६ | १ | ३४ | इकट | [ इकट |
| २६ | १ | ३५ | (मो० वि० डि०) । | (मा० वि० डि०)] |
| २६ | १ | ३१ | सरकड़ा ] | सरकड़ा |
| २६ | २ | १७ | (अ०) [ | (अ०)] |
| २७ | १ | ७ | (म०) | (मा०), |
| २७ | १ | २७ | (प्रा०) | (पा०) |
| २७ | २ | ५ | (प्रा०) | (पा०) |
| २८ | १ | १२ | निला० | मिला० |
| २८ | १ | १३ | √श्रम | √श्रम् |
| ३० | १ | ११ | ] उच | [ उच |
| ३० | २ | ३२ | गधैन | मैगन |
| ३३ | १ | ३ | (स०) | (स०) |
| ३३ | २ | २० | का— | का |
| ३४ | १ | १४ | हुआ (स०), | हुआ। (स०) |
| ३४ | १ | ३१ | जानवाली की | जानेवाली |
| ३४ | १ | ३२ | धाराधाहिक | की धारावाहिक |
| ३५ | १ | १२ | (?) ], | (?)] |
| ३५ | २ | १ | मि० | मिज्ञा० |
| ३७ | १ | १५ | [ मैतारी | मैतारी |
| ४२ | २ | २१ | (या०-१) | (याद्दा०-१) |
| ४२ | २ | ३४ | आँकड़ । | आँकड़ |
| ४३ | १ | ९ | (सा०, याद्दा०) | (सा०, याद्दा०), |
| ४३ | २ | १७ | ( ) सरकंडा, | (३) सरकड़ा |
| ४३ | २ | २३ | घुवा | घुँवा |
| ४४ | २ | ३८ | कैंवा | [ कैंवा |
| ४४ | २ | ३९ | (संस्कृ०) । | (संस्कृ०)] |

| पृष्ठ | कॉलम | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| ४५ | २ | १२ | तम्बाक | तम्बाकू |
| ४५ | २ | १८ | पट०-१-४ | पट०-१, पट०-४, |
| ४७ | १ | २८ | गहरी | गहरा |
| ४७ | २ | ७ | पया | पया० |
| ४९ | १ | २४ | करना) | करना |
| ४९ | १ | २५ | हुआ | हुआ) |
| ४९ | १ | ३० | सम० | सम० |
| ५० | २ | ९ | √हतो हती | √हती |
| ५३ | १ | १ | कदवा | [कन्वा |
| ५३ | २ | ८ | संम० | सम० |
| ५४ | २ | छठी पंक्ति के बाद जोड़िए | | कनसूरा (स०) दे०—कनगामर। |
| ५४ | २ | २२ | के | का |
| ५४ | २ | १३ | कनवोदा (चपा०) | कनपादा (चंपा)। |
| ५५ | १ | १० | उ० वि०) | (उ० वि०) |
| ५५ | १ | १५ | दे— | दे० |
| ५७ | शीर्ष टिप्पणी—कराब—कनुलियत | | | कपास पूर्ण—कमुलियत |
| ५७ | २ | २८ | (ग उ०) | (ग० उ०)। |
| ५८ | १ | ६ | काना)।[ | काली)— |
| ५८ | १ | २५ | कारटेनुनों | कान्टेनुनों |
| ५८ | २ | १ | गमरिशान | कमारशाल |
| ५८ | २ | १२ | कमरिक | कमारिक |
| ५८ | २ | २१ | सार०, | सा०, |
| ५८ | २ | ३३ | (प्रा०) गड्ढा (हि) | (प्रा०), गड्ढा (हि०) |
| ५८ | २ | ४० | मार्गी | मार्गी। |
| ५९ | १ | ८ | कमन् | <कमन् |
| ५९ | १ | १३ | कमिता | कमिता। |
| ५९ | १ | १८ | कमपाद | कमपाद |
| ६० | २ | २० | (विहा०) | (विहा०) |
| ६० | २ | २१ | काला | काला। |
| ६१ | २ | १५ | (मिग ना संम० | मिग ना संम० |
| ६१ | २ | ४० | (१)-(स०) | (स०)-(१) |
| ६२ | १ | ४० | [किनारा] | किनारा |
| ६२ | २ | १४-१५ | प्राग०) [कराद+ई] (२) दे० कराद (कपा० | प्राम०)। (२) दे०—कराद। [कराद+ई (कपा० |

| पृष्ठ | कॉलम | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| ६३ | १ | २० | विहा०, | विहा०, |
| ६४ | १ | ३० | (स०) | (स०) |
| ६५ | १ | २० | (सकृ०) | (संस्कृ०) |
| ६६ | २ | १४ | रात। | रातल |
| ६६ | २ | १६ | टा | कटा |
| ६६ | २ | २५ | सी | रस्सी |
| ६६ | २ | ३२ | क्रि०) | (क्रि०) |
| ६७ | १ | २९ | घस | घास |
| ६७ | २ | ,४ | (स०) | (सं०) |
| ६८ | १ | ३ | अश | अंश |
| ६८ | १ | ५ | अत | अंत |
| ६८ | १ | १३ | हाँकने | हाँक्ने |
| ६८ | १ | २२ | जिरा | जिस |
| ६८ | १ | ३४ | कदो | कादो |
| ६८ | २ | १८ | तल | ताल |
| ६९ | १ | ६ | प बाह | पकवाह |
| ६९ | १ | २५ | (शहा०) | (शाहा०) |
| ६९ | १ | ३० | घन | घान |
| ७२ | २ | ९ | कुँआ | कुँआँ |
| ७६ | १ | ३१ | (पं) | (पँ०), |
| ७७ | १ | २९ | का | को |
| ७७ | २ | ३६ | प० सूद, (प० फं०) | सूद (पं०, फ०), |
| ८० | २ | ९ | √कविक,० √कविका | <कविक, *<कविका |
| ८० | २ | २४ | कयाला | पेयाला |
| ८१ | १ | ९ | का | की |
| ८१ | १ | १२ | क+शीर | पे+शीर |
| ८२ | १ | ८ | (पं) | (पँ), |
| ८२ | २ | १ | कादरी | कोदरी |
| ८३ | २ | १६ | (विहा०) | (विहा०), |
| ८४ | १ | ३१ | (स०) | (सं०) |
| ८६ | १ | ४ | (सँ०) | (स०) |
| ८६ | २ | ३ | (स०) | (स) |
| ८७ | १ | ५ | (मुँ०) | (मुँ०-१)। |

| पृष्ठ | कॉलम | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| ८८ | १ | ८ | व्यक्तिमत | व्यक्तिगत |
| ८८ | १ | १५ | (मु०-१, | (मुँ०-१, |
| ८९ | १ | २८ | कौर जायस | कौरा जायल |
| ९२ | २ | २६ | मेर्दि० | मेदि० |
| ९३ | २ | २१ | खमा | खचा |
| ९३ | २ | २४ | खाद् | खाद |
| ९४ | १ | ३३ | प्रा०), | पा०), |
| ९५ | २ | २१ | झाड़ | झाडू |
| ९६ | २ | ३२ | पाँस | पाँठ |
| ९७ | १ | १९ | पेहन | पैहन |
| ९७ | १ | २० | तम्बाकू | सम्बाकु ] |
| ९७ | २ | ३० | का बन | का |
| १०० | शीर्ष टिप्पणी—खाँड़ी | | | खाँड़ी |
| १०१ | १ | २० | (प्रा०) | (पा०) |
| १०१ | २ | १५ | विहा० | विहा० |
| १०२ | २ | १८ | जमीन । धमका∠ | जमीन । |
| १०२ | २ | १९ | ❀ खहन > | ∠❀खल्न |
| १०३ | शीर्ष टिप्पणी—खिचड़ी खिल्मत | | | खादिन खिल्मत |
| १०३ | " | २१ | <बीद√ | ∠बीद |
| १०३ | २ | ६ | एफ | एक |
| १०३ | २ | १९ | कटल< | कटल |
| १०४ | १ | ३४ | खोज | [ खोप |
| १०६ | १ | २५ | घाट | झाटे |
| १०७ | १ | १९ | टोका ] | ठोका |
| १०७ | २ | २१ | मिट्टी | मिटठा |
| १०७ | २ | १६ | ,न | पुन |
| १०७ | २ | १९ | ( मकुर ) | ( अंकुर ) |
| १०८ | १ | १८ | सोनका | सेनका |
| १०९ | २ | २१ | (प०) | (पँ०) |
| १११ | १ | २५ | १) | (१) |
| १११ | १ | २८ | (मु० १) | (मुँ०—१)। |
| ११२ | १ | ६ | मछली। | गछली ] |
| ११२ | २ | ७ | लने | लेने |

| पृष्ठ | कॉलम | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| ११२ | २ | २८ | ग्रि० | क्रि० |
| ११२ | २ | २६ | करवाना | करवाना। |
| ११३ | १ | १७ | गँडा | गंडा |
| ११३ | १ | २० | गँडादार | गंडादार |
| ११४ | १ | ४ | काब ना | कां बना |
| ११४ | १ | २३ | (शाहा०—१) | (शाहा०)। |
| ११५ | १ | ३१ | डिब्बी, | डि भी। |
| ११५ | २ | १९ | बीचों | बीचो |
| ११६ | १ | २ | (मो० वि० डि०) | (मो० वि० डि०) ] |
| ११७ | १ | ११ | [ (१) | (१) |
| ११७ | २ | २ | गोश्रा | पर्या०—गोश्रा |
| ११७ | २ | ४ | पर्या०—गदही | गदही |
| ११७ | २ | ३५ | गु०) | गु०)] |
| ११८ | १ | ६ | (मुहा०) | (मुहा०) = |
| ११८ | १ | ३६ | (मुहा०) | (मुहा०) = |
| ११८ | २ | ८ | पम मिला० | मिला०— |
| ११८ | २ | १० | या | । |
| ११८ | २ | १६ | चंगा० । देय | (चगा०) । दे० |
| ११८ | २ | २० | लप | पल |
| ११९ | १ | २४ | बीचों बीच | बीचो बीच |
| ११९ | १ | ३० | घास फूस । गरदेल, | घास। गरदेल |
| ११९ | १ | ३२ | गरदेल | गर निकालना। |
| १२० | १ | ६ | पू मै० ) | पू० मै०), |
| १२० | १ | २२ | (देशी | (देशी) |
| १२० | १ | २६ | बीचोंबीच | बीचो बीच |
| १२० | १ | २८ | गर | [ गर |
| १२० | १ | ३१ | (गर | [ गर |
| १२० | १ | ३२ | (ग्राज०) | (ग्राम०)] |
| १२० | २ | २१ | (नेगा०) | (नेपा०)] |
| १२० | २ | २७ | √गल + | √गल। |
| १२० | २ | २८ | गिच् गालयति | गालयति |
| १२० | २ | २८ | गाले | गालेई, |
| १२१ | १ | २१ | बमींदारी | जमींदारी |

| पृष्ठ | कॉलम | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| १२२ | २ | ३८ | (दँ०), | (घँ०), |
| १२४ | १ | २ | (शाटप) | (शरफ़०) |
| १२६ | २ | २५ | (२)—(वि०) | (२)—दे०—गुमक (वि०) |
| १२६ | २ | २५ | हुइ (गुमल) | हुई। |
| १२८ | १ | १५ | √इर | √इर् |
| १२८ | १ | २६ | √ईर | √ईर् |
| १२८ | २ | ४ | लगी हुइ हुई | लगी हुई |
| १२८ | २ | १७ | चूर्ण | चूर्ण ] |
| १३१ | २ | ११ | (प०) | (प०) |
| १३१ | २ | ३५ | √ट ] | √ट |
| १३३ | १ | २५ | गोग | गोट |
| १३३ | १ | ३१ | (सि०) | (सि०)= |
| १३३ | १ | ३२ | (गु०) | (गु०) = |
| १३३ | १ | ३३ | (मरा०) | (मरा०)= |
| १३३ | २ | १९ | गोटी | गोटो |
| १३३ | २ | ३१ | (१) | (?) |
| १३४ | २ | ३३ | जसे | जैसे |
| १३५ | २ | १ | (पपा० (१)। | (पपा०—१)। [ |
| १३५ | २ | १४ | (हि०, प०), | (हि०, प०), |
| १३७ | १ | १५ | पेयाग+ | पेयाल< |
| १३८ | २ | ४ | फँकना | फँकस |
| १३९ | १ | ११ | लेग= | —लेल= |
| १३९ | २ | १६ | गौंरिया | गौरिया |
| १४० | १ | २६ | घुटना | घटना |
| १४० | २ | १५ | लटो | घटो |
| १४२ | १ | २४ | का, | घा, |
| १४२ | २ | २४ | किय | घिय |
| १४२ | २ | २४ | <की | <घो |
| १४४ | १ | २ | <कि | <घि |
| १४४ | १ | ३ | कीकुमार | घीकुमार |
| १४४ | १ | • | परणा | घेरथ |
| १४४ | १ | ६ | फिरथि | घिरती |
| १४४ | १ | २७ | परट | परपट |
| १४४ | १ | १८ | (मैं०) | (मैं०), |